श्री सुरेन्द्र महान्ति (जन्म 1922) ओडिआ भाषा के ख्याति प्राप्त लेखक और पत्रकार है। ओडिआ साहित्य मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है। 'नीलशैल' उपन्यास पर इन्हे 1969 मे साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। संप्रति आप लोकसभा के सदस्य हैं।

नीलशैल की कथावस्तु ओडिसा के अठारहवी सदी के इतिहास से ली गयी है जिसमे तत्कालीन मुस्लिम शासक की धार्मिक असहिष्णुता का वर्णन है। कटक के मुसलमान शासक तकीखा को हिंदुओ की धार्मिक भावनाओ के प्रति बिल्कुल सहानुभूति नही थी। वह सदा जगन्नाथ मदिर की सपत्ति को लूटने की ताक मे रहता था दूसरी ओर खुरदा का एक अन्य मुस्लिम शासक शेख कादर बेग जो धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बना था, भगवान जगन्नाथ का परम भक्त था और इतिहास साक्षी है कि यह शासक जगन्नाथी सप्रदाय के प्रशंसको मे अन्यतम था। इस धर्म-संप्रदाय मे विभिन्न मतावलबियो का सामजस्यपूर्ण सहअस्तित्व था जो कि दशियो-शताब्दियो से चलता आया था। जगन्नाथ मात्र व्यक्तिगत प्रार्थनाओ से द्रवित हो मनोकामनापूर्ण करने वाले ईश्वर ही नही बल्कि संपूर्ण संसार मे व्याप्त है और इस सबसे परे भी।

अनेक मनोरजक घटनाओ और अनुपम पात्रो से पूर्ण यह उपन्यास अत्यंत सुरुचिपूर्ण और पठनीय है।

नीलशैल

नीलशैल

सुरेन्द्र महान्ति

अनुवादक

श्रीनिवास उद्‌गाता

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नयी दिल्ली

भूमिका

ओड़िसा के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक इतिहास मे जगन्नाथ का स्थान सर्वविदित है। किसी निर्दिष्ट धर्म, मतवाद या सप्रदाय के सकीर्ण परिसर मे जगन्नाथ आबद्ध नही हैं। शबर विश्वावसु से लेकर आर्य इद्रद्युम्न, शैव शकराचार्य, पंचरात्रिक रामानुज, शुद्ध भक्तिवादी श्री चैतन्य, शून्यवादी बलराम, जगन्नाथ और सिख धर्मगुरु नानक तक के विभिन्न मतवाद और संप्रदाय श्रीजगन्नाथ की मैत्री-साधना मे समन्वित हुए हैं। श्रीजगन्नाथ बौद्ध-दत-गर्भित हैं, इस विश्वास से बौद्ध धर्मावलंबी जगन्नाथ की आराधना महाबौद्ध के रूप मे करते हैं। इस्लाम धर्मी सालवेग और यवन हरिदास जैसे भक्तो ने भी अनेक मर्मस्पर्शी जणाणो से श्रीजगन्नाथ की आराधना की है। वस्तुत. सार्वजनीन मानव की मैत्री-साधना के इष्टदेव के रूप मे जगन्नाथ की परिकल्पना जिस तरह अद्वितीय है, उसी तरह उदार और विराट भी है।

प्रत्येक ओडिआ के प्राणों में श्री जगन्नाथ के लिए एक श्रद्धायुत स्थान है। वस्तुतः वह एक सुविस्तीर्ण शरधा-वालि है। भक्ति यहां गौण है, श्रद्धा ही मुख्य है। जगन्नाथ से बढकर ओडिआ जाति का इतना अंतरग और आत्मीय और कोई नही है। इसी से "सर्वमंगल जगन्नाथ" का स्मरण करते ही ओडिआ गृहस्थ की सारी विपत्ति और आशका विदूरित हो जाती है। जगन्नाथ को ओड़िसावासी जिस तरह "कलामुहा" कहके गाली देता है उसी भाति "जगा-बलिआ" कह कर श्रद्धा और स्नेह भी देता है। "कालसर्प" कहकर रूठता है, उनके विग्रह को पहडी के समय उठाता है, पटकता है···यह भी ओड़िआ की दृष्टि से आराधना के अंतर्गत है। जगन्नाथ को इस तरह स्नेहाश्रित दृष्टि से देखने की परंपरा संभवतः शवर-सेवित शबरीनारायण के समय से है।

वस्तुतः जगन्नाथ के समीप देवता जिस तरह मनुष्य बने हैं, उसी तरह उनके सिंहद्वार पर मनुष्य भी देवता बना है।

2

ये सारे तथ्य बहुविदित है। पर उत्कल साम्राज्य के राजनैतिक इतिहास मे जगन्नाथ का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसके संबध मे कोई विधिवत आलोचना हुई नही है। स्मरणातीत काल से जिस परिस्थिति मे जगन्नाथ उत्कल के राष्ट्र-देवता के रूप मे पूजित होते आ रहे हैं, यह सर्वविदित है। पर 'मादला-पाजि' के अनुसार अनंगभीम देव के समय से उत्कल साम्राज्य के सिंहासन पर किसी राजा को अभिषिक्त करने की विधि प्रचलित नही है। "एहाक (चूडगग) पुअ (पुत्र) अनगभीम देव एहाक (अपनी) इच्छारे कहिले (बोले) आम्भ नाआ पुरुषोत्तम-देव। ए नगर करके थाइ (रहकर) श्री पुरुषोत्तम देव श्रीजगन्नाथ देव कु समस्त समर्पि राउतपणे था आति (सेवक की तरह रहते हैं)…ओड़िसा राज्य राजा श्रीजगन्नाथ महाप्रभु एमत (ऐसा) कहि अभिषेक नोहिले।" (मादला-पाजि)

सूर्यवशी सम्राट भी श्रीजगन्नाथ को गगा से गोदावरी तक विस्तृत उत्कल साम्राज्य के अधीश्वर मानते थे। इसलिए सूर्यवशी सम्राटो के समय प्रत्येक प्रधान राष्ट्रीय-घोषणा श्रीजगन्नाथ के समक्ष घोषित होती थी। जय-विजय द्वार पर स्थापित शिलालेख अब भी इस कथन के साक्षी हैं। उत्कल साम्राज्य की मर्यादा की रक्षा करने के लिए श्री जगन्नाथ रत्न-सिंहासन का आडवर और महत्ता छोड काचि-अभियान मे एक साधारण सेवक के रूप मे निकल पड़े थे। घटना ने पुरुषोत्तम दास के "काचि-कावेरी" काव्य से लेकर ओडिआ साहित्य की अनेक उपकथाओ, कहानियो और नाटको को अनुप्रेरित किया है। इस काचि-यात्रा का आलेख्य अंकन किए बिना जैसे ओडिसी चित्रकारो की कला-पिपासा ही प्रशमित नही होती।

षोडश शताब्दी मे उत्कल की स्वाधीनता के विलय के बाद भी अकबर के सेनापति मानसिंह ने केवल जगन्नाथ के लिए खोर्धा की राजनैतिक स्वाधीनता को स्वीकार करके घोषणा की थी—"ओडिसा की भूमि, मनुष्य की उच्चाकाक्षा अथवा विजय-लालसा को चरितार्थ करने के लिए अभिप्रेत नही है। यह देव राज्य है—एक प्रात से दूसरे प्रात तक यह निखिल मानव के लिए तीर्थभूमि है।"

(स्टर्लि)

"कपिल संहिता" में भी ओड़िसा "सर्व पापहरं देशं क्षेत्रं देवैस्तु कल्पितं" के रूप में घोषित है। इसलिए उपकथा के रक्तबाहु से लेकर इतिहास वर्णित मुगल सेनापतियों तक, उत्कल पर अधिकार करने के लिए जितने विदेशी आक्रमण हुए हैं जगन्नाथ उनमें से किसी से भी अपने को असपृक्त नही कर पाए और वे इस तरह के आक्रमणों के समय आत्मगोपन करके उत्कल के स्वाधीनता संग्राम को वारवार अनुप्रेरित करते रहे हैं। जगन्नाथ के साथ-साथ ओड़िआ जाति की आत्मा भी उन संग्रामों मे वारवार अपराजेय रही है। उत्कल के राष्ट्रीय-जीवन मे जगन्नाथ के इस महत्त्वपूर्ण स्थान के कारण, ओड़िसा पर अधिकार कर लेने के वाद फोर्ट-विलियम से ईस्ट इंडिआ कंपनी की ओर से यह घोषणा हुई थी—

"It has been the anxious solicitude and desire of the Commissioners *founded* upon the *express* orders of His Excellency the Most Noble Governor-General that no interference or intervention should be experienced at the pagodah of Juggernath by any act of their authority."

/

3

अष्टादश शताब्दी में खोर्धा भोइ राजवंश के एक राजा रामचंद्र देव(द्वितीय) इस्लाम में धर्मांतरित होकर हाफिज कादर वेग के नाम से परिचित हुए थे। रामचंद्र देव मुसलमान थे फिर भी कटक के नायव नाजिम हिंदू-विद्वेषी *तकीखा* के आक्रमण से जगन्नाथ और उसी सूत्र से ओड़िसा की स्वाधीनता की रक्षा के लिए विश्वासघात, बंधुद्रोह, लोकापवाद, और लांछनों के बीच जिस तरह संग्रामरत हुए थे, वह जितना रोमांचकर है, उतना प्रेरणागर्भित भी है। "मादलापांजि" में इनके संबंध में उल्लेख किया गया है। विगत शताब्दी मे पुरी राजवंश की रानी सूर्यमणि पाट महादेई ने राजा मुकुंद देव को स्वीकृति प्रदान करने के लिए अंग्रेजो से जो प्रार्थना की थी उसमे भी हाफिज कादर के नाम का उल्लेख किया गया है—

As a precedent I take the liberty to bring to your notice that one of my ancestors named Rajah Ramchandra Deb who ascended the throne in 1660 Sakabda (1725 a.d) having been compelled to associate with a daughter of the then Mohammedan Noble was not allowed to perform the services of Jagannath or to enter the Temple and as he expressed his desire to worship the idol the Patitapaban Dev, a representative of Jagannath was set up at Singhaduar(the Lion Gate of the Temple) in order that the fallen Raja might be able to see and worship it from outside.

रामचद्र देव के हाफिज कादर बेग के नाम से विख्यात होने पर भी जगन्नाथ के प्रति उन के मन मे श्रद्धा और भक्ति थी। इसके बाद मदिर मे रामचंद्र देव का प्रवेश निषिद्ध था जिससे उनके दर्शन और सेवा के लिए सिंहद्वार की गुमटी मे जगन्नाथ की पतितपावन मूर्ति स्थापित हुई थी।

साप्रदायिक सस्कार मुक्त इस मैत्री-देव जगन्नाथ की मर्यादा-रक्षा करने के लिए इस्लाम धर्म मे दीक्षित हाफिज कादर बेग (राजा रामचंद्र देव) का सग्राम इस उपन्यास का कथानक है।

रामचद्र देव के वेदना-जर्जरित नि सग सग्राम का यह एक अध्याय मात्र है। तकीखा के आक्रमण से ओड़िसा राष्ट्र के इष्टदेव जगन्नाथ की रक्षा करने के लिए रामचद्र देव ने (हाफिज कादर) कई बार रात के डकैत की भाति चिलिका की नामहीन जगहो से लेकर आठगढ (गजाम) के मेरदा जगल तक को अपसारित किया था। अत मे तकीखा के धर्मांध हठ को हार माननी पड़ी और वह जगन्नाथ को स्पर्श नही कर पाया। इसी से खोर्धा राज्य भी अपराजित रहा था। इसका सपूर्ण विवरण नही है यह उपन्यास। इसलिए आशिक अपूर्ण लग सकता है। पर एक दृष्टि से, जीवन की तरह कला भी अपूर्ण है। स्वय जगन्नाथ का विग्रह भी तो अपूर्ण है। व्यजना मे उस असपूर्णता का आस्वादन मिलता है। कला क्षेत्र मे भी शायद यही नियम प्रयोज्य है।

4

फकीर मोहन के परवर्त्ती काल में ओड़िआ साहित्य मे ऐतिहासिक उपन्यास एक मुख्य विभव बन गया था। फिर भी 'लछमा' के बाद काफी कम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये हैं। अथवा, यह कहा जाए कि नही लिखे गये हैं तो अत्युक्ति नही होगी। ऐसी परिस्थिति मे अष्टादश शताब्दी के राजनैतिक इतिहास के आधार पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखना मेरे लिए धृष्टता ही है, इसका मैं अनुभव कर रहा हूं। इस कार्य मे मैं कहां तक सफल हुआ हूं। इस का निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे।

इस उपन्यास में वर्णित तकीखा, रामचद्र देव, वक्सी वेणु भ्रमरवर, दीवान कृष्ण नरीद्र, रजिया, ललिता महादेई आदि स्त्री-पुरुष ओड़िआ इतिहास के चरित्र हैं। मादलापांजि और उससे सपर्कित अन्य पंजिकाओ तथा इतिहास से इसके विवरण पाए जाते हैं। द्वितीय रामचंद्र देव को अनेक आलोचक नायब-नाजिम मुर्शीद कुलीखा के शासन मे अवस्थापित करते हैं। पर मादलापांजि के अनुसार महम्मद तकीखा, रामचद्र देव के समसामयिक हैं इसलिए मैंने उन्हें उस समय अवस्थापित किया है। यहा इतिहास मुख्य नही, गौण है।

यहा मुख्य है ओडिसा इतिहास के एक घोर दुष्काल में ओड़िसा की अपराजेय प्राणशक्ति का आलेखन। यह संग्राम धर्म, जाति या देश के शत्रु के विरुद्ध नहीं—मानव के शत्रु के विरुद्ध यह एक निःसंग, वेदना व्यथित, सांप्रदायिकता से मुक्त, आदर्शनिष्ठ संग्राम है। युग-युग मे यह संग्राम भिन्न-भिन्न रूप मे जारी रहा है। मेरे 'अध दिगंत' उपन्यास में यही मर्मकथा थी।

सप्तदश-अष्टादश शताब्दी के ओडिसा के सामाजिक और ऐतिहासिक परिवेश की सृष्टि करने के लिए मैंने यहा, वर्तमान में अप्रचलित अनेक प्राचीन शब्दों का प्रयोग किया है। ये शब्द और इनके प्रयोग की परंपरा अब भी जगन्नाथ मंदिर मे है। ये प्राचीन शब्द कैसे भावोद्योतक हैं किस भाति विशुद्ध ओड़िआ हैं और उनका पुनरुद्धार और पुनः प्रचलन किस तरह ओड़िआ भाषा को समृद्ध कर सकता है; इसके ये कुछ उदाहरण हैं।

इस तरह का एक उपन्यास लिखने की कल्पना मैंने की नहीं थी। पर 1964

में रथयात्रा के समय अति निकट से विग्रहों की पहुंडी-विजय देखने का मुझे सौभाग्य मिला था। जगन्नाथ ओड़िआ जाति के कैसे अतरंग हैं, उस दिन उस जन-समुद्र मे मैंने देखा था। मैं तो कहूंगा कि समग्र विश्व में यह एक श्रेष्ठ, वर्णाढ्य और प्रेरणामय दृश्य के गौरव का दावा करता है। कादंबरी-प्रमत्त बलदेव की दर्पित पहंडी, केतकी टाहिया की भंगिमा, विजय तूरी और घटनाद मेरे दृष्टि पथ मे उस समय उद्भासित हो उठे थे—इतिहास के अनेक क्षत-विक्षत अंग और उनमें अपराजेय ओडिआ आत्मा का अभ्युदय। उस दिन की स्मरणीय अनुभूति से मुझे जो प्रेरणा मिली थी—"नीलशैल" उसी की परिणति है। पाठकों को उस हृदयावेग का स्पंदन इसके पृष्ठों मे मिले तो इस अकिंचन का श्रम सार्थक हुआ समझा जाएगा।

—सुरेन्द्र महान्ति

प्रस्तावना

इसमे सदेह नहीं है कि ओड़िआ उपन्यास की विकासधारा मे सर्वप्रथम उपन्यास 'पदममाली'[1] उसके बाद 'विवासिनी' और 'लछमा' आदि मे आशिक रूप से जो ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक स्वर सुनाई पडा था, वह तत्कालीन भारतीय राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनो के द्वारा ही नियन्त्रित हुआ था। सारी भारतीय भाषाओ मे वह समय ऐतिहासिक उपन्यास का उत्पत्ति-काल होगा। उस समय से अब तक ओडिआ भाषा मे इन उपन्यासो के अलावा 'कमल कुमारी', 'वीर ओड़िआ', 'पद्मनी', 'बलांगी' 'प्रतिभा' और 'सीमात आह्वान' आदि लगभग पचास ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।

स्वातत्र्योत्तर काल में नूतन अन्वेषण, नूतन जिज्ञासा, और नवीन आशा-आकांक्षा और उसके हर्ष-विषाद के फलस्वरूप भारतीय उपन्यास जब अधिक समस्यापरक, समाज-धर्मी, यथार्थवादी और मनस्तात्विक दृष्टि से अधिक जटिल होने लगा तब उसमे अतर्राष्ट्रीय उपन्यास के वेदना विधुर नि.सग मानव का कठोर जीवन-संग्राम अधिक से अधिक प्रतिफलित हुआ है। कहना यह है कि इस युग के अनेक वाद-विवाद और पुराने मूल्यबोध के विस्मयकर परिवर्तनों के बीच अतीत की प्रेरणा या ऐतिहासिक उद्‌बोधन और आस्तिकता जब तरुण मन में आशा-आश्वासन सचारित करने में असमर्थ होकर 'हिप्पीजम' की अनास्तिकता में लीन होती जा रही है, उस समय 'नीलशैल' की तरह एक भक्तिसाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास की परिकल्पना, श्री सुरेन्द्र महान्ति की निर्भीक और स्वतंत्र दृष्टिभंगी का परिचय देती है। 'नीलशैल' के सर्वभारतीय सम्मान और लोकप्रियता के लिए यह निर्भीकता और स्वकीयता विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

लेखक के अन्यतम उपन्यास 'अंधदिगंत' और प्रस्तुत 'नीलशैल' ने जिस आत्मप्रत्यय को लेकर जन्मग्रहण किया, उसका आद्यउद्‌गम उनकी प्रथम कहानी 'बंदी'[2] से सूचित होता है। उनकी रचना-प्रतिभा कथाविधा की ओर आश्रित होकर

1 प्रकाश काल 1888

2 उत्कल साहित्य-1938-39

रहने पर भी केवल कहानी मे ही संतुष्ट होकर नही रही । अत. द्वितीय महायुद्ध के परवर्ती काल मे अनेक परीक्षण-निरीक्षण और वैचित्र्य-वोध होते हुए उनकी सर्जन-शक्ति ने एक वृत्ताकार पथ पर वढते हुए ओडिआ कहानी की शोभा बढ़ायी है। इसके परवर्ती समय मे उनकी सृजन-शक्ति उपन्यास और जीवनी का आश्रय लेकर स्वयं प्रतिष्ठा और विपुल आत्मशक्ति का उत्स हुई है। चिरतन साहित्य की 'भावोद्रेककारी शक्ति' या 'आह्लानी प्रवृति' (evocative aspect) उनके अधिकाश कथा और उपन्यास साहित्य में विद्यमान है । 'अधदिगत' और 'नीलशैल' का मर्मबिंदु मानवप्राणों के चिरतन सग्राम का एक नि सग,करुण और वेदना-व्यथित आलेख्य है । उक्त आलेख्य पाठक के हृदय मे जो भाव वैचित्र्य या भावरूप उत्पन्न करता है, वही उपन्यासद्वय की चिरतनता का मापदड है ।

'नीलशैल' साधारणत भक्ति रसात्मक ऐतिहासिक उपन्यास के रूप मे गृहीत हुआ है। किंतु गुणात्मक दृष्टि से देखा जाय तो यह सघर्षरत मानव के कालोत्तीर्ण सग्राम की एक अविनाशी लिपि है। सग्राम के लिये श्रद्धा ही यहा भक्ति के रूप मे परिचित है, अपराजेय आत्मा की पदध्वनि ही यहा महासगीत मे रूपातरित है। अत इतिहास यहा गौण है।

ऐतिहासिक विचार से देखा जाए तो 'नीलशैल' की कथावस्तु सप्तदश और अष्टादश शताब्दी की घटनाओं पर आधारित है। खोर्धा भोईवशीय द्वितीय रामचद्र देव इसी समय मुसलमान होकर हाफिज कादर वेग के नाम से परिचित होने के बाद भी कटक के नायव-नाजिम हिंदू-विद्वेषी तकीखा के आक्रमण से ओडिसा और ओडिआ की अतरग प्राण-शक्ति जगन्नाथ की रक्षा के लिये उन्होने जो निरवच्छिन्न सग्राम चलाया था, उसका रोमाचक इतिहास 'नीलशैल' के घटनाप्रवाह मे परिस्फुट हुआ है। उपन्यास मे वर्णित तकीखा, रामचद्र देव, वेणुभ्रमरवर, दीवान कृष्ण नरीन्द्र, रजिया और ललिता महादेई आदि ओड़िसा के ऐतिहासिक चरित्र और जगुनि, सरदेई, क्षान परीछा विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र आदि काल्पनिक पात्रो को समावेशित करके लेखक ने उत्कल के दुर्दिनो का मार्मिक चित्रण किया है। स्थूलत इतिहास की अनेक क्षत-विक्षत स्थितियो के बीच अपराजेय ओडिआ आत्मा की प्राण कथा है—'नीलशैल'।

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास होता है। इसलिये उपन्यास मे इतिहास से परे मादलापाजि, जनश्रुति और कल्पना का आश्रय लेकर लेखक ने जहां चिलिका

तट की परित्यक्त पाइक-वस्ती या सरदेई सराय अथवा शून्यगिरि वंदरगाह और गुरुवाई टापू जैसी जगहों के विचित्र वर्णनों में कई मौलिक घटनाओं और अनेक चित्ताकर्षक पात्रों को संयोजित किया है, वहां उनकी अद्भुत सृजनशक्ति, कल्पना और किंवदंती के ऊर्ध्व में अपूर्व ऐतिहासिक गौरव के साथ विराजित है। उन सबकी विस्तृत आलोचना की संभावना यहां नहीं है। फिर भी इतना कहना यथेष्ट होगा कि सारे उपन्यास में कथानक के विन्यास और घटना-प्रवाह में स्वाभाविकता की जो रक्षा की गयी है, वह उपन्यास के चारित्रिक विकास और गतिशीलता के पथ को प्रशस्त बनाती है। घटना-प्रवाह की स्वच्छंदता मे क्या मुख्य-क्या गौण, सभी पात्रों का मानसिक आवेग और संघात का क्रम-विकास किस तरह प्राणवान है, वह रामचंद्र देव, जगुनि, सरदेई और मालकुदा गाव की पाइकनी पगली बूढी जैसे कुछ पात्रों के जरिये प्रमाणित किया जा सकता है।

उपन्यास के नायक रामचंद्र देव शुरू से ही सघर्षमय हैं। पुरी में श्री जगन्नाथ मंदिर के पास गुहारनेवाले के रूप मे, स्वर्गद्वार के पास निर्जन रात्रि की गंभीरता मे आये आगतुक के रूप मे उनका धैर्य और भक्तिसुलभ अभिमान तात्पर्यपूर्ण है। परवर्ती कई परिच्छेदों में शतरंज के माध्यम से यह भाव अधिक जटिल और वेदना विधुर बना है। देश और देवता की सुरक्षा के लिये वहिशत्रु और गृह-शत्रुओं की विश्वासघातकता, हीन स्वार्थ, नीच षड्यंत्र के व्यूहों में वे जिस तरह संग्रामशील बने हैं, वह आधुनिक काल के यंत्रणा-जर्जरित, मौन एकल संग्राम का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिये आलोच्य उपन्यास के अतीतायन केवल अतीत मे पर्यवसित नहीं है। उस मे वर्त्तमान का भी सही प्रतिफलन है। हेमिंग्वे ने 'THE OLD MAN AND THE SEA' के नायक को दुरत जीवन-संग्राम के मूर्त्त रूपायन अंतहीन समुद्र की पृष्ठभूमि पर अवतरित कराके जिस उद्देश्य की पूर्ति की है, श्री सुरेन्द्र महान्ति के रामचंद्र देव भी उसी उद्देश्य और सग्राम के वार्तावह हैं। इस सग्राम के सारे नैराश्य मे आशा की जो क्षीणरेखा दिखाई देती है वह निश्चित रूप से शाश्वत और मानववादी है। इसलिये समस्त संकट, विपर्यय, प्रेम और विच्छिन्नता की भित्तिभूमि मे ये पात्र स्वच्छंद और आकर्षणीय हैं। धर्म और समाजत्यागी रामचंद्र देव के निःसंग रात्री के एकात नक्षत्र की तरह सपूर्ण रूप से रिक्त होने पर भी उनमे पौरुष का दंभ अविचल था; यही शायद, इस पात्र के जरिये आधुनिक युद्धरत विश्व के प्रति लेखक की आशा और

आश्वासन की वाणी है। रजिया के साथ 'शब-इ-बरात' रात के प्रथम मिलन मुहूर्त में वेदना पीड़ित मानसिक आलोड़नो के बावजूद यह अटलता बनी रही है। स्थूलतः, मनुष्य की अव्याहत जैत-यात्रा का रूपायन प्रस्तुत उपन्यास में रामचंद्र देव के माध्यम से हुआ है।

राष्ट्रीयता रामचंद्र देव के चरित्र की एक उल्लेखनीय विशेषता है। चिलिका के गुरवाई द्वीप पर श्री जगन्नाथ को रखने के बाद रामचद्र देव के मुख से लेखक की राष्ट्रीयताबोध की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति अत्यत भावपूर्ण हो पायी है।

सक्षेप मे कहा जाय तो रामचद्र देव सारे उपन्यास मे भक्त, वीर, देश प्रेमी, त्यागी और एक कर्मनिष्ठ चरित्र के रूप मे उपस्थित हैं। उपन्यासकार उनके चरित्र की कई दिशाओ को, उनके भावातर, मानसिक प्रतिक्रिया और प्रसगगत दार्शनिकता से परिस्फुट करने मे समर्थ हुए हैं।

रामचद्र देव के यथार्थवादी चरित्र की इन दिशाओ के व्यतीत को उपन्यास के शेषाश मे उनके भावातुर दार्शनिक मन का सुदर चित्रण करके लेखक ने अपनी अतुलनीय कलानिपुणता का परिचय दिया है। यह सत्य है कि, करुणा, जिज्ञासा और अंतहीन नैराश्य की अतर्वाणी है, फिर भी यह आशानिष्ठ जीवन की एक अव्यक्त लिपि है। धर्म परिवर्तन के बाद रामचद्र देव ने खुद अपने प्रश्नो के उत्तर में जैसा अनुभव किया है वही उनका वास्तविक परिचय है। हो सकता है इतिहास उनसे धर्मद्रोही हाफिज कादर या दुर्बलमना रामचद्र देव के रूप मे परिचित हो, पर इतिहास के ऊर्ध्व मे जो अंतर्यामी दृष्टि है, उसे वे अतहीन सघर्ष, ग्लानि और अंतर्दाह की मूर्त्त चेतना के रूप मे दिखाई देंगे।

रामचंद्र देव जैसे मुख्य पात्र के अतिरिक्त मालझुदा गाव की पाइकनी बूढ़ी जैसे एक पार्श्व चरित्र पर विचार करने से भी लेखक की सृजन शक्ति का चमत्कार स्पष्ट हो जाएगा। यह बूढ़ी अपनी अतहीन गालियो की बौछार के कारण साधारणत. हास्यरस के लिये उपादान जुटाती है। इस दृष्टि से यह पात्र फकीर मोहन सेनापति की रेवती की बूढ़ी मा के साथ तुलनीय है। पर इस हास्य की आड मे देशप्रेम जनित व्याकुलता और तीव्र करुणा का आभास मिलता है, वही इस पात्र की विशेषता है।

दूसरी ओर, मरदेई और जगुनि आधी मे उड़ने वाले दो सूखे पत्ते हैं। अतीत और भविष्यहीन इन पात्रो के दैन्य मे असीम विचित्रता है। रक्त-मास के द्वद्वो

और आलोड़नों के बीच ये वास्तविक प्रतीत होते हैं। विडंबनापूर्ण जगन्नाथ दर्शन की उत्कंठा, अंतर्द्वंद्व और आवेग के बीच सरदेई विडंबनापूर्ण नारीत्व की उज्ज्वल प्रतिमूर्त्ति जान पड़ती है। रथयात्रा के बाद सुनसान सराय मे उसके अंतस्थल में उभरे प्रश्न, मानव जीवन की चिरंतन जिज्ञासा, क्षोभ और अतृप्ति के जीवंत प्रतीक हैं। पाप-पुण्य का भय, परतु जन्म के लिये अनंत प्रतीक्षा में भागीरथी कुमार को देख विधवा सरदेई के अतर में रात-भर विक्षोभ, निष्फल नारीत्व और आदर्श का नित्य संग्राम चलता रहता है। फलस्वरूप उसकी अनुभूति मे जो जैविक उत्ताप है और उन्मत्त भाव दिखाई पड़ते हैं, उससे प्रस्तुत उपन्यास में अनेक अद्भुत स्थितियों की सृष्टि के लिये अवकाश मिला है। इस लिये सरदेई का रिक्त जीवन और वेदनार्द्र अनुभूति उसकी अवचेतना के विश्लेषण मे स्पष्ट प्रतीत होता है। एक गौण पात्र के रूप मे आकर वह समग्र उपन्यास में छायी रहती है। लेखक की भाषा मे 'सरदेई' उनकी 'अवचेतना की सर्जना' है। उसमे जैसे भाग्य विडंबित ओड़िसा का रूप-परिगृहीत हुआ है।

जगुनि सरदेई की कर्मशक्ति है, अवलंबन और आदर्श की सतर्क पहरेदार है। साधारण मनुष्य की मोह-माया इस पात्र को प्राणवान करने में सहायक है। उपन्यास के शेषांश मे उसकी सरदेई के प्रति उदासीनता में कर्मनिष्ठा का परिचय मिलता है। श्री जगन्नाथ को चिलिका की निरापद जगह रखते समय, जगुनि के मन की अनासक्त भक्ति में सरदेई ही केवल नहीं थी। जो कुछ उसके हृदय में था, वह एक निर्भीक कर्मी की तरह जगन्नाथ और जगन्नाथ की 'चलति विष्णु प्रतिमा', खोर्धा के राजा के लिये आग्रह भर था और अपना कर्त्तव्य पालन करते समय अस्वस्तिकर वास्तविकता को भुला देने की अज्ञात चेष्टा थी। इसलिए उसकी भूमिका छोटी-सी होते हुए भी उपन्यास की घटनावली की क्रमिक परिणति में उसका स्थान उल्लेखनीय है।

इसी तरह अनेक मुख्य और गौण पात्रों के घटना-प्रवाहके साथ-साथ चारित्रिक सौंदर्य के कारण 'नीलशैल' को महिमामडित किये हैं। वर्णन से अधिक सकेत, सूचना और घटना के आवर्त्तन में चरित्र-सुलभ अभीप्सा (motive) सफलता के साथ प्रकाशित हुई है।

'पुश्किन' की तरह उपन्यासकार सुरेन्द्र महान्ति अपने चरित्र-विन्यास में ऐतिहासिक सत्य, चारित्रिक निजता, तात्कालिक परिवेशों की समता बनाये रखने मे

आश्वासन की वाणी है। रजिया के साथ 'शव-इ-वरात' रात के प्रथम मिलन मुहूर्त में वेदना पीड़ित मानसिक आलोडनों के बावजूद यह अटलता बनी रही है। स्थूलतः, मनुष्य की अव्याहत जैत्र-यात्रा का रूपायन प्रस्तुत उपन्यास में रामचद्र देव के माध्यम से हुआ है।

राष्ट्रीयता रामचद्र देव के चरित्र की एक उल्लेखनीय विशेषता है। चिलिका के गुरुबाई द्वीप पर श्री जगन्नाथ को रखने के बाद रामचंद्र देव के मुख से लेखक की राष्ट्रीयताबोध की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति अत्यंत भावपूर्ण हो पायी है।

सक्षेप मे कहा जाय तो रामचद्र देव सारे उपन्यास मे भक्त, वीर, देश प्रेमी, त्यागी और एक कर्मनिष्ठ चरित्र के रूप मे उपस्थित हैं। उपन्यासकार उनके चरित्र की कई दिशाओ को, उनके भावातर, मानसिक प्रतिक्रिया और प्रसगगत दार्शनिकता से परिस्फुट करने मे समर्थ हुए हैं।

रामचंद्र देव के यथार्थवादी चरित्र की इन दिशाओ के व्यतीत को उपन्यास के शेषांश मे उनके भावातुर दार्शनिक मन का सुदर चित्रण करके लेखक ने अपनी अतुलनीय कलानिपुणता का परिचय दिया है। यह सत्य है कि, करुणा, जिज्ञासा और अतहीन नैराश्य की अतर्वाणी है, फिर भी यह आशानिष्ठ जीवन की एक अव्यक्त लिपि है। धर्म परिवर्तन के बाद रामचद्र देव ने खुद अपने प्रश्नों के उत्तर में जैसा अनुभव किया है वही उनका वास्तविक परिचय है। हो सकता है इतिहास उनसे धर्मद्रोही हाफिज कादर या दुर्बलमना रामचद्र देव के रूप मे परिचित हो, पर इतिहास के ऊर्ध्व मे जो अंतर्यामी दृष्टि है, उसे वे अतहीन सघर्ष, ग्लानि और अतर्दाह की मूर्त चेतना के रूप मे दिखाई देंगे।

रामचद्र देव जैसे मुख्य पात्र के अतिरिक्त मालकुदा गाव की पाइकनी बूढ़ी जैसे एक पार्श्व चरित्र पर विचार करने से भी लेखक की सृजन शक्ति का चमत्कार स्पष्ट हो जाएगा। यह बूढ़ी अपनी अनहीन गालियों की बौछार के कारण साधारणत हास्यरस के लिये उपादान जुटाती है। इस दृष्टि से यह पात्र फकीर मोहन सेनापति की रेवती की बूढ़ी मा से साथ तुलनीय है। पर इस हास्य की आड मे देशप्रेम जनित व्याकुलता और तीव्र करुणा का आभास मिलता है, वही इस पात्र की विशेषता है।

दूसरी ओर, मरदेई और जगुनि आधी मे उड़ने वाले दो सूखे पत्ते हैं। अतीत और भविष्यहीन इन पात्रों के दैन्य मे असीम विचित्रता है। रक्त-मास के ढ़ांचो

और आलोड़नों के बीच ये वास्तविक प्रतीत होते हैं। विडंवनापूर्ण जगन्नाथ दर्शन की उत्कंठा, अंतर्द्वंद्व और आवेग के बीच सरदेई विडंवनापूर्ण नारीत्व की उज्ज्वल प्रतिमूर्ति जान पड़ती है। रथयात्रा के बाद सुनमान सराय में उसके अंतस्थल में उभरे प्रश्न, मानव जीवन की चिरंतन जिज्ञासा, क्षोभ और अतृप्ति के जीवंत प्रतीक हैं। पाप-पुण्य का भय, परंतु जन्म के लिये अनंत प्रतीक्षा में भागीरथी कुमार को देख विधवा सरदेई के अंतर मे रात-भर विक्षोभ, निष्फल नारीत्व और आदर्श का नित्य संग्राम चलता रहता है। फलस्वरूप उसकी अनुभूति मे जो जैविक उत्ताप है और उन्मत्त भाव दिखाई पड़ते हैं, उससे प्रस्तुत उपन्यास में अनेक अद्भुत स्थितियो की सृष्टि के लिये अवकाश मिला है। इस लिये सरदेई का रिक्त जीवन और वेदनाद्र अनुभूति उसकी अवचेतना के विश्लेषण में स्पष्ट प्रतीत होता है। एक गौण पात्र के रूप में आकर वह समग्र उपन्यास मे छायी रहती है। लेखक की भाषा में 'सरदेई' उनकी 'अवचेतना की सर्जना' है। उसमें जैसे भाग्य विडंबित ओड़िसा का रूप-परिगृहीत हुआ है।

जगुनि सरदेई की कर्मशक्ति है, अवलंबन और आदर्श की सतर्क पहरेदार है। साधारण मनुष्य की मोह-माया इस पात्र को प्राणवान करने में सहायक है। उपन्यास के शेषांश में उसकी सरदेई के प्रति उदासीनता में कर्मनिष्ठा का परिचय मिलता है। श्री जगन्नाथ को चिलिका की निरापद जगह रखते समय, जगुनि के मन की अनासक्त भक्ति में सरदेई ही केवल नहीं थी। जो कुछ उसके हृदय में था, वह एक निर्भीक कर्मा की तरह जगन्नाथ और जगन्नाथ की 'चलति विष्णु प्रतिमा', खोर्धा के राजा के लिये आग्रह भर था और अपना कर्त्तव्य पालन करते समय अस्वस्तिकर वास्तविकता को भुला देने की अज्ञात चेष्टा थी। इसलिए उसकी भूमिका छोटी-सी होते हुए भी उपन्यास की घटनावली की क्रमिक परिणति में उसका स्थान उल्लेखनीय है।

इसी तरह अनेक मुख्य और गौण पात्रों के घटना-प्रवाहके साथ-साथ चारित्रिक सौंदर्य के कारण 'नीलशैल' को महिमामंडित किये हैं। वर्णन मे अधिक सकेंत, सूचना और घटना के आवर्त्तन मे चरित्र-सुलभ अभीप्सा (motive) सफलता के साथ प्रकाशित हुई है।

'पुश्किन' की तरह उपन्यासकार सुरेन्द्र महान्ति अपने चरित्र-विन्यास में ऐतिहासिक सत्य, चारित्रिक निजता, तात्कालिक परिवेशों की समता बनाये रखने में

समर्थ हुए हैं। उपन्यास में, उत्कल की आशा-निराशा, धीरत्व-वीरत्व तथा ऐति-हासिक गौरव और विद्रूप का एक अपूर्व चित्र अंकित हुआ है। ओड़िशा इतिहास के कई लुप्त अध्यायों को जीवंत कराने की चेष्टा में उपन्यास में कहीं-कहीं निबंध जैसी वर्णन शैली और दार्शनिकता का आश्रय लेखक को लेना पड़ा है। लेखन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी प्रांजल शैली में निजता परिलक्षित होती है। सप्त-दश और अष्टादश शताब्दी के ओड़िशा के सामाजिक और ऐतिहासिक परिवेश की सृष्टि करने के लिये उन्होंने कहीं-कहीं तत्कालीन ओड़िआ तथा पारसिक शब्दों का प्रयोग किया है। उन शब्दों की भाव-व्यंजना अनवद्य है। शैली में कथा-नक के साथ लेखक की एकात्मता विशेष ध्यान देने योग्य है। कविता की भाषा की तरह उनकी अभिव्यक्ति में प्रत्येक शब्द की ध्वनि, मर्म और व्यंजना उपन्यासकार के हृदय की बौद्धिक विलक्षणता को प्रकाशित करती है।

इस बात में विश्वास रखते हुए भी कि कला में स्वभावत: सौंदर्य है, कलाकार ने उद्देश्यमूलकता को अस्वीकार नहीं किया है। इसलिये उपन्यास में कथानक को पात्र और घटना के प्रवाह के साथ ढो एक मशीन की तरह बह नहीं जाने दिया है।

इसके अलावा शक्तिशाली शैली और ओज से परिपूर्ण परिवेशों में 'नीलशैल' के पात्रों की स्थिति और संघर्षों के चित्र अत्यंत वास्तव हैं। उपन्यासकार जिस संघर्ष के विश्वासी हैं वह केवल देह या जड़-प्रयोजनबोध का संघर्ष नहीं है। वह देह और आत्मा का सम्मिश्रित संग्राम है। उपन्यास में भक्ति और देशप्रेम एक साथ सम्मिलित हुए हैं। इसलिये 'नीलशैल' जिस तरह जातीयतावादी है। उसी तरह भक्ति रसाप्लुत है, जितना रुद्र-कठोर है उतना शांत-कोमल भी है लेखक ने इतिहास की कथावस्तु और कथनोपकथन को भक्ति और श्रद्धा के साथ मिला-कर जिस अपूर्व भावगुंफन की सृष्टि की है, वह भारतीय ऐतिहासिक उपन्यास क्षेत्र में विरल है। इसलिये वृजगडनायक, सरदेई या रामचंद्र देव की तरह पात्र उस भावमय राज्य में विचरण करनेवाली एक-एक सशरीरी चेतना के रूप में गिने जाने के बावजूद उनकी तिक्त-मधुर स्थिति और निर्यातित जीवन-जिज्ञासा को पूर्ण रूप से भूलना असंभव है। जीवन-युद्ध में वे केवल ओडिशा या ओड़िया का दुर्जय अभिमान नहीं हैं, 'नीलशैल' के श्रीजगन्नाथ की भांति वे विश्वचेतना और निखिल मानवात्मा के प्रतिनिधि हैं। अत: वे अपराजित, अवदमित, महापूर्णता

की आदि—अंतहीन भावविह्वल मूर्तियां हैं।

कथानक, पात्र, परिवेश और भाषा-भाव की दृष्टि से 'नीलशैल' एक सार्थक उपन्यास है और सरल और विपण्ण इतिहास है। इसमें स्वस्ति है, ग्लानि भी है···और है महाचेतना का एक अपराजेय प्रकाश !

—पीतांबर प्रधान 'उपगुप्त'

प्रथम परिच्छेद

1

धूप मे जले ठिगने बरगद की उलझी जड़ें, बांबियो में से धरती फोड़कर निकल आए जैसे बीमार खजूर के पौधे, लता-लिपटे आम, पुन्नाग, करंज और पलास का पतला जंगल; यहा-वहां एकाध वीरान सरायघर, इन सबके बीच धूलमनी टेढ़ी-मेढ़ी जगन्नाथ सडक मरे हुए अजगर-सी चित लेटी पड़ी है। आसमान पर राख रग के बादलों की ओट मे दोपहर के सूरज की किरणें फीकी पडने लगी हैं। विवर्ण, धूसर उजाले में चारों ओर राख मना-सा लग रहा है। सडक पर एक भी राह चलनेवाला नही है। सड़क के दोनों ओर के पेडों पर पक्षी भी चुप हैं। सब ओर जैसे एक भौतिक अस्वाभाविक नीरवता विराजमान है। उसी निर्जन सड़क पर एक घुडसवार सामने की ओर चिंतित दृष्टि से देखते हुए धीर कदमों से शायद पुरी की ओर जा रहा था।

आज भाद्रपद शुक्ल एकादशी है। पुरी मे श्रीजगन्नाथ देव का पार्श्व-परिवर्तन होगा। कल 'सुनिआ' वामनजन्म, उसके बाद यदुवंश के वीर श्रीगजपति गौड़ेश्वर नवकोट कर्णाट कलवर्गेश्वर वीराधिवीरवर श्री श्री श्री रामचंद्र महाराज का सातवां अंक समाप्त होकर आठवें का आरंभ होगा।

घुडसवार अचानक पागलों की भांति अट्टहास करने लगा। लगा, इससे शायद घोडा भी चौंक गया। सड़क के दोनों किनारों पर दाना चुग रहे कबूतर भी उड़ गए। अपने ही अट्टहास की ध्वनि से सशंकित होकर अकारण आतंक से वह चारों ओर देखने लगा, और फिर घोड़े के पेट पर जूतों से हलकी-सी ठोकर मारकर तेजी से आगे चलने लगा। टापों के आघात से उड़ी धूल बादल का भ्रम जगाती हुई उडने लगी।

'सुनिआ' और वामनजन्म के इस अवसर पर जगन्नाथ सड़क 'पंचकोशी' यात्रियों की भीड़ से भरी रहती है। पश्चिम से आए इक्के-दुक्के यात्री कोई बैल-

गाडी पर सवार तो कोई पालकी पर और कोई घोड़े या ऊट पर या पैदल ही इन पचकोशी-यात्रियो मे से छटकर अलग-से नजर आते हैं। सडक पर मेघवर्णी, नीली, लाल गाडियो के जुलूस, सखी-सहेलियों के हास-परिहास या असरण यात्रियों के पुकारने-चिल्लाने का कोलाहल, इस साल कुछ भी नही है। गौड देश से आनेवाले इक्के-दुक्के वैष्णव भी दिखाई नही पड रहे हैं।

ओडिसा मे फिर मुगल दगा-फसाद होने की शका जिस दिन से उठी है, उसी दिन से श्रीक्षेत्र के लिए यात्रियो की भीड़ लगभग बद-सी हो गई है। पर सुजाखा नायब-नाजिम के समय से जजिया का जुल्म नही है। सडको पर जजिया ठेकेदारो के लूटने का भय लगभग नही के बराबर है। सुजाखा के समय मे जगन्नाथ भी कुछ हद तक मुगलो के अत्याचार से निश्चित थे। पर तकीखा जब से कटक के नायब-नाजिम बने हैं तब से मुगलो की पैनी नजर फिर से जगन्नाथ पर पडी है। मुगल दगे के भय से पुरी की सडको पर कौए उड रहे हैं। जगन्नाथ सडक पर यात्री कहा से आएगे ?

पिपिली मे फिर से मुगलो ने घाटी बनाई है। पिपिली बाजार लाघने तक एक अनिश्चित शंका से उद्विग्न-सा अश्वारोही तेज गति से घोडा दौडाए जा रहा था। पर पिपिली पार कर लेने के बाद गति फिर से धीमी हो गई है उसकी।

सामने है भार्गवी नदी। बालूगर्भा नदी की एक पतली धारा जहा तन्वी वहू की कमर-सी तिरछी हो गई है, वहा शाम के सूरज की ताम्रवर्णी किरण झिलमिला रही है, मेखला की मध्यमणि-सी।

घुडसवार आह भरकर सडक का एक चढाव चढ रहा था।

भादो आधा बीत चुका है। पर एक बूद भी वर्षा नहीं हुई है। लोभी से मिले दान जैसी सावन मे जो वर्षा हुई थी उसी से कृषको ने कुछ न कुछ किया था। खेतो मे शिशुधान, घिरे हुए किनारो के निष्करुण नैराश्य के बीच हरे सपने की तरह सर उठाए हुए थे। पर 'झूलन एकादशी' के बाद से और वर्षा नजर नही आ रही है। श्रावण पूर्णिमा के दिन भी मिट्टी नही भीगी। खेतो मे फसल धूप से जलकर राख बनने लगी है। जगन्नाथ सडक के दोनो ओर, जहा तक नजर जाएगी सिवाय सूखे से जले हुए खेतो के और कुछ नही है। ककालसार गाय-भैंसें इधर-उधर सूखी हुई मिट्टी को सूघते हुए घूम रही हैं। यहा-वहा काली-काली छाया की तरह ककाल जैसे मनुष्य भी इन खेतो मे से न जाने क्या ढूढ रहे है।

यह निश्चित-सा है कि अकाल आएगा। एक 'भरण' धान की कीमत कितने 'काहाण' होगी ? इंसान का मास इसान खा जाएगे। प्रकृति ने भी शायद एक जाति को संपूर्ण ध्वंस कर देने के लिए निगल जाने को अपना कराल मुह खोल लिया है।

पुरी अब भी बहुत दूर है। सामने भार्गवी की एक धारा और है। अश्वारोही ने कमकर लगाम खीची और घोड़े को रोक लिया।

सड़क पर एक दडप्रणामी यात्री उसकी ओर पीठ करके खड़ा हुआ था और ऐसा लग रहा था कि अश्वारोही यह समझ नही पाया कि वह मनुष्य है या प्रेत। दीर्घ पथश्रम के कारण उसके हाथ-पैर फूले हुए थे। घुटनो के जो अश क्षताक्त हो गए थे उन पर कपड़े लिपटे हुए होने के कारण अति-कुत्सित लग रहे थे। धूल-पसीना और पथश्रम के कारण शरीर विवर्ण हो गया था। सर पर से उलझे हुए बाल पीठ पर लटक रहे थे।

यात्री ने अपने दुर्बल हाथों को छाती पर लगाया और पकड़े हुए ईंट के टुकड़े को फिर सामने फेंका। ईंट का टुकड़ा जहा गिरा वहा तक उस धूलसनी सड़क पर दडप्रणाम करते हुए वह गिर पड़ा।

फिर उठा, फिर पत्थर फेंका और फिर से दंडप्रणाम किया उसने।

सहस्र उत्थान और पतन, सघात और विघात, वेदना और यंत्रणा के बीच चिर अपसृयमान एक लक्ष्य के पीछे अनंत काल से जो यात्री दौड़ा है, यह शायद वही अपराजेय, अवदमित और अक्लात तीर्थ यात्री है जो मुक्ति की पिपासा से आत्मा के सधान में चल पडा है।

यही यात्रा अवारित है।

तकीखा के आतंक से भी इस यात्रा ने अपनी गति चंचलता खोई नही है।

आज एकादशी है।

श्रीमंदिर पर एकादशी का महाप्रदीप जब उठाया जा रहा है तब इस समय भाट खोर्धा राजा के नाम से पुकार नही लगा रहे हैं।

पुकार रहे हैं वक्सी वेणु भ्रमरवर हरिचंदन महापात्र के नाम से। वक्सी भी किस मतलब में हैं ? बहुत सारी बातें तो सुनने में आ रही हैं। पर आज आख और कान के सब द्वंद्वो को मिटाना होगा।

अश्वारोही तेज गति से चल पड़ा।

2

"तुमने किसकी इज्जत बचाई है, हे जगन्नाथ ? मान-उद्धारक कहलाने वाले तुम अपना मान भी तो नही रख सके ! राजुखा कालापहाड ने तुम्हे चमडे की रस्सी से बाध बैलगाड़ी पर लटकाकर गौड सडक पर धान के बोरे की तरह घसीटा, तुम अपनी रक्षा तो नही कर सके तब मेरी लाज कैसे बचाते ?"

श्रीमदिर के सिहद्वार के सामने मेघनाद प्राचीर से सटकर खड़े, रात के अधेरे में नीलचक्र की ओर देखकर इस तरह गुहराने वाले की आखें न मालूम किस अव्यक्त आवेग और अभिमान से अचानक भर आई।

दुपहरी मे जनशून्य जगन्नाथ सडक पर आया घुडसवार ही यह गुहराने वाला है, उजाला होता तो यह पता चल जाता।

वह जैसे अपने आपसे कह रहा था, "नही नही, मुझे मान नही चाहिए। तुम्हारा मान रहे, हे जगन्नाथ ! तुम्हारा मान बचाने को तो मै तुमसे दूर हो गया हू। आहा, अभी भी तुम्हारे श्रीकर से 'दयना' फूलो की सुगध आ रही है। अभी भी तुम्हारे पद्मपलाश नयन मुझे सकेत से बुला रहे हैं। मैं महामरण हूं···महा-मुक्ति हू ! अरे अबोध, सब अभिमान भूलकर लौट आ। यही शाति है, मोक्ष है, पुनर्जन्म के बधन तोडकर यहा ही नील-निर्वाण है। मेरी राह पर काटे बिछे है···हे जगन्नाथ ! मैंने ही तो अपने हाथो से उन काटो को बिछवाया है। फिर भी मुझे खेद नही है। मैं पतित क्यों न हो जाऊं, पर तुम्हारा मान, उत्कल का मान रहे !"

बादलों से ढंकी चांदनी मे श्रीमदिर के नीलचक्रकी ओर ताकनेवाले को अचानक अतीत की एक स्मृति आई। उस समय उसकी उम्र बारह या चौदह होगी। उस साल भयकर तूफान आया था। तूफान से मदिरो पर से चक्र तक गिर पडे थे। अब भी लोगों से सुनी उस आतंक की बात याद है। उस दिन उस भयकर तूफानी रात मे श्रीमदिर का चक्र टूटकर 'भंड गणपति' के मदिर के पास पडा था। "नीलचक्र टूट गया है" सुनकर सुनाखलागढ से घोडे पर सवार होकर पिता जी के साथ पुरी आनेवाली बात अब भी याद है।

इस अमगल शकुन से देश मे फिर से मुगल दगा हो जाएगा इस भय से तब देश भर मे तैयार रहने की चेतावनी सुनाई पडी थी।

गुहराने वाले की आखों के सामने महाराज दिव्यसिंह की छाया-मूर्त्ति नाच उठी। आजानुलंबित दोनो भुजाओ में अभय,विशाल वक्ष के स्पर्द्धित विस्तार और प्रशान्त नयनों की असीम गभीरता मूर्तिमान हो उठी थी।

सच, उस साल नायब-नाजिम सुजाखां ने खोर्धा पर हमला किया था। पर दिव्यसिंह देव ने सुजाखा की फौज को सारगगढ तक भगा दिया था। मुगल दंगे के बाद श्रीमंदिर पर महाराज दिव्यसिंह देव के इक्कीसवें अब्द में फिर से नीलचक्र चढाया गया था।

श्रीमंदिर पर महादीप उठाकर चारणों ने उस दिन पुकार लगाई थी, "महाप्रभु ! महाराज दिव्यसिंह देव को शख में छिपाकर चक्र की ओट में रखो, हे महाप्रभु !"

आज भी महाप्रदीप उठाया जाएगा।

पर चारण आज बक्सी वेणु भ्रमरवर हरिचंदन के नाम से पुकारेंगे।

खोर्धा के राजा आज अपने राज्य से अपने ही हाथों निर्वासित हुए हैं।

चमगादड़ के पंख झाड़ने की तरह जनहीन 'बड़दांड' पर बादलो से ढकी चांदनी से भीगी साझ धीरे-धीरे उतरती-सी आ रही थी। 'रथदांड' से दूर देवदार और नारियल के पेड़ों की चोटियां उदास अवधूतों के रुक्ष-चूलों की तरह दिखाई दे रही थी। सब ओर प्रेतनगरी की तरह नीरवता थी। सुनने की चेष्टा करने पर भी कुछ सुनाई नही देता था। कुछ भी नही, न संध्या की शंखध्वनि, न आरती की घंटाध्वनि, शिशु का रुदन तक भी नहीं।

दक्षिण ओर की एक गली में गुहराने वाले ने अपने घोड़े को बाधकर रखा था। घोड़ा मिट्टी पर खुरों से आघात कर रहा था, वही शब्द सुनाई पड़ रहा था।

'सान परीक्षा विष्णु पश्चिम कवाट महापात्र' अपने वायदे ही को भूल गये क्या ? यहीं पर तो उन्होने मिलने का वायदा किया था।'

गुमटी के अंदर बाईं तरफ की वेदी पर द्वारपाल वीर हनुमान की सिंदूरलिप्त अतिकाय प्रतिमा दीये के उजाले में भयंकर लग रही थी। वेदी के नीचे दो मंदिर-रक्षक पाइक (सिपाही) भग के नशे से चूर दीवार से सटे लुढक कर बैठे थे। हर रोज की कुश्ती-कसरत से उनके पृथुल-पुष्ट शरीर की पेशियां गेंदों की तरह लग रही थी। पहनावे मे एक-एक लंगोट भर था और सारा शरीर खुला

था। नाभी के नीचे बंधे गमछो से मोटी तोंद और भी मोटी लग रही थी।

रथयात्रा देखने को आए यात्री मुगल दंगे के भय से श्रीक्षेत्र छोड़ चले गये थे। वैसे रथयात्रा पर दूर से आए यात्री 'झूलन' के बाद ही जाते हैं। पर हिंदू विद्वेषी तकीखा जिस दिन से कटक का नायब-नाजिम बनकर आया है, तभी से उनका अवचेतन मन एक अशरीरी आतंक से भर गया था। इसके लिए एक भी पथुवांशी यात्री दिखाई नही पड़ रहा था। क्षेत्र के ही निवासी नैमित्तिक दर्शनाभिलाषियो के अलावा और कोई भी मंदिर को नही आ रहा था। अशरीरी छाया की तरह उनका आना-जाना मंदिर के सन्नाटे को और भी बढ़ा देता था।

मंदिर को आए किसी यात्री के पैरों की आहट सुनकर कभी-कभी मंदिर-रक्षक कुछ चंचल हो जाते थे और नशे से जागकर अपने मुद्गर संभाल लेते थे। मंदिर आनेवालो मे एक-दो गौड़ देशीय वैष्णव या उसी क्षेत्र की निवासिनी कोई ऐसी वृद्धा ही होती थी जिसे म्लेच्छो के हाथो अपने नारीत्व लुंठित होने का भय ही न था। भरे कंठ से 'प्रभु-प्रभु' की रट लगाती हुई बाईस पावच्छ की धूल का तिलक लगाकर जब वे गुमटी के अंदर जाती थी तो मंदिर-रक्षको के चेहरे पर चिढ़ की रेखाएं स्पष्ट हो जाती थीं।

उनमे से एक मल्ल खासता हुआ बाहर आया। सिंहद्वार के सामने बडदाड निर्जन था। सडक की दोनो ओर के घरो और मठों से दीये तक का उजाला दिखाई नही पड रहा था। आकाश पर बादल और अंधकार की छाया बढ रही थी। हवा और भी ठंडी लग रही थी।

सिंहद्वार की गुमटी में जल रही बत्ती की लौ हवा मे नाच उठी। उसी उजाले से सिंहद्वार से सटकर खड़े उस गुहराने वाले की छायामूर्त्ति को देख मल्ल ने पूछा—

"कौन है यहा, खंभे की तरह चुपचाप क्यो खडा है...?"

गुहराने वाले का सारा शरीर उत्तेजना और आशंका से काप उठा था। जवाब मे बिना कुछ कहे वह चुप खडा रहा।

उसका दूसरा साथी भी तब तक बाहर आ गया और कमर पर गमछे को कसते हुए उसी ओर देखने लगा। वह बोला—"ये कापालिक है मितवा, इसके साथ कहा-सुनी मत करो। अगर 'ध्वंस हो जा' कहकर अपनी झोली मे से धूल फेंकी तो सारा शरीर आग की लपटो मे फंस जाने की तरह जलने लगेगा।"

वैसे कापालिक जगन्नाथ के भक्त हैं। फिर भी मंदिर के अंदर नहीं जाते।

इसलिए मंदिर-रक्षकों ने और उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे अपनी जगह लौट आए।

गुहराने वाले के चेहरे पर रेखाएं आत्म-विद्रूप से कुंचित हो गईं। वे मन-ही-मन कहने लगे…हां, कापालिक नहीं हूं तो और क्या हूं ?

दूर मंदिर की ओर आते हुए कुछ लोग दिखाई पड़े। शायद स्थानीय लोग होंगे जो सांझ की आरती देखने आ रहे थे। चारों ओर की चुप्पी के बीच उनकी बातचीत अस्पष्ट रूप से सुनाई पड रही थी।

एक कह रहा था—"और मुगल दंगा नहीं भड़केगा। गजपति रामचंद्र देव तो मुसलमान हो गए। यवनी के हाथों से खाएं…कलमा पढ़ें… नायब-नाजिम तकीखां के बहनोई बन गये। मुगल अब उत्कल पर क्यों हमला करेंगे ?"

पर दूसरे ने बताया—"अरे इससे राजा को छूट मिल गई। पर जगन्नाथ को…?"

रक्तबाहु से लेकर कालापहाड़ तक उत्कल पर जितने भी हमलावर आए हैं, जगन्नाथ पर विजय नहीं पाकर किसी ने क्या उत्कल पर विजय पाई है ? इसलिए कलमा पढ़कर रामचंद्र देव भले छुटकारा पा जाएं, पर जगन्नाथ को शांति कहां ?

पहले जो बोले थे वे ही बोले—"क्या जाने वेणु भ्रमरवर गजपति बन जाए तो शायद जगन्नाथजी का मान रह जाए। जगन्नाथ क्या वही करेंगे ? उनकी माया का पता उन्हें ही होगा।"

बात करते हुए मंदिर की ओर आनेवालों ने सिंहद्वार के पास पहुंचकर पहले द्वार पर शेरों के पैरों को छूकर धूल लेकर मस्तक पर लगाई और गालों पर चपेटा मारने की तरह स्पर्श करते हुए गुमटी के अंदर प्रवेश किया।

उनके मंदिर के अंदर प्रवेश करते ही मंदिर-रक्षकों में से एक चिल्लाया—"अरे, यहां कौड़ी चढ़ाते जा। जगीया-हनुमानजी को कौड़ी चढ़ाये बिना दर्शन करने सीधे चले जा रहे हो, कैसे ?…पश्चिमा यात्रियों की भीड़ जैसी रथयात्रा के समय थी…श्रावण पूर्णिमा तक अगर रही होती तो कमाई बनी रहती। अब 'चड़दाड' पर कौए उड़ रहे हैं, अबकी बार रथयात्रा पर जितनी भीड़ हुई थी उतनी दिव्यसिंह देव के समय के बाद और हुई नहीं।"

दूसरे ने भांग के नशे में कांपते स्वर में टोका—"अरे, समझ नहीं पाए मितवा,

वेणु भ्रमरवर ने गुंडिचा मंदिर में जो जगमोहन बनवाया है उसी के लिए यात्री आये थे, उसे देखने की भीड़ हुई थी। महाप्रभु के इतने भक्तों के रहते एक म्लेच्छ आकर राजपति की गद्दी पर बैठ गया…और भ्रमरवर यही गाली के गाली रह गये।"

मंदिर-रक्षक फिर से नशे में झूमने लगे थे। बाहर गुहराने वाले ने बादलों से घिरे आकाश की ओर ताककर गहरी सांस ली। बादलों के बीच एक अकेला तारा टिमटिमाने लगा था।

उसी तारे में से उभर आई जैसे अनेक रातों की दुश्चिंता, जो सौ बिच्छुओं के काटने की तरह ज्वालामयी हो गई थी। आज वेणु भ्रमरवर हरिचंदन महापात्र के लिए ओडिसा के कोने-कोने में जय-जयकार है। यही शायद खोर्धा के भोई वंश की मर्यादा रखेंगे…जगन्नाथ के बड़प्पन को रखेंगे।

उनके पिताजी, भगवान भ्रमरवर, हरेकृष्ण देव महापात्र के दीवान थे। श्री-मंदिर के अंदर महाप्रसाद लाने के लिए रसोई में लेकर मंदिर के अंदर तक पावडे उन्हीं के बनवाए हुए हैं।

उन्हीं के छोटे लड़के वेणु भ्रमरवर ने अब गुंडिचा मंदिर में जगमोहन बनवाया। जगन्नाथ के लिए दैनिक 'बक्सी-भोग' की व्यवस्था की है। ये अगर बच जाए तो तीसरे इंद्रद्युम्न कहलाएंगे। यात्रियों के गुमाश्ताओं के जरिए ऐसे प्रचार का आरंभ उन्होंने ओड़िसा के इस प्रांत से लेकर उस प्रांत तक करवाया है।

तकीखा की तरह दुर्दांत नायब-नाजिम जिसकी पैनी नजर श्रीक्षेत्र के चारों ओर चक्कर काट रही है, उसकी आंखों में धूल झोंककर गुंडिचा मंदिर में जगमोहन बनवाना कोई आसान बात नहीं है। पर वेणु भ्रमरवर ने इस दुस्साध्य कार्य को कर दिखलाया है। तेलंग मुकुंद के समय से ओडिसा के सौ-सवासौ साल के उपेक्षित इतिहास की तरह जो संगमरमर के खंभे पड़े थे, उन्हें उठाकर भ्रमरवर ने जगमोहन बनवाया है। दिन भर चुप्पी और रातों को काम चलता रहा। सैकड़ों कारीगरों को लेकर कुछ ही रातों में इस विराट जगमोहन को खड़ा कर दिया। इस तरह प्रचार के जरिए गुमाश्ता वेणु भ्रमरवर का यशोगान देश भर में गाते रहे हैं।

इस साल वेणु भ्रमरवर ने ही रथयात्रा के अवसर पर 'छेरा पहरा' किया। राजा म्लेच्छ बन गए। पतित हो गए, वे नहीं कर सकते हैं, पर उनकी

जगह 'जेनामणि' भागीरथी कुमार तो कर सकते थे। बड़े परीछा गौरी राजगुरु ही इन सारे तमाशों की जड हैं। उन्होंने ही कहा था कि जेनामणि नाबालिग हैं और घेरा पहरा किया बक्सी वेणु भ्रमरवर ने। जो अब तक राज सेवक के रूप में गजपति का एक सम्मानित स्वाधिकार था—उससे रामचन्द्र देव इस तरह वंचित हो गये ! और वह भी धूर्त वेणु भ्रमरवर के द्वारा।

बादलों से ढंके आकाश पर उसी तारे में जैसे भ्रमरवर की आंखों की हिंस्र-उच्छृंखलता झलक रही थी। दंताघात करने के लिए जैसे वह जीभ फेरते हुए मौक़ा ढूढ रहे थे। चेहरे पर विजयी नम्रता थी और उससे अधिक सहिष्णुता का भाव था। ललाट पर हरिचदन से बने तिलक, मुंडित मस्तक, गले में रुद्राक्ष और तुलसी की माला थी। श्मश्रुविहीन मुखमंडल, फिर भी आंखें भयंकर थी।

बादल धीरे-धीरे छंट रहे थे।

उसी प्रथम तारे के पास और एक तारा उग आया था...खोर्धा के आकाश पर दुश्चिता का दूसरा नक्षत्र...भागीरथी कुमारराय...!

वीरानी बढने लगी है। साध्यपूजा की तुरही फिर भी बजी नही है। जिस दिन से मुगल दगे की शंका उठी है उस दिन से श्रीक्षेत्र के अन्य किसी मदिर में भी आरती के समय घंटा, वाद्य आदि नही बज रहे हैं। अशरीरी भय अधकार के लोमश हाथों को बढाकर जैसे चारों ओर से गला दबाने को बढता आ रहा है।

खोर्धा के चारों ओर से धीरे-धीरे सर्वनाश का जाल फैलकर और करीब आने लगा है। दक्षिण मे चिकाकोल फौजदार की रघुनाथपुर टिकाली से लेकर चिलिका तक के भूखंड का दखल कर लेने पर भी भूख मिटी नही है। उत्तर से तकीखा खोर्धा पर शनिदृष्टि डालकर मौके की ताक में है। और इधर घर पर ही दो गृहशत्रु हैं—एक वेणु भ्रमरवर और दूसरा भागीरथी कुमारराय।

छोटे परीछा विष्णु पश्चिम कवाट महापात्र अपने वायदे ही को भूल गये क्या ? गुहराने वाले का धीरज टूटने लगा था।

निर्वेदग्रस्त नीरवता भग करते हुए मंदिर मे अचानक शख, तुरही, वीणा, घटा, मृदग आदि आरती के वाद्य बजने लगे।

मदिर के अदर से समवेत कंठ समुद्र के गर्जन की तरह सुनाई देने लगा—"मणिमा, महाबाहु...चक्र की ओट मे रखो है...।"

कोई छोटी-सी चाह नही है। तुच्छ प्रार्थना भी नही है, असीम महाशून्यता की

असीमता मे विलीन हो जाने के लिए सात-ससीम की उत्तरल प्रार्थना ही है यह…"हे मणिमा महाबाहु !"

गुहराने वाला और कुछ नही देख सका, सुनाई नही दिया कानो को। एक उत्तुंग लहर—जैसे कि उन्हे बाहो से पकड़कर वृथा भय, दुश्चिंता और आशंका के कर्दम पंक मे से उठाकर ऊपर ले लिया अभयलोक की ओर।

आकाश पर बादलो मे और अधकार नही है। शतसूर्य की दीप्ति से वह श्वेत कमल वन की तरह उद्भासित हो उठा है। उसी की पृष्ठभूमि पर 'वलियार भुज' की भुजाए अभय मुद्रा मे उत्तोलित हैं। कालस्रोत का चक्रवात उनके पादपद्मो मे शत-शत दुर्गों के प्राचीरो को भूलुठित करके शत-सहस्र सिहासन और मुकुटो को उठा गिराकर आर्त्तनाद और हर्षनाद के बीच वज्रनाद करता-सा बह रहा है। इतिहास के उस दुर्निवार स्रोत मे कौन जीता, कौन हारा, कौन गिरा, कौन मुक्त है यह विचारना वृथा ही है। उसके ऊर्ध्व मे उस अनत, प्रशात, अभय मुद्राकित कर पल्लवो मे उद्बोधन है…भय नही है भय नही है…इस रात्रि का भी प्रभात है।

गुहराने वाला गद्गद स्वर मे 'मणिमा…मणिमा' पुकारता हुआ 'बडदाड' की धूलि पर गिरकर लोट-पोट हो गया।

उसी अवस्था मे पता नही वह कब तक पडा रहा इसकी चेतना ही नहीं थी। अचानक किसी के मृदुल स्पर्श से उसकी नीद टूटी…उस समय फिर चारो ओर अधकार मूर्च्छित-सा बिछ गया था।

सान परीछा विष्णु पश्चिम कबाट महापात्र उस गुहराने वाले के समीप अधकार मे बैठ गये और शात स्वर मे बोले—"सडक पर इस तरह क्यो लेटे हुए है? पिपिली फौजदार का कोई गुप्तचर अगर देख लेगा तो सर्वनाश हो जाएगा।"

गुहरानेवाले ने सभलते हुए पूछा—"महाप्रदीप के उठने मे और भी देर होगी क्या?"

छोटे परीछा ने बताया—"जब तक यह मुगल दगे की शका है हमने महा-प्रदीप जलाने की व्यवस्था रोक रखी है। इसके दो अर्थ होगे।"

गुहराने वाले ने खिन्न स्वर मे कहा—"पर इस छोटी-सी बात के लिए एकादशी को महाप्रदीप उठवाना भी बद करवा दिया है आपने ?"

उस जगह और देर तक रुकना निरापद नही था। छोटे परीछा बोले—"घोड़ा

और इधर खोर्धा के राजा कभी रणपुर की सीमा पर स्थित मालती, कभी घटिआगारा, बोलगड़, कभी पदनपुर तो कभी दाढ़गुरु-पुर या धनिनेश्वरपुर शासन आदि अख्यात देहातों में घूमते हुए रह रहे थे।

दिव्यसिंह देव के 24वें अंक में नवाब शुजा खां की लड़ाई में उनकी हार हुई है, सब कुछ लगभग खत्म-सा हो था। पर हिन्दू-द्वेषी तकी खां उनके नायब-नाजिम बनकर कटक आया है, स्थिति फिर से कुछ भयंकर उठी है।

सन्ध्या-पूजा के समय श्रीमंदिर के सिंहद्वार के सामने जो गुहराने वाला छोटे परीछा विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र की प्रतीक्षा में था वह अब सात लहरी मठ के समीप स्थित समुद्र तट की बालू पर टहलते हुए इस गति और दुर्गति पर विचार कर रहा था।

सामने है अंधकारपूर्ण समुद्र। ऊपर बादलों से घिरा आकाश। आगे क्षितिज पर एक नीलाभवलय-रेखा आकाश और समुद्र के बीच क्षीण अंतर को सूचित कर रही थी—समस्त अंधकार के सीमांत पर आलोक की संभावना की भांति। फेनिल जल की प्राचीरें एक के बाद एक जैसे बेला को ग्रसने के लिए बढ़ी चली आ रही थीं। और, वेलाभूमि पर से फेन मुकुटहीन सर्वस्व जो लहरें लौटी जा रही थीं वे आने वाली लहरों के प्रतिरोध के साथ फिर से मत्त दिङ्नागों के दन्ता-घात से मरणांतक आर्त्तनाद करती हुई बेला पर आकर पछाड़ खा रही थीं।…

आक्रमण…आत्मरक्षा…पराजय !

आक्रमण…आत्मरक्षा…पराजय !

खोर्धा इतिहास में विडंबना की पौन पुनिकता की तरह लहरों के उत्थान-पतन, अग्रगति और पश्चाद् पदसरण के उस क्रम का विराम नहीं था। चारों ओर एक विषण्ण परिवेश था।

आगंतुक वहां से सात लहरी मठ की ओर लौट पड़ा, पर तब तक छोटे परीछा आये नहीं थे।

फीकी-सी चांदनी में सात लहरी मठ अंधकार का स्तूप-सा लग रहा था।

गजपति प्रतापरुद्र देव के आदेश से पुरी श्रीक्षेत्र से विताड़ित होकर शून्यवादी संत कवि जगन्नाथ दास ने इसी जगह अपने साधना-पीठ की प्रतिष्ठा की थी। किंवदंती है कि जगन्नाथ दास की साधना के बल से समुद्र ने उस दिन सात लहरी के पीछे हटकर, राजदंड और निर्यातन की सीमा के उस पार, इस सागरोद्भूत

भूमि की सृष्टि की थी। अतिबड़ी जगन्नाथ दास इसी जगह समाधि लगाकर लीन हुए थे।

पर अब अतिबड़ी उत्कलीय वैष्णव संप्रदाय की शून्य साधना के परित्यक्त होकर प्रेम-भक्ति की स्वाद्यता में लुप्त हो जाने की तरह वैष्णव, साधक और भक्त श्रीक्षेत्र के भोगैश्वर्यमय मठों को लौट गए। इसलिए सात लहरी मठ नागफनी और बबूल के जंगल के बीच परित्यक्त होकर पड़ा था। बालू से मंदिर के अग्रभाग को छोड़कर और कुछ दिखाई नही पड़ता था। उदासी संन्यासी या भटकने वाले भिक्षुक कभी-कभार आकर वहां आश्रय लेते थे।

मंदिर के समीप पहुंचते ही भीतर से आने वाले मंद प्रकाश की अस्पष्ट रेखा को देख आगतुक पल भर के लिए पैंड़ी पर रुक गया। हो सकता है सान परीछा ही उसकी प्रतीक्षा मे पहले से मंदिर के अंदर हो, पर मंदिर के अदर प्रवेश करते ही आगतुक चौंक पडा। जगन्नाथ दास की समाधि के नीचे एक शतधा चिह्न-छिन्न शय्या पर किसी वृद्ध का ककाल-सा शरीर लोट रहा था। समाधि पर जलते हुए प्रदीप के मंद प्रकाश से भीतर का भौतिक परिवेश और भी भयावह लग रहा था। वृद्ध के नयनो मे प्रतिफलित उस मंद प्रकाश से जीवन की क्षीण-सूचना भर मिल रही थी। वृद्ध के शरीर का सारा अस्थि-पजर स्पष्ट रूप से उभर आया था। दोनो पैर अस्वाभाविक रूप से सूजकर मलिन लग रहे थे। वृद्ध के मस्तक पर चदन तिलक और कठ मे तुलसी की माला थी। दीवार पर श्री-जगन्नाथ का एक चित्र टगा हुआ था जिसके पास बेंत की एक लाल छडी थी। पास ही प्रसादी झडी थी, चढाए हुए कुछ फूल बिखरे पड़े थे और एक कड़ाही में महाप्रसाद था।

मंदिर के अदर आगंतुक के पैरों की आहट सुन वृद्ध ने मुड़कर देखा। कफ मिश्रित घरघराहट से भरी उसकी सासो के स्वर से परिवेश और भी डरावना लग रहा था।

'कहां है सान परीछा ? ये वृद्ध कौन हैं ?'

यही सोचते हुए आगतुक वहां किंकर्तव्य-विमूढ सा खड़ा था कि इसी बीच तद्रा जड़ित आखो को मलते हुए न जाने कहां से पच्चीस-तीस वर्ष का एक युवक वहां आ पहुंचा। चेहरे और पहनावे से युवक एक उत्तर भारतीय यात्री-सा लगता था।

आगंतुक के प्रश्न करने के पहले ही उसने पश्चिमी बोली में बतलाया था—"हम सब मुसाफिर हैं !" पर यह वृद्ध कौन है ? यहा इस वीरान मे, और इस तरह क्यों है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर मे युवक ने जो बताया उससे आगंतुक ने यही समझा कि वृद्ध इस युवक के पिता हैं। वे दोनो साल भर चलते हुए इसी 'बाहुडा दशमी' को श्रीक्षेत्र पहुचे हैं। रथ के ऊपर श्रीजगन्नाथ को देख प्राण तजने की आशा से वृद्ध श्रीक्षेत्र आया था। और ज्यादा से ज्यादा एक-दो दिन में वृद्ध के प्राण-पखेरू उड जाए तो उसे स्वर्ग द्वार मे फेंककर वह फिर वापस चला जायेगा।

इस तरह दूर-दूर से इस अदग्ध धरती पर आखें मूदने की अभिलाषा लेकर लोग आते हैं। पर बहुत ही कम भाग्यवान हैं जिनकी आशाए पूरी होती हैं। ये देवता भी विचित्र हैं…जिनसे मनुष्य सौभाग्य प्राप्ति की आशा नही रखता। उसकी केवल एक ही प्रार्थना रहती है—मोक्ष, महामरण, पुनर्जन्म के नागपाश से मुक्ति।

वृद्ध की निष्प्रभ क्लात दृष्टि जगन्नाथ के चित्रपट पर निबद्ध थी। पृष्ठभूमि से समुद्र का उत्ताल घोष सुनाई दे रहा था।

सारे हिंदू जगत मे जगन्नाथ के प्रति इस अविचलित विश्वास और इस विश्वास पर आश्रित राजशक्ति की भित्ति-भूमि को ही चूर्ण कर देने की कसम खाई थी तकीखा ने। उसे पता है कि जब तक जगन्नाथ हैं तब तक यह राजशक्ति भी अपराजेय है। इसलिए श्रीक्षेत्र पर ही आक्रमण करने का सकल्प उसने कर लिया है। तकीखा को उस सर्वनाशी प्रतिज्ञा से निवृत्त करने के लिए आगतुक मुसलमान तक हो गये। तब शायद खोर्धा बच जाए और साथ-साथ जगन्नाथ भी बच जाए। पर तकीखा महाधूर्त है। उसने सही समझ लिया है कि यह आत्मरक्षा का कौशल ही है।

आगतुक ने गहरी सास ली। वह चिंतित लग रहा था। वह बाहर चला आया। व्यर्थता, पराजय और विषाद से दूर चले जाने की जितनी चेष्टाए वह कर रहा था उतने ही ये सब उसके पीछे-पीछे छाया की तरह लगे हुए थे। बाहर आकर फेनयुक्त जलकणों से आर्द्र, शका-सशय से शून्य पवन मे उसने कुछ सतोष मे सास ली।

आगतुक के बाहर आते ही मान परीछा उसके पास आ गये और रोष-मिश्रित

स्वर में कहने लगे—"आपको उस मदिर के अंदर जाते हुए किसी ने देखा होगा तो? श्रीक्षेत्र में जीरा भूजा जाए तो कटक मे तकीखा तक खुशबू पहुंचती है। यहां विभीषणों का अभाव नही है।"

मान लहरी मठ में मटकर घने झाऊ का जगल है। वे दोनों उसी जंगल मे घुम गए। पागल पवन के कारण झाऊ का जगल जैसे सांय-सांय करता हुआ गहरी सांस ले रहा था। कई जगह पत्तों के बीच से छनकर चांदनी सारे अरण्य को रहस्यमय बना रही थी। ये सब मिलकर जैसे आगंतुक के अवसाद और सान परीछा की उत्कंठा को उत्तरोत्तर बढाते जा रहे थे।

मान परीछा ने आशकित स्वर मे बताया—"छामु! आपके बारबार श्रीक्षेत्र आने की खबर तकीखां के कानो तक न पहुचे तो कुछ हो।"

सिंहद्वार के सामने आगंतुक ने कापालिकों की तरह मुंह पर दाढी लगाकर और गैरिक परिधान धारण करके जो छद्मवेश बनाया था उसे एक-एक करके उतार फेंका—"इस छद्मवेश से और कबतक काम चलेगा महापात्र! अब सत्य का सामना करने का समय आ गया है।"

शरीर पर से बनावटी रूप को उतार फेंकने के बाद सामने जो चेहरा स्पष्ट हुआ उस पर दाभिकता थी, दृढ निश्चय की अद्भुत दीप्ति थी, एक गांभीर्यपूर्ण महानता झलक रही थी। चंद्रमा के मद-मद प्रकाश में चादी का कमरबंद चमक रहा था। तलवार की नोक की तरह लंबी नाक, मीग की तरह ईषत् वक्र मूछें और अधरों पर शकाहीन, संशयहीन मद-मद स्मित हंसी मे जैसे उनकी आत्मा की असीम शौर्यपूर्ण निष्ठा प्रकट हो रही थी।

मान परीछा संध्या से सिंहद्वार के सामने से अब तक जिस प्रश्न के उत्तर को टालते आ रहे थे, अचानक आगतुक ने वही पूछा—"क्या कुछ हो पाया महापात्र?"

मान परीछा ने गहरी सास ली और संक्षेप मे जवाब दिया—"कुछ भी नही।"

आगंतुक पर ऊपरी तौर पर इसकी कुछ भी प्रतिक्रिया नही हुई। पर अगर उस समय सान परीछा ने ध्यान मे देखा होता तो अवश्य ही वे उन आखो को देखते जो क्रोध के आवेश से अचानक जलती-सी लग रही थी।

आगंतुक ने शांत स्वर में पूछा—"विश्वनाथ बाजपेयी ने क्या कहा?"

सान परीक्षा ने क्लांत कंठ से उत्तर दिया—"अकेले वाजपेयीजी ही पक्ष में बोलें तो क्या होगा? मुक्ति मंडप के अधिकांश पंडितों का मत ही उनके विरुद्ध था।"

सारी घटना ही अप्रीतिकर थी इसलिए शायद उसका आद्योपांत वर्णन करने के लिए सान परीक्षा इच्छुक नहीं थे। पर आगंतुक ने पूछा—"पर उसमें बाधा किसने पहुंचाई? हरेकृष्णपुर शासन में बलदेव विद्यालंकार पक्ष में बोले या उन्होंने विरुद्ध मत दिया?"

सान परीक्षा तिक्त कंठ से बोले—"अगर वे पक्ष में बोले होते तो वाजपेयीजी की बात ही रह जाती।"

आगंतुक ने बताया—"तो मेरा अनुमान मिथ्या नहीं हो सकता…तुम्हें पता है हरेकृष्णपुर शासन का दान किसने दिया था? नहीं, तुम्हें मालूम नहीं है। वेणु भ्रमरवर के पूर्वजों ने यह शासन बसाया था। इसलिए उन्हीं के इशारे से इस शासन में शास्त्रों की व्याख्या तक होती है। पर गोविंद वाजपेयी भी तो तर्क में पराजित होने वाले नहीं हैं।"

सान परीक्षा बोले—"वाजपेयीजी ने अनेक तर्क दिए। अनेक शास्त्रों से उद्धरण दिए। अकबर बादशाह के समय आए टोडरमल और मानसिंह ने अनेक यवनियों को अंतःपुर में स्थान दिया था और उन्हीं की बेटी-बहनों को अकबर और जहांगीर आदि मुगल बादशाहों के खानदान में ब्याहा था—इस बात तक की आलोचना हुई। इसके पश्चात् भी उन्हें किसी ने श्रीमंदिर प्रवेश करते समय रोका नहीं था, तो अब महाराज को श्रीमंदिर में प्रवेश करने से क्यों रोका जाए?

"तो बलदेव ने तर्क किया कि टोडरमल और मानसिंह विजेता के रूप में आए थे। उनके लिए सात खून माफ थे!

"तब वाजपेयी जी ने इतिहास से बताया कि सूर्यवंशी राजा कपिलेंद्र देव के पुत्र पुरुषोत्तम देव भी तो जगन्नाथ के परम सेवक थे। एक निम्नवंशीया के गर्भ-जात होने पर भी उनके लिए जगन्नाथ के श्रीअंगों को स्पर्श करने में कोई बाधा नहीं थी।

"तब बलदेव तर्कालंकार अट्टहास करने लगे। अब उन्हें वाजपेयीजी को हटाने का सुयोग मिला था। वाजपेयी जिस समस्या के पक्ष में लड़ रहे थे वह

समस्या ही वर्तमान परिस्थिति में दुर्बल थी। हजार स्मृति-शास्त्रों पर वहां पांडित्य का टिकना असंभव था। तर्कालंकार दुर्गजय करने की तरह चीत्कार करने लगे—"आप किसके साथ किसकी तुलना कर रहे हैं, बाजपेयीजी ! कहा वीरश्री गजपति गौड़ेश्वर नवकोट कर्णाट कलवर्गेश्वर अभिराय भूत भैरव दु:सह दु:शासन अनीकरण राउतराय अतुल बल पराक्रम सग्रामे सहस्त्रबाहु धूमकेतु श्री श्री श्री पुरुषोत्तम देव···और···"

सान परीछा विष्णु पश्चिम कबाट महापात्र इसके बाद मौन रह गये। पर उसके बाद तर्कालंकार ने क्या कहा होगा उसे समझना आगतुक के लिए कष्ट-साध्य नही था। उन्होंने अविचलित स्वर मे पूछा—"उसके बाद।"

सान परीछा ने बताया—"तो वाजपेयी ने बताया—'म्लेच्छ गणिका करमाबाई के खिचड़ी भोग के लिए भी तो परमेश्वर की श्रद्धा थी। यह बात सर्वजन विदित है। और उसमें तो महाप्रभु के अंग अपवित्र नहीं हुए थे।'

"तर्कालंकार ने तत्काल उत्तर दिया—'गणिका सर्वथा म्लेच्छ नहीं होती। इसलिए करमाबाई को म्लेच्छ कैसे कहे? वह प्रभु के श्रीअंग की सेवा करने वाली अन्य दासियो की तरह नही थी इसका क्या प्रमाण है?'

"वाजपेयी ने असहाय स्वर से फिर बताया—'पर गणिकाए म्लेच्छ यवन भोग्या नही बनेंगी इस सघर्ष मे तर्कालकार जी के शास्त्रो मे कोई निर्देश है क्या?'

"तर्कालकार इस तरह के परिहाससूचक उल्लेख से उत्तेजित हुए और कानों मे शोभित मकर कुंडलो को आदोलित करते हुए उन्होंने उत्तर दिया—'पर यवन भोग्या गणिका यवनी है यह किस न्यायशास्त्र मे बताया गया है? वाजपेयी महाशय, यह धरती ही यवन भोग्या हो गई है और होगी भी। तो क्या वसुंधरा ही अस्पृश्या बन जाएगी? गणिका, गजिका, नदी और मृत्तिका स्पर्श दोष से मुक्त हैं।'

"भाग के नशे में आमोदित मुक्तिमडप मे विराजमान सोलह शासनों के पंडित वर्ग इन उत्तेजनापूर्ण तर्कों को सुन रहे थे। वे नस्य सूघकर तर्कालकार के समर्थन मे 'साधु साधु' चिल्ला उठे।

"वाजपेयी उसके बाद तत्त्वों पर आ गए। बोले—'जगन्नाथ सर्वाधार हैं, सर्व हेतुक, सर्वमय और पतित पावन हैं। श्रीक्षेत्र ऐसा महिमामय है कि यहा म्लेच्छ

यवन तो मनुष्य हैं ही, गर्दभ भी चतुर्भुज रूप धारण करता है—अहो तत्रैव महात्म्य गर्दभोऽपि चतुर्भुजः—इन शास्त्र वाक्यों के रहते जगन्नाथ पर साम्प्रदायिक संकीर्णता का आरोप करना समीचीन होगा क्या ?"

"तर्कालंकार ने उत्तर दिया—'यह अवश्य सर्वथा अस्वीकार्य है। पर जगन्नाथ द्वारा पतितों का उद्धार करना और पतितों का उनका सेवक होना एक ही बात नहीं है। किसी भी धर्म से च्युत व्यक्ति, विशेषकर म्लेच्छ-यवनों का रत्न-सिंहासन पर प्रभु का स्पर्श करने की बात कभी भी हिंदू धर्म के लिए साध्य नहीं होगी।'

"मुक्ति-मंडप पर बैठे शासनी पंडित एक साथ चिल्लाए—'अवश्य ! अवश्य !!'

"वाजपेयीजी की वंश-परंपरा और प्रसिद्धि उत्कल विदित है। वे इस तरह एक सामान्य शासनी पंडित के द्वारा अपमानित होंगे ऐसा किसी ने सोचा तक नहीं था। वाजपेयी आहत अपमान से चुप हो गये। तब वल्लभपुर शासन के भागी पढिआरी बोले—'ये सारी अर्थहीन बातें छोड़िए तर्कालंकारजी। मैं जो कहता हूं उसका समाधान करें। यवनी के साथ सहवास से पुरुष पतित होता है या नहीं ? कोई पुरुषोत्तम देव के 16वें अंक में कल्याणमल्ल कटक सूबे के नायब-नाजिम बनकर आये थे। हिंदू होते हुए भी उनमें हिंदुओं-सा आचार नहीं था। जहांगीराबाद में उन्होंने अपनी रखैल उस्मानीबाई के लिए विपुल भू-संपत्ति की व्यवस्था की थी। इसमें अवश्य कोई दोष नहीं है। बहु-संभोग समर्थ पुरुषों के लिए वह दोषनीय नहीं है। वस्तुतः शास्त्रों में बीज-निक्षेप पुरुषों का धर्म बताया गया है। उस समय यवनी के अंग स्पर्श करके कल्याणमल्ल तो पतित नहीं हुए थे। कल्याणमल्ल के लिए तो सिंहद्वार बंद नहीं किया गया था ? रत्न-सिंहासन के पास जाकर वे देवार्चन कर सकते थे। तो महाराज रामचंद्र देव के लिए यह सारी व्यवस्था क्यों की गई ?'

"मुक्ति-मंडप के पंडितों ने इनका भी समर्थन किया और 'अवश्य ! अवश्य !!' की आवाज लगायी थी।

"पढिआरीजी का वक्तव्य समाप्त ही नहीं हुआ था कि तर्कालंकार ने नास सूंघी और बीच ही में उन्हें रोकने की तरह चिल्लाये—'अरे…अरे पढ़िआरी जी !' और बोले—'एक बात तो कहें। कल्याणमल्ल ने कलमा पढ़कर उस्मानी

बाई को ब्याहा था क्या···या वह उनकी रक्षिता भर थी। घोर हिंदू-द्वेषी कल्याणमल्ल तक ने कलमा पढ़कर यवनी के साथ विवाह नहीं किया था केवल एक मनसबे के लिए। राजा अगर कह भी देते कि रानी उनकी रक्षिता हैं।···"

आगंतुक विस्फोट की तरह चिल्लाया—"रहने दें। और इस आलोचना को सुनकर कोई लाभ भी नहीं है, महापात्र!"

बिखरे हुए बालों की तरह पागल पवन से चचल हो झूमते झाऊ के पत्तों के बीच मलिन चंद्रमा को देखते हुए आगतुक की आखों के आगे वन्य हिरनी की तरह सुरमा रजित दो नयनों की असीम वेदना और पके अनार के बीजों की तरह रक्तिम अधरों के अव्यक्त आवेदन झूम गये। पल-भर में गगन-भुवन जैसे उन नयनों की आहत दृष्टि से आच्छन्न हो गये।

आगंतुक अन्यमनस्क-सा बोला—"पतितों का उद्धार करने की बात छोड़िए। अब जगन्नाथ ही का किस तरह उद्धार करें, यह चिंता करें।"

विष्णु महापात्र आगतुक के स्वर में अचानक उभरे हुए आतंकपूर्ण उद्वेग को नहीं समझ सके। हिंदू-द्वेषी बादशाह औरंगजेब की मौत के बाद जगन्नाथ मुगल आक्रमण से निश्चित और निरापद थे। दिव्यसिंह देव के सातवें अंक में एकरामखां के द्वारा श्रीक्षेत्र पर आक्रमण के पश्चात् और किसी भी नायब-नाजिम की शनिदृष्टि पुरी पर पड़ी नहीं थी। औरंगजेब के बाद जो बादशाह हुए उनमें से कोई भी उतना क्रूर और धर्मांध नहीं था। फिर ओड़िसा में नायब-नाजिम सुजाखां के समय श्रीजगन्नाथ पूर्ण रूप से निरापद थे। सुजाखां सूफी था इसलिए उसकी भी जगन्नाथ के प्रति असीम श्रद्धा थी। अतः उसने जगन्नाथ सड़क पर दस्यु या मुसलमान फौजदारों और जिलादारों के आतंक से दूर-दूर से आने वाले तीर्थयात्रियों की रक्षा करने के लिए 'डाक-चौकी' व्यवस्था का प्रवर्तन किया था। औरंगजेब के समय से ही उसने घृणित जजिया कर उठा दिया था। इसलिए जगन्नाथजी पर नियमित और धारावाहिक आक्रमण को एक दुःस्वप्न की तरह ओड़िसा के निवासी भूलने लगे थे। अतः जगन्नाथ पर फिर से आक्रमण होने वाला है या आक्रमण की शंका है सुनकर सान परीछा हठात् विश्वास नहीं कर सके, यद्यपि मुगल दंगा होने की आशंका से श्रीक्षेत्र का कण-कण आतंकित था।

सान परीछा बोले—"जगन्नाथ इस अपराजेय जाति की आत्मा हैं। वे प्रत्येक

ओड़िशा के प्राणों मे प्रतिष्ठित हैं। उन्हें यहां से कौन विच्युत कर सकता है ? रक्तबाहु, फिर राजुखा से लेकर कालापहाड़ और एकरामखां तक जितने हिंदू द्वेषियों ने जगन्नाथ पर आक्रमण किया है, सब मिट्टी मे मिल गये पर अब भी नीलशैल पर सुदर्शन पताका लहरा रही है।"

आगतुक छाती पर दोनो भुजाए बाधकर परिहास व्यजक स्वर मे बोला—"आपकी बातें सलाप की तरह कर्णप्रिय हैं। पर आप भूलते है कि ओडिशा का नायब-नाजिम सुजाखा नही है, उसकी जगह उसकी जारज सतान तकीखा बहादुर दिलेरजग बैठा है। हिंदू-धर्म और देवायतनो को ध्वस करने के लिए वह राजुखा कालापहाड से भी बढ़कर कुछ कर दिखाने के लिए कमर कसे हुए है। जब वह बालेश्वर बदरगाह पर फौजदार के रूप मे था तब उसने सुवर्णरेखा के उस पार के एक भी हिंदू-मदिर को अक्षत नही छोडा, यह आप जानते हैं महापात्रजी।"

सान परीछा विष्णु पश्चिम कवाट महापात्र बोले—"पर शाहजहानाबाद दिल्ली मे मुगल बादशाह मुहम्मद इब्राहीम की अवस्था भी तो अस्थिर होने लगी है। राजपूताना होकर जो गुमाश्ता पदयात्री लेकर लौटे हैं उनका कहना है कि दिल्ली के दरबार मे अमीर, उमराव, वजीर, बक्सियो मे बढने वाले झगडो के कारण मुगल शक्ति ही पगु बन गयी है। मराठो ने चौथ, सरदेश-मुखी की वसूली के लिए दिल्ली दरबार के दरवाजे तक को खटखटाना आरभ कर दिया है। मुगलो का विषैला दात ही झड गया है। अपनी रक्षा करना जिनके लिए असभव होने लगा है वे कैसे जगन्नाथ पर आक्रमण करेंगे !"

आगतुक कुछ तीखे और असहिष्णु स्वर मे बोले—"यात्रियो के भगेड़ी गुमाश्ताओं को जब आपने परामर्शदाता के रूप मे चुना है तो समझना होगा कि श्रीजगन्नाथ की प्रतिष्ठा सकटापन्न है। औरगजेब की मृत्यु के बाद से दिल्ली के बादशाहो की तुलना मे सूबेदार ही अधिक शक्तिशाली बन गये है यह क्यों आप भूल रहे हैं ? बग, बिहार और ओडिसा में अब मुगल शक्ति सुप्रतिष्ठित हो चुकी है। मुर्शिदाबाद मनसब अब दिल्ली के मयूर सिहासन तक को फीका करने लगा है। अफगान सर पर चढे हुए हैं। मराठो ने बगला सूबे मे क्या किया ? घात तक नही कर पाए। उधर दक्षिण मे प्रबल पराक्रमी *निजाम-उल्-मुल्क फतहजंग* घोर हिंदू-द्वेषी के रूप मे विख्यात है। औरगजेब के समय से जिस घृणित जजिया

कर को उठा दिया गया था वह फिर से लगाया जा चुका है। मराठा उसपर भी चुप है—हाथ जोड़े हैं। इधर कटक में हिंदू-विरोधी तकीखां का राज है। तकीखां के साथ सलाह करके पहले फतहजंग ने चिलिका पर हमला किया और उस इलाके को दखल करके बैठ गया है। उसी के साथ-साथ टिकाली रघुनाथपुर भी चला गया। प्राण लगाकर लड़ने पर भी फतहजग की सेना को रोकना असंभव हो गया।"

एक गहरी दीर्घश्वास से जैसे आगंतुक का सारा शरीर कांप गया।

आगतुक ने अपने को संयत करके पूछा—"इन आक्रमणो का क्या मतलब हो सकता है। समझते हो?"

सान परीछा बोले—"चिलिका का नमक-माहाल आय का इतना बडा सूत्र पा जाने के बाद निजाम क्या छोडता उसे!"

आगतुक असहिष्णु स्वर मे बोला—"नमक नही सान परीछा, चिलिका अब तक जगन्नाथ को आश्रय देता आया है। अबकी बार श्रीजगन्नाथ पर अंतिम आक्रमण करने के पहले इसलिए चिलिका के मार्ग ही बंद कर दिये गये हैं। तकी-खा का इसके लिए समर्थन भी है। अगर यह नही था तो वह पीछे से खोर्धा की सेनाओं पर आक्रमण क्यो करता? आः…अगर बक्सी वेणु भ्रमरवर ने उस समय नीच विश्वासघात न किया होता तो…!"

आगंतुक और कुछ नही कह पाया। उत्तेजना और आवेश से उसका कठरुद्ध होता गया।

फिर कुछ समलकर वह बोला—"इसलिए अब से ही तैयार रहो महापात्र! इन पच्चीस सालों की शांति के कारण रत्नवेदी पर से जगन्नाथ को लेकर कही छिपाने का कौशल ही सब भूल चुके होगे। अगर पहले से प्रस्तुत और सतर्क नही रहेगे तो फिर जगन्नाथ चमड़े की रस्सी से बधे हुए जगन्नाथ सडक पर घसीटे जाएगे…यह असभव नही है।"

समुद्र जैसे उस समय अस्वाभाविक रूप से स्तब्ध हो गया था। मलिन आकाश पर स्थिर बादलों की ओट मे विकलांग चंद्रमा की स्वप्नातुर चांदनी मे जैसे पल-भर के लिए समुद्र की आखो मे नीद ही आ गयी थी। झाऊ वन का पागल पवन भी न मालूम क्यो शात हो गया था। मलिन चादनी में झाऊ वन के बीच सोयी पड़ी पगडडी, जो तोरण-सी लग रही थी, उसके बीच समुद्र की बालू ही नजर

आ रही थी। समुद्रतट के सपाट बालू के प्रांतर···और उनके उसपार तंद्रा जड़ित समुद्र !

क्लांति और अवसाद से आगतुक ने कई बार ललाट पर हाथ फेरा। बायें कर की अनामिका की हीरक अगूठी छायाधकार मे स्फुलिंग की तरह चमक रही थी।

हाय ! उन आखों मे कितनी रातो की नीद थी। झाऊ के पत्तो की मरमर झंकार बलात आखों की पंखुडियो को बोझिल बनाती जा रही थी···पर समय कहा है···सामने अतहीन पथ है···चलना है।

आगतुक सात लहरी मठ के पास आया। घोडे पर छलाग लगायी और तीर की तरह छूट गया। जाते हुए कहता गया—"महापात्र, चलता हू। शायद निकट भविष्य मे तुम्हारे साथ साक्षातकार भी न हो···तैयार रहना···सतर्क रहना।"

आगतुक और उसके पीछे-पीछे सान परीछा फीकी चादनी की गहरी रात की कालिमा में अदृश्य हो गये।

उनके चले जाने के बाद मलिन चादनी के उजाले में झाऊ वन मे से एक छाया-मूर्ति निकल आयी। वह धीरे-धीरे मठ के समीप ही प्रतीक्षा करने वाले बड परीछा गौरी राजगुरु तक आयी। उसी छाया-मूर्ति ने सात लहरी मठ के अदर उस जराजीर्ण वृद्ध की मृत्यु-शय्या के समीप अपने को पितृभक्त पश्चिमा यात्री के रूप में परिचित कराया था।

गौरी राजगुरु उसे देखकर बोले—"सब तो अपने ही कानो से सुन लिया है तुमने। पिपिली के फौजदार मुनिमखा जगबहादुर को सब बता देना। खोर्धा राजा की गर्दन टूट गयी है···फन नीचा हो गया है, फिर भी विषैला दात है। इसलिए वे जगन्नाथ का नाम लेकर इधर-उधर घूमकर लोगो को भडका रहे है। सब-कुछ तो तुमने सुन लिया है। पर खासाहब को बता देना कि जब तक मदिर में बड़ परीछा गौरी राजगुरु है तब तक श्रीक्षेत्र मे तकीखा नायब-नाजिम का स्वार्थ बना रहेगा। रामचद्र देव की गति-विधियो का पता उसे चलता रहेगा।"

पूर्वोक्त छद्मवेशी युवक पिपिली फौजदार का सिवान नवीस या गुप्तचर था। उसने पूछा—"ये रामचद्र देव कहा थे ? ये तो खोर्धा के राजा हाफिज कादर हैं।"

गौरी राजगुरु बोले—"एक ही बात है भाई। बार-बार कटक मे अपने को

मुसलमान बनाकर जितने कलमा पढ़ें 'बालिसंताघाट' पार कर आने पर वह रामचंद्र देव बन जाते हैं।...हाय, कहां गये तैलंग मुकुंद के पुत्र, प्रपौत्र, गजपति सिंहासन के उत्तराधिकारी ! और सुनाखलागढ के अज्ञात कुलशील किसी नरसिंह जेनामणि के पोते रामचंद्र देव, महाराज हरेकृष्ण देव का भतीजा बनकर आज गजपति सिंहासन पर स्पर्धा करने लगा है।"

जब लौटने के लिए छद्मवेशी युवक घोड़े पर सवार होने लगा तब गौरी राजगुरु पीछे से पुकार कर बोले—"खासाहब को कह देना, मेरा इनाम अभी तक मिला नहीं है। त्रिकाल संध्या में मैं उन्हें आशीष देता हूं। वह कटक में सामान्य नायब-नाजिम क्यों मुर्शिदाबाद के नवाब बनें।"

छद्मवेशधारी युवक अदृश्य हो गया।

गौरी राजगुरु उसकी ओर क्षुधित आंखों से देखकर अपने मुंडित मस्तक पर हाथ फेर रहे थे।

द्वितीय परिच्छेद

1

खोर्द्धा वरूणेइ राजमहल का अंत पुर अस्वाभाविक रूप से नीरव है। सूई भी गिरे तो स्पष्ट सुनाई देगा। दुर्ग के तीन ओर बास और बेंत के जगल मे से एक कपोत के रुदन के अलावा और कोई ध्वनि नही है। उस पर सध्या-कालीन मलिन आलोक उस जड वातावरण को और भी विपण्ण कर रहा था।

रामचद्र देव उर्फ हाफिज कादर बैठकखाने मे हाथी दात से निर्मित आसन पर बैठे अकेले शतरज खेल रहे थे। आसन के चारो ओर रगीन मखमली गद्दो वाले अन्य आसन खाली थे। आज वहा परिषद और विश्वास-पात्रो मे से कोई नही था। रामचद्र देव खेल रहे थे या खेल के बहाने बायें कर पर मस्तक का भार रखे शतरज पर आखें गडाए किसी गहरी सोच मे डूबे हुए थे, कुछ पता ही नही चलता था। उनका प्रशस्त ललाट निष्प्रभ लगता था। ललाट पर झूल आयी लट और यत्नहीन बढी हुई रूखी दाढी के कारण चेहरा और भी मलिन लग रहा था। गले मे रुद्राक्ष की माला, ललाट पर सिंदूर-तिलक और शरीर पर की गैरिक धोती— ये सब मिलकर उनके चेहरे पर एक भटकने वाले कापालिक का भ्रम पैदा करते थे। कोई परिचयहीन व्यक्ति अगर उन्हें उस समय देखता तो यही कहता। उस दिन सध्या मे उन्हें इसी वेश मे श्रीक्षेत्र मे देखकर अनेको ने कापालिक ही समझा था।

शतरज पर दोनो ओर से घोडे और तीसरी ओर से हाथी के कब्जे मे राजा घिरा हुआ था। रामचद्र देव शायद राजा की चाल पर ही सोच रहे थे। एक ही दिशा राजा के लिए हल्की और निरापद थी। पर अगर उस ओर से भी चलें तो दूसरी या तीसरी चाल मे राजा के लिए मातखाना सुनिश्चित था। रामचद्र देव अपनी बढ़ी हुई दाढी को धीरे-धीरे सहलाते हुए उसी चाल के बारे मे सोच रहे थे।

पर कोई अगर उन्हे गौर से देखता तो अवश्य ही कहता कि उनका ध्यान खेल पर नही था। बीच-बीच मे वे जिस तरह पदातिकों को इधर-उधर सरका रहे थे उसमे उनका खेल पर ध्यान नही था यह स्पष्ट प्रतीत होता था। बीच मे वे अस्पष्ट स्वर मे प्रलाप करते से बोले—"अब भी मात नही हुई है···हुई नही है। आ', उस दिन अगर ऋषिकुल्या के मुहाने के रास्ते से चिलिका के अदर जाने के लिए नाव भी मिल गयी होती तो मालुद के फौजदार के लिए रोक लेना उतना आसान नही था।"

पर नही हो पाया। नही हो सका। मालुद के फौजदार की एक ही चाल से वे मात खा गये थे

उसके बाद लोहे के पिंजड़े मे बंद होकर रामचंद्र देव बार-बार कटक आए थे। उस ग्लानिपूर्ण और तिक्त स्मृति के जागते ही उनके मस्तिष्क मे जैसे उत्तप्त रक्त प्रवाहित होने लगा था। वे उत्तेजित-से मुट्ठी मे बालों को भीचते हुए उठकर गवाक्ष तक चले आए।

राणीहंसपुर के प्रासाद खाली पड़े थे। रामचंद्र के धर्म को तजकर रजिया से विवाह करने के पश्चात् महारानी ललिता महादेई, युवराज जेनामणि भागीरथी को सग लेकर अपने पीहर चली गयी थीं। प्रतिज्ञा करके गयी थी कि अब कभी खोर्धा की मिट्टी तक का स्पर्श नहीं करेंगी। उनकी अन्य दोनों रानियों ने भी यही किया था। परित्यक्त राणीहंसपुर के पश्चिम ओर रजिया के लिए एक नये भवन का निर्माण किया गया था। पर रजिया भी कटक मे थी। प्रति सप्ताहांत मे एक बार रामचंद्र देव कटक अवश्य आएं और तकीखा के पास अपनी वशंवदता का परिचय दें इसलिए उसने रजिया को कटक के लालबाग दुर्ग मे बंदिनी की तरह रखा था।

दुर्ग के चारों ओर मेघनाद प्राचीर, प्राचीर से सटकर कंटीले बास और बेंत का जगल प्रतिरक्षा के व्यूह के रूप में था। वह जंगल सिर्फ तोप के गोलों से ही दुर्ग को बचाता नही था, वरन् शत्रुओं के प्रवेश-पथ को भी दुर्गम और कटकित बनाता था। केवल उत्तर दिशा के प्राचीर का कुछ अंश खान-ए-दौरा के आक्रमण के समय तोपों की मार से गिर पड़ा था।

यह भोइ मुकुंददेव के समय की बात है।

उस दिन से आज तक उस प्राचीर के पुनर्निर्माण की चेष्टा ही नही हुई है।

भोइ मुकुंददेव के समय मुगल फौजदार हासिमखा के बार-बार आक्रमण के कारण खोर्धा एक भटकने वाला शिविर-सा बन गया था। दुर्गम गुफाओं से लेकर दूर-दूर के देहातों मे खोर्धा राजधानी को कांख के नीचे दबाकर ले चलने की तरह गजपति भटक रहे थे। आज भी वह दुर्योग टला नही था।

ओडिसा की अंतिम स्वाधीनता, पीडन-आक्रमण के बावजूद लाख-लाख निरन्न, क्षुधित और अत्याचारित ओडिआओ के प्राणो मे विद्यमान थी। दुर्गों के प्राचीर वहा निरर्थक और अवातर थे। फिर भी दुर्ग प्राचीर की कुछ खास जगहो मे तीरकमानधारी गोलदाज पत्थर की मूर्तियो की तरह खड़े थे। प्राचीर पर रखी पीतल की तोपें साध्य सूर्यालोक मे चमक रही थी।

मेघनाद प्राचीर के दक्षिण अरण्याकीर्ण बरूणेई पर्वतमाला को काटता-सा पुरी तक का रास्ता साप की तरह घाटियो मे सोया था। रथीपुर और पिपिली होकर घूमकर न जाकर इस घाटी के रास्ते से पुरी जाने मे बहुत ही कम समय लगता है। युझारसिंह और बरूणेई गढ से पुरी के लिए तीर्थयात्री इसी रास्ते से जाते हैं। फिर मुगल दंगे से भी यह रास्ता निरापद था। घाटी के ऊपर बरूणेई शिखर का दिशा-सकेत करने वाला स्तभ गढ के एकात पहरेदार की तरह दिग्वलय रेखा को भेदता-सा अपराजेय अटलता के साथ खड़ा था। उस दिशा-सकेत करने वाले स्तभ पर से जो सिपाही आखो मे दूरवीक्षण यत्र लगाकर चारो ओर की निगरानी कर रहा था, वह आसन्न सध्या की पृष्ठभूमि मे एक छायामूर्ति-सा प्रतीत हो रहा था। उस स्तभ पर से पुरी श्रीमदिर का नीलचक्र ही नही दक्षिण की ओर चिलिका की नील जलराशि तक अनायास देखी जा सकती है।

रामचद्र देव ने गहरी सास ली और शतरज तक लौट आए। शतरज पर मोहरों को इधर-उधर कर दिया और दोनो ओर हाथियो को और बीच मे राजा को रख फिर से सजाने लगे।

पर अचानक उनकी आखो के आगे छवि की तरह टिकाली रघुनाथपुर की लड़ाई और चिलिका तटपर स्थित उस मालकुदा गाव की स्मृति तैर गयी।

लड़ाई हुई होती तो बात और थी। पर उस दिन युद्ध के बिना मालुद फौजदार ने शह और मात ही कर दी थी। और रामचद्र देव लोहे के पिंजरे में बद करके हाथी की पीठ पर लादे गये थे।

—

शतरंज के दोनों हाथियों के मार उनकी मन की आंखों में भालेरी के अंतिम छोर की मर्दकोट घाटी-जैसे बन गये थे।

यह है मर्दकोट छत्रद्वार घाटी और यह है भालेरी के पर्वत के दो प्राचीर··· प्राचीरों के नीचे मर्दकोट गड़ का छत्रद्वार घाटी के चिर जाग्रत और अपराजेय पहरेदार के रूप में खड़ा है। प्राचीर में बनी प्राकृतिक गुमटियों में कंटीले घांस की ओट में तीरकमान लेकर तीरंदाज सतर्क हैं। पर्वत शिखर पर की खास जगहों पर बंदूक लेकर बंदूकची तैनात किए गये हैं। पर्वत पर से अदूरस्थित चिलिका का नीला जल सूर्य के आलोक में झिलमिला रहा है। मालुद की तरफ से मुगल फौजदार वकीरखां आए तो उसे रोकने के लिए आठगड़ और हुमारगड के 'पाइक' भी तैयार बैठे हैं। घाटी के प्रवेशद्वार पर हाथी द्वारा खींचे जाने वाले रथों पर तोपें सुसज्जित हैं। पैदल सैनिक हाथों में बर्छी और तलवार लेकर घोड़ों पर सवार घाटी के चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। उनके कंधों पर बंदूकें झूल रही हैं और छाती पर बंधे 'बदउडाल' में से निकल आए नुकीले कुंत चमक रहे हैं। इसी मर्दकोट छत्रद्वार घाटी पर अतीत में खल्लिकोट, हुमा, गंजागड और पुरुणागढ महूरी के पाइकों ने मुगल नाजिम वकीरखां को पानी-पानी कर दिया था। मुगल फौजी जंगल और पार्वत्य युद्ध के अभ्यस्त नहीं थे इसलिए उन्हें हटाना ओड़िआ पाइकों के लिए और भी आसान हो गया था। इसलिए चिकाकोल फौजदार के आक्रमण से खोर्धा की दक्षिणी सीमा को सुरक्षित रखने के लिए इस घाटी को एक दुर्भेद्य दुर्ग की तरह संगठित किया था रामचंद्र देव ने।

यह शकाब्द 1728 और रामचंद्र देव के चौथे अंक की घटना है।

2

टोडरमल और मानसिंह के समय से खोर्धा को पदानत करने के लिए आज तक मुगल फौजदार और सेनापतियों के द्वारा आक्रमण चलता आ रहा है। मराठों के बाद अगर कोई प्रबल पराक्रम के साथ मुगलशक्ति के विरुद्ध लड़ा है तो वह ओडिआ पाइक सेना ही है।

लेकर। काशिमपेटा के बाहुबलेंद्र उनका साथ देंगे। चिलाकोल फौज अगर जयंतगढ लाघकर बाहुदा नदी भी पारकर आए तो जरडा, सुरगी और खेमंडी के दुर्गपतियो की सेना उन्हे महेद्रगिरि के पास रोकेंगी। वहा रामगिरि दुर्ग के शिगाराजू अपने व्याघ्र चर्मावृत भीमकाय कध सैनिको को लेकर उनका साथ देंगे। वहा से अगर बच निकलें तो अत मे छत्रद्वार घाटी। छत्रद्वार मे ही हिंदू शक्ति और मुगल राजशक्ति की अतिम मुठभेड होगी। उसके लिए रामचद्र देव ने अपने सारे रणकौशल का प्रयोग कर प्रतिरोध की व्यूह-रचना की थी। मर्द-कोटगढ और छत्रद्वार घाटी बक्सी वेणु भ्रमरवर के प्रत्यक्ष दायित्व मे थी। गजागढ के कृपासिंधु मानसिह वेणु भ्रमरवर के बहनोई है। सामने से वे छत्रद्वार की रक्षा करेंगे। उधर उत्तर दिशा मे कालुपडा के पास तकीखा की सेना को जरिपडागढ के हरिहर रायसिह और नरणगढ के शत्रुघ्न बैरीशल्य रोकेंगे। उन्हे सहायता देंगे बाणपुर राज्य के राजा गोविंद हरिचदन। शिशुपालगढ से इस तरह पद-पद पर तकीखा का प्रतिरोध करने के लिए सेनाए तैयार रहेगी।

रामचंद्र देव का खून खौलने लगा। इतिहास के साथ जूआ खेलते हुए उन्होने वही अतिम बाजी लगाई थी।

शत्रु के प्रतिरोध के लिए व्यूहो का निर्माण करना सभव है पर विश्वासघात के विरुद्ध कुछ भी नही किया जा सकता। इतिहास मे इस तरह की एक भी घटना नही घटी है जो विश्वासघातक के विरुद्ध घटी हो। और, उस दिन छत्र-द्वार घाटी मे भी वह सभव नही हुआ था।

रामचद्र देव उस निष्ठुर सत्य को उस समय तक समझ नही सके थे।

टिकाली के पास रामचद्र देव ने देखा कि वहा काशिमपेटा के बाहुबलेंद्र के सैनिको के अलावा कोई दूसरा समर्थन नही था। राजमहेंद्री के राजू भी अत तक दिखाई नही दिए। सामान्य प्रतिरोध के बाद रामचद्र देव हटने लगे। बाहुदा नदी को पार करना चिकाकोल फौज के लिए सुविधाजनक नही था पर जयतगढ के दुर्गपति हरिहर विश्वास राय ने भी अंत समय मे धोखा दिया और दुर्ग के अदर ही रह गये। अपने-अपने स्वार्थों की रक्षा करने मे समूह स्वार्थ और स्वाधीनता जिस तरह विपन्न हो रही थी उसके प्रति उनका ध्यान ही नही था। चिकाकोल फौजदार के पैदलजगी, घुड़सवार, बरकदाज, बन्दूकदार, गोलदाज और

बदूकची सब मिलाकर बीस हजार होते थे। बाहुबलेंद्र की छोटी सेना उनका क्या मुकाबला करती? उसपर रामचंद्र देव भी यह चाहते नही थे कि उनकी शक्ति का क्षय हो। अगर राजू के तैलंग सैनिक आए होते तो उनके साथ मिलकर चिकाकोल पर हमला करना संभव हुआ होता!

पर वह नहीं हो सका। किसी तरह अपने प्राणो की रक्षा करके बाहुबलेंद्र सेना सहित काशिमपेटा लौट गये। पूर्व योजना के अनुसार महेंद्रगढ के पास जरडा और सेमडी के पाइकों ने जुलफिकारखा का प्रतिरोध किया था। पर रामगिरिगढ के शिगाराजू की कध सेना ने, व्याघ्रचर्मावृत्त होकर तीर-कमानो ही से जो कर दिखाया उसे भेदकर महेंद्रगिरिगढ़ लांघकर आगे बढना जुलफिकारखा के लिए मुश्किल था। कधो ने अपने प्राणों की आहुति दे दी…शताधिक मारे गये, पर उन्होंने जुलफिकारखा की सेना को भी अछूता-अक्षत नहीं छोड़ा। उसी समय मिले अवसर का उपयोग किया था रामचंद्र देव ने, और वे *छत्रद्वार की ओर दौड़ भागे। पीछे से आक्रमण करके चिकाकोल पर अधिकार* करना अर्थहीन था। छत्रद्वार से अगर जुलफिकारखा को हटाया नही जाएगा तो खोर्धा का ही अत हो जाएगा।

इसलिए दिनरात एक करके रामचंद्र देव छत्रद्वार की ओर दौड़े। उनके साथ केवल दो सौ सैनिक थे। पदातियों में से कुछ शस्त्रास्त्रों से, कुछ क्षुधा से या क्लाति से मर-खप गये। जो बचे थे 'जय जगन्नाथ' पुकारते हुए छत्रद्वार की ओर दौड़ रहे थे।

सबकी दृष्टि छत्रद्वार पर थी। पौ फटने मे देर थी। रात्रि का अंधकार अब भी कुछ शेष था। फूलटा के पास जुलफिकारखा की फौज के पहुंचने की खबर रामचंद्र देव को एक दिन पहले ही लग गयी थी। ऋषिकुल्या तक पहुंचने में उन्हें एक दिन से ज्यादा नही लगना चाहिए—क्योंकि महेंद्रगिरि के बाद रास्ते मे और कोई प्रतिबंधक नही था। इसलिए उन्हें शाम के पहले किसी तरह छत्रद्वार घाटी तक पहुंचना ही था। उसी लक्ष्य से रामचंद्र देव सैन्य के साथ आगे बढ़ रहे थे।

और कुछ ही समय के बाद उषा की स्निग्ध अरुण-किरण-स्नाता ऋषि मोहिनी ऋषिकुल्या की नील जल-वेणी आभासित हो उठेगी। उसके बाद गंज,…उसके बाद छत्रद्वार……उसके बाद……

ऋषिकुल्या की दक्षिणी ओर फैले प्रांतर पर रामचद्र देव अनानक हतप्रभ खड़े के खड़े रह गये। पूर्व दिशा की अरयल आलोकित पृष्ठभूमि पर शताधिक पताकाएं मंद-मद बहते पवन से आदोलित हो रही थी। ध्यान पूर्ण दृष्टि से देखने से लगता था मानो सैन्य शिविर है। ऋषिकुल्या के उत्तरी भाग पर अर्द्ध-चद्राकार व्यूह की रचना की गयी थी, ऐसा प्रतीत होता था।

कौन हो सकते हैं ये ? तकीखा की सेना क्या छत्रद्वार भेदकर दक्षिण की ओर बढ रही थी ? बक्सी वेणु भ्रमरवर क्या युद्ध में परास्त हो गये हैं ? गजागढ़ के मार्नसिंह ने क्या प्रतिरोध ही नहीं किया ? रामचद्र देव के प्रतिरक्षा के सारे सुपरि-कल्पित व्यूह क्या रेत के महलों की तरह ढह गये ?

एक पदातिक एकाएक चिल्लाया—"यह फौज बक्सी साहब की है। मुगलों की अगर होती तो सारी पताकाएं हरित होती···पर ये सब तो गैरिक है ?"

प्रदोष के आद्य आलोक मे बक्सी वेणु भ्रमरवर की सेनावाहिनी की गैरिक पताकाएं फहरा रही थी। उन्हें देख कर पदातिको का बल और दभ जैसे लौट आया था। पर रामचद्र देव अस्पष्ट स्वर से आर्तनाद-सा करने लगे। प्रभात के मद समीर मे आदोलित बक्सी की पताकाएं जैसे रामचद्र देव की पराजय को ही घोषित कर रही थी।

बक्सी छत्रद्वार छोड़कर यहा क्या करने आए हैं। ? मालुद के फौजदार ने इस अवसर का लाभ उठा छत्रद्वार की घाटी पर अधिकार न करके क्या उसे छोड़ा होगा ? राजपुर प्रांतर में चिकाकोल फौजो को भी रोकना सभव नही है। चिकाकोल के सैनिको की सख्या चाहे जितनी भी क्यो न हो, उन्होंने चाहे जितनी तैयारियां क्यो न की हो, अनायास उन्हें छत्रद्वार घाटी मे परास्त किया जा सकता था। पर यहा राजपुर के इस बालुकापूर्ण प्रांतर मे रामचद्र देव की सेना के सेमल रूई की तरह उड जाने मे समय ही नही लगेगा।

गजागढ वर्तमान आत्मरक्षा के लिये एक ही जगह है। वहा से किसी तरह अगर बाणपुर के गोविंद हरिचदन के साथ बात हो पाती, तो शायद चिकाकोल फौज को रोकना सभव भी हो जाता। रामचद्र देव 'जय जगन्नाथ' 'मा भै.' की ध्वनि लगाते हुए राजपुर प्रांतर की ओर घोड़ा दौड़ाये चले गये।

रामचद्र देव का स्वागत करके उन्हें ले जाने के लिए विपरीत दिशा से घोड़े पर बक्सी वेणु भ्रमरवर आ रहे थे। रामचद्र देव ने बीच ही में बक्सी के घोड़े को

लगाम पकड कर रोक लिया। अचानक घोड़े के रुक जाने से बक्सी कुछ सामने झुक गये।

रामचंद्र देव ने पूछा—"यह तुमने क्या किया बक्सी ? छत्रद्वार घाटी को युद्ध के बिना ही मालुद फौजदार के हाथों मे सौपकर आ गए, अब पीछे से चिकाकोल फौजदार बीस हजार का लश्कर लेकर बढ रहा है। इस प्रबल मुगलशक्ति को क्या तुम रोक सकोगे ?"

बक्सी तुरत कुछ नही बोल सके। उनमें रामचंद्र देव को सीधा देखने का नैतिक साहस तक नही था।

घोर विश्वासघातक का, चाहे वह जितना भी क्रूर क्यो न हो, इस तरह असहाय और सरल प्रभु को सामने देखते समय, कंठ अपने आप रुद्ध हो जाएगा। वह उत्तर देने मे अवश्य ही सकपकाएगा। दृष्टि अपने आप अस्थिर होकर दूसरी ओर हट जाएगी। बक्सी की उस समय वैसी ही अवस्था हुई थी।

रामचंद्र देव ने फिर से असहाय स्वर मे पूछा—

"यह तुमने क्या किया बक्सी ?"

बक्सी के रूखे चहरे पर की रेखाएं कठोर दिखने लगी। खोपडी-सा मुडित मस्तक, ललाट के नीचे गह्वर जैसी आखें फरसो की तरह चमक उठी। पर पलभर मे ही वे सयत हो गए। अपने को वश मे कर लिया और वशवद सुलभ स्वर में बोले—"सामने चिकाकोल के लश्कर है···पीछे है। मालुद के छत्रद्वार घाटी के अदर 'दोनो ओर से आए वार' से हम क्या बचकर निकलते ?"

पर बक्सी क्या पहले से की गयी सारी सुपरिकल्पित योजना और मत्रणाओ को भूल गये ? घाट के उत्तरी ओर जिन तोपों को सजाया गया था चिलिका तट से ऊपर उठने समय ही मालुद फौजदार की सारी सेना का निपात हो गया होता। घाटी के पीछे चिलिका तट पर तीरदाज सैनिक तैयार बैठे थे। इसलिए छत्रद्वार घाटी की सीमा पर पैर धरना भी मालुद के फौजदार के लिए सभव नही था।

रामचद्र देव समझ गये कि इनसे तर्क करके कोई लाभ नही है। पर बक्सी के स्वर मे अभय था। वे बोल रहे थे—"छामु, आप चिंता न करें। इसी राजपुर से भी हम अनायास चिकाकोल की फौज को हटा सकते हैं। हमारे पीछे-पीछे गजागढ के कृपासिंधु मानसिंह हैं।"

डूबते को तिनके का सहारा की तरह गजागढ़ के कृपासिंधु मानसिंह का नाम सुन

कर रामचद्र देव की आशा जागी। अतीत में गजागढ ने अनेक विपदाओं को अनायास टाला है। कृपासिंधु मानसिंह चाहे तो अनायास चिकाकोल के सैनिकों को ऋषिकुल्या के उस पार रोके रख सकते हैं।

रामचद्र देव ने आदेश दिया—"तुम ऋषिकुल्या की उत्तरी ओर सेना तैयार रखो बक्सी···मैं गजागढ चलता हूं।" और उन्होंने घोड़ा दौडाया गजागढ की ओर। दूसरे सैनिक बक्सी के साथ रह गये ऋषिकुल्या की उत्तरी ओर की प्रतिरक्षा के सगठन के लिए। दूर उठती धूल की घूर्णि मे धीरे-धीरे अदृश्य हो जाने वाले रामचंद्र देव को देखकर बक्सी के कठोर मुखमडल पर कुटिल हसी उभर आई···जो भृकुटी मे लीन होती गयी।

सर पर ज्येष्ठ की धूप उस समय आग बरसा रही थी। दिगत तक व्याप्त वालुका प्रातर में तृषित मृगतृष्णा नील-निष्ठुरता मे झलमला रही थी।

3

शतरंज की बिसात पर सारे मोहरो को फिर से इधर-उधर हटा दिया रामचंद्र देव ने। एक गहरे, यत्रणादायक क्षत पर जैसे किसी ने फिर से प्रहार किया हो···

रामचद्र देव ने चीत्कार किया—"कौन है···चेरदार!"

शून्य प्रकोष्ठ रामचद्र देव के चीत्कार को प्रतिध्वनित करके फिर से शात हो गया।···आज लोधु मिश्र खलीफा को भी देर हो रही है। वह अगर आया होता तो दो-एक बार खेलकर उसी मे डूब जाने से यह यत्रणादायक स्मृति और पश्चात्ताप ही स्मरण न आता। रामचद्र देव फिर से शतरज पर मोहरो को सजाने लगे।

अब एक पदातिक के सामने राजा है। राजा इससे बचेगा कैसे? अपना घोड़ा भी अचल है। रामचद्र देव की आखो के सामने उसी दिन का वह चरम विडबना वाला दृश्य फिर से साकार होने लगा।

उस दिन गजागढ भी इसी तरह अचल हो गया था। रामचंद्र देव सामने से

आने वाले शत्रुओं के साथ लड़ने के लिए निकले थे, पर घर ही के शत्रु के साथ लडने की शक्ति उनमे कहा थी ? फिरभी उन्होंने कृपासिंधु मानसिंह को अनुनयी कठ से कहा था—"भाई, मान उद्धारण मानसिंह, इस असमय मे तुम ही एकमात्र भरोसा हो। और किस पर भरोसा करू। सिंहासन की बात छोड़ो। आज की लड़ाई मुगलो से जगन्नाथ को बचाने के लिए चल रही है। खोर्धा का राज परिवार मिट जाए तो मुझे दुःख नही होगा पर जिस शरण पजर जगन्नाथ की अभय ध्वजा के नीचे ओड़िसा के आबाल वृद्ध वनिता पले हैं और सुरक्षित हैं, जो हिंदू जगत के अम्लान मस्तकमणि के रूप मे विद्यमान हैं उनका मान नही रखोगे मानसिंह ?"

पर मानसिंह ने नितात अनासक्त और अविचलित रहकर रामचद्र देव के मुह पर ही गंजागढ दुर्ग की अर्गलाओ को बंद कर दिया। कटे पर नमक छिडकने की तरह रामचद्र देव की असहाय आखों के सामने गजागढ पर श्वेत ध्वज मानसिंह और मुगल बधुत्व के प्रतीक के रूप मे फहराने लगा। निष्फल, निरर्थक और निर्वीर्य रोष मे रामचद्र देव के सर्वांग काप उठे। मनुष्य के जीवन में ऐसा भी समय आता है जब उसकी समस्त शक्ति, विलक्षणता और प्रभुता किसी दुष्ट शक्ति के आगे झुक जाती है और नीच षड्यत्रों में कुचले जाकर पानी के बुलबुले की तरह लीन हो जाती है। वैसे ग्लानिपूर्ण क्षणो मे मनुष्य यही सोचने लगता है जैसे वह किसी अदृश्य के क्रूर अभिशाप से सपूर्ण रूप से असहाय और अथर्व बनता जा रहा है। उस समय वाल्मीकि भी गिरिशृगो का उपहास करता है और पिपीलिका भी हाथी के साथ स्पर्धा करने लगती है। गजागढ के रुद्ध सिंहद्वार के सामने रामचद्र देव के जीवन मे वैसा ही एक विडबनापूर्ण क्षण आया था।

रामचंद्र देव ने असहाय दृष्टि से रौद्रतप्त आकाश को देखा। विश्वासघात और बंधुद्रोह मिलकर उन्हे नाश कर देने के लिए जैसे हजार आखो से घूर रहे थे। रामचंद्र देव के तृषार्त कंठ से निकल पडा—"निराश्रय मा जगदीश रक्ष।"

और अपेक्षा करने का समय नही था। चिलिका होकर किसी तरह अगर बाणपुर पहुंच जाए तो···

रामचद्र देव ऋषिकुल्या नदी की दायीं ओर मुड़कर एक नागदती जगल को पार करते हुए चिलिका की ओर बढ़ने लगे।

पिछले साल अकाल पड़ा था, इस साल भी दुर्भिक्ष ही होगा। ज्येष्ठ शेष

होने को आया फिर भी अभी तक मिट्टी भीगी नही है। सारे खेत फटे हुए मैदानो की तरह पडे हैं। हल भी नही चल पाता। जिधर देखो तेज धूप और मरीचिका ही मरीचिका नजर आएगी। ककाल-सार गाय-गोरू झुड के झुड सूखी मिट्टी को ही सूघते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। घास या पत्ता समझ कर जिस ओर भी वे मुह फिराते उन्हे मिट्टी ही मिट्टी मिलती।

दूसरी ओर नमक की क्यारिया भी खाली पड़ी थी। समय था जब यहां शताधिक मजदूर और माझी काम करते थे। यह नमक उत्पादन के प्रधान क्षेत्रो मे से था। 'मलागी' नावो मे यहा से पिपिली, बालेश्वर और दक्षिण मे दूर-दूर की जगहो को नमक का चालान किया जाता था। 'गजा' के देशी नमक व्यवसायी इन नमक क्यारियो मे से सोना कमाते थे। पर गजा पर जबसे फिरगियो का आधिपत्य हुआ है तबसे, और औरगजेब के शासन काल मे जिस दिन से एकरामखा ने मालुद और वज्रकोट आदि जगहो मे नमक की गद्दियां खोली उस दिन से मुगलो की लूट के भय से यहा का नमक कारोबार पूरी तरह बद ही हो गया था। उसके बाद नमक मिले पानी को जमा रखने के लिए खोदे गए गड्ढे धरती पर क्षतो के निशान से लग रहे थे। नमक उत्पादन के लिए बनाए गए चूल्हे और टूटी हडिया सब ओर बिखरी पडी थी और वह क्षेत्र श्मशान-सा लग रहा था।

जर्जरित जीवन के अन्त मे महामृत्यु के आह्वान के समान, उस प्रात, परित्यक्त, उत्तप्त प्रातर मे दूर बालूचरा के उस पार के बडे और झाऊ के जगल के बीच से चिलिका का गहरापानी जैसे रामचद्र देव को इशारे से बुला रहा था। पर रामचद्र देव जितने निकट जा रहे थे वह मृगतृष्णा दूर हटती जा रही थी।

रामचद्र देव उस जलती धूप मे कहा चल रहे थे उन्हे मालूम नही था। उनकी यह धारणा थी कि चिलिका तट पर से किसी पाइक गाव को पहुच जाएं तो और कुछ हो न हो पीछा करने वाले मुगल लश्करो से तो अपनी रक्षा कर सकेंगे।

उन्हें उन दिशाहीन नमक के खेतो और अनजान बालूमय प्रातरो मे क्षितिज की पृष्ठभूमि पर धीरे-धीरे एक छोटा-सा गाव दिखाई देने लगा। एक छोटे मदिर के शिखर पर स्थापित नीलचक्र दुपहर की धूप मे चमक रहा था। पर नीलचक्र पर ध्वज नही था।

उस गाव का नाम है मालुदा। उसके उस पार जटिआ पर्वत हाथी की सूड

की तरह चिलिका के अंदर तक फैल गया है। रामचंद्र देव ने स्मरण किया इसी जगह कहीं जगन्नाथ ने आत्मगोपन किया था। नव दिव्यसिंह देव के सातवें अंक में मुगलों ने श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण किया था। अतीत में जब भी दक्षिण में जगन्नाथ स्थानांतरित हुए हैं उन्होंने सदा यही अवस्थान किया है। इसलिए न मालूम कब से यहां पर एक मंदिर बन गया था और सेवकों की व्यवस्था करके पाइकों की एक छोटी-सी बस्ती बसाई गयी थी। दिव्यसिंह देव के समय के बाद से अब तक श्री जगन्नाथ पर और कोई उपद्रव नहीं हुआ था इसलिए शायद यह मंदिर वर्जित अवस्था में था। सेवक कहीं दूसरी जगह चले गये थे। उनके घर तूफानों से गिर कर, हो सकता है, चिलिका की बालू में ही लीन हो गये हों, पर वहां के खंडहर इस बात की सूचना दे रहे थे कि कभी यहां बस्ती थी। पाइकों के मकान भी अब धीरे-धीरे परित्यक्त होने लगे हैं। बारिश, तूफान और मरम्मत के बिना वे सारे मकान ढह कर मरे हुए हाथी की तरह पड़े थे। उनमें से मंदिर से सटकर बने कुछ मकान ही ठीक हालत में थे। अधिकांश पाइक गांवों की अवस्था यही थी। आत्मरक्षा और आक्रमण ही के कारण घर के घर सूने हो गये थे और गांव के गांव उजड़ गये थे।

गांव की सड़क सूनी थी। चिलिका के पागल पवन की गहरी सांस के अलावा और कोई भी शब्द सुनाई नहीं दे रहा था। रामचंद्रदेव उस समय तृष्णा से अधीर हो गये थे। पानी के लिए वे एक घर की ओर बढ़ गये। घर का बाहरी किवाड़ खुला था। दीवारों पर बनाई गयी अल्पनाएं बारिश के कारण और देख-रेख के अभाव से जगह-जगह छूट गयी थीं और घाव के निशानों की तरह लग रही थीं।

घोड़े पर से रामचंद्र देव कूद पड़े और जोर-जोर से पुकारने लगे—"पानी दो, पानी! ···कौन है घर पर?"

पर भीतर से कुछ भी उत्तर नहीं आया तो वे बरामदे में आ गये।

भीतर एक जराजीर्ण बुढ़िया शिथिल पर कर्कश स्वर में न मालूम किसे कोस रही थी—"अरी ओ छोटी बहू···मुंहजली, चुड़ैल हट्टे-कट्टे जवान बेटे को खा गयी, जेठों को खा गयी···जेठानियां भी तेरे मुंह से नहीं बचीं, अंत में बुड्ढे ससुर को भी खा गयी। तब भी तेरा पेट नहीं भरा कि मुझे नोच-नोच कर खाने को बैठी है। मुझे तो यम ही ने छोड़ दिया है, तू कैसे खाएगी री जगत खायी··· सत्यानाशिन···अरी ओ सर!···मरो-मरो! मुओं को मना कर रही थी कि

होने को आया फिर भी अभी तक मिट्टी भीगी नहीं है। सारे खेत फटे हुए मैदानों की तरह पड़े हैं। हल भी नही चल पाता। जिधर देखो तेज धूप और मरीचिका ही मरीचिका नजर आएगी। कंकाल-सार गाय-गोरू मुह में मुह घुसा मिट्टी को ही सूघते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। घास या पत्ता समझ कर जिस ओर भी वे मुह फिराते उन्हे मिट्टी ही मिट्टी मिलती।

दूसरी ओर नमक की क्यारियां भी खाली पड़ी थीं। समय था जब यहां शताधिक मजदूर और मांझी काम करते थे। यह नमक उत्पादन के प्रधान क्षेत्रों में से था। 'मलागी' नावों मे यहा से पिपिली, बालेश्वर और दक्षिण मे दूर-दूर की जगहो को नमक का चालान किया जाता था। 'राजा' के देशी नमक व्यवसायी इन नमक क्यारियों मे से सोना कमाते थे। पर राजा पर जबसे फिरंगियों का आधिपत्य हुआ है तबसे, और औरंगजेब के शासन काल मे जिस दिन से एकरामखां ने मालुद और वज्रकोट आदि जगहों मे नमक की गद्दियां खोलीं उस दिन से मुगलों की लूट के भय से यहां का नमक कारोबार पूरी तरह बंद ही हो गया था। उसके बाद नमक मिले पानी को जमा रखने के लिए खोदे गए गड्ढे धरती पर क्षतो के निशान से लग रहे थे। नमक उत्पादन के लिए बनाए गए चूल्हे और टूटी हड्डियां सब ओर बिखरी पडी थीं और वह क्षेत्र श्मशान-सा लग रहा था।

जर्जरित जीवन के अन्त मे महामृत्यु के आह्वान के समान, उस प्रांत, परित्यक्त, उत्तप्त प्रांतर में दूर बालूचरा के उस पार के बड़े और झाऊ के जगल के बीच से चिलिका का गहरा पानी जैसे रामचद्र देव को इशारे से बुला रहा था। पर रामचद्र देव जितने निकट जा रहे थे वह मृगतृष्णा दूर हटती जा रही थी।

रामचद्र देव उस जलती धूप मे कहा चल रहे थे उन्हे मालूम नही था। उनकी यह धारणा थी कि चिलिका तट पर से किसी पाइक गाव को पहुंच जाएं तो और कुछ हो न हो पीछा करने वाले मुगल लश्करो से तो अपनी रक्षा कर सकेंगे।

उन्हे उन दिशाहीन नमक के खेतो और अनजान बालूमय प्रांतरो मे क्षितिज की पृष्ठभूमि पर धीरे-धीरे एक छोटा-सा गाव दिखाई देने लगा। एक छोटे मदिर के शिखर पर स्थापित नीलचक्र दुपहर की धूप मे चमक रहा था। पर नीलचक्र पर ध्वज नही था।

उस गाव का नाम है मालकुदा। उसके उस पार जटिआ पर्वत हाथी की सूड

की तरह चिलिका के अंदर तक फैल गया है। रामचद्र देव ने स्मरण किया इसी जगह कही जगन्नाथ ने आत्मगोपन किया था। नव दिव्यसिंह देव के सातवें अक मे मुगलो ने श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण किया था। अतीत मे जब भी दक्षिण मे जगन्नाथ स्थानातरित हुए है उन्होंने सदा यही अवस्थान किया है। इसलिए न मालूम कब से यहां पर एक मदिर बन गया था और सेवको की व्यवस्था करके पाइकों की एक छोटी-सी बस्ती बसाई गयी थी। दिव्यसिंह देव के समय के बाद से अब तक श्री जगन्नाथ पर और कोई उपद्रव नही हुआ था इसलिए शायद यह मदिर वर्जित अवस्था मे था। सेवक कही दूसरी जगह चले गये थे। उनके घर तूफानो से गिर कर, हो सकता है, चिलिका की बालू में ही लीन हो गये हों, पर वहा के खंडहर इस बात की सूचना दे रहे थे कि कभी यहा बस्ती थी। पाइकों के मकान भी अब धीरे-धीरे परित्यक्त होने लगे हैं। बारिश, तूफान और मरम्मत के बिना वे सारे मकान ढह कर मरे हुए हाथी की तरह पड़े थे। उनमे से मदिर से सटकर बने कुछ मकान ही ठीक हालत मे थे। अधिकाश पाइक गावों की अवस्था यही थी। आत्मरक्षा और आक्रमण ही के कारण घर के घर सूने हो गये थे और गाव के गाव उजड़ गये थे।

गांव की सडक सूनी थी। चिलिका के पागल पवन की गहरी सास के अलावा और कोई भी शब्द सुनाई नही दे रहा था। रामचंद्र देव उस समय तृष्णा से अधीर हो गये थे। पानी के लिए वे एक घर की ओर बढ गये। घर का बाहरी किवाड़ खुला था। दीवारों पर बनाई गयी अल्पनाए बारिश के कारण और देख-रेख के अभाव से जगह-जगह छूट गयी थीं और घाव के निशानों की तरह लग रही थी।

घोड़े पर से रामचंद्र देव कूद पड़े और जोर-जोर से पुकारने लगे—"पानी दो, पानी !…कौन है घर पर ?"

पर भीतर से कुछ भी उत्तर नही आया तो वे बरामदे मे आ गये।

भीतर एक जराजीर्ण बुढिया शिथिल पर कर्कश स्वर मे न मालूम किसे कोस रही थी—"अरी ओ छोटी बहू…मुंहजली, चुड़ैल हट्टे-कट्टे जवान बेटे को खा गयी, जेठों को खा गयी…जेठानियां भी तेरे मुंह से नही बची, अंत मे बुड्ढे ससुर को भी खा गयी। तब भी तेरा पेट नही भरा कि मुझे नोच-नोच कर खाने को बैठी है। मुझे तो यम ही ने छोड़ दिया है, तू कैसे खाएगी री जगत खायी… सत्यानाशिन…अरी ओ सर !…मरो-मरो ! मुओं को मना कर रही थी कि

लड़ाई पर मत जाओ। यहां बक्शी राजा को मार रहा है, राजा बक्शी को काट रहा है। भाई की टांग तोड़ने पर भाई उतारू है···बाप बेटे को मार रहा है···सब को मुगल निगले जा रहे हैं। इसे क्या लड़ाई कहते हैं ? क्यों उस मौत के मुंह में जाओगे ? पर उस मुंह जले बुड्ढे ने बहकाया उन सबों को···तुम सच्चे पाइक बेटे हो या भगिन के ! लड़ाई लगी, तुरही बजी···इस समय किस पाइक का बच्चा घाघरे में जा छिपेगा ! और फरसा उठाकर भूत पकड़ने की तरह भागने लगा। अब मर···मर ही सत्यानाशिन, जगत खायी···मर···रांड !"

रामचंद्र देव असहाय दृष्टि से इधर-उधर देख रहे थे कि घूंघट काढ़े, बायीं कोख पर जल भरी गगरी लिए एक स्त्री अंदर जाने को संकोच करती-सी बरामदे के नीचे रुक गयी। पर रामचंद्र देव उस समय संकोच करने की स्थिति में नहीं थे। वे घुटनों के बल बैठ गये और अंजुरी पसार कर बोल उठे—"पानी !···
···पानी !" उनका वह स्वर चीत्कार-सा प्रतीत हुआ।

कुलवधू रामचंद्रदेव की अंजुरी में गगरी के मुंह से पानी देने लगी। आकंठ जलपान करके कृतज्ञता भरी दृष्टि से जब रामचंद्रदेव ने उसे देखा तब वह 'न ययौ न तस्थौ' की स्थिति में गगरी लिए खड़ी थी।

अंदर से उस निष्ठुर मध्याह्नवेला में गालियों की वर्षा फिर भी थमी नहीं थी।

पवन के झोंके ने उसके सर पर से घूंघटा हटा दिया था। मलिन विषण्ण ललाट के नीचे मुरझाई कमल की पंखुड़ियों-सी दो लंबी-लंबी आंखें सहानुभूति और संवेदनशीलता के स्पर्श से और भी कोमल लग रही थीं।

उन आंखों में छाया-आवृत्त झील की गंभीरता थी, मलिन चांदनी रात की वेदना-विधुर नीरवता थी और जैसे कि व्याधभीता वन्य हिरनी का असहाय भाव था। चिलिका की धूप जली निर्जन बालूचर में वह जैसे रिक्तता का एक विग्रह बनी थी।

जलदान करने वाली रामचंद्र देव की उम्र की ही होगी। पर उसके सुगठित यौवन की उज्ज्वल कांति पर न मालूम कब से कालिमा छायी हुई थी। बांह और दोनों हाथ आभूषण हीन थे। मांग पर सिंदूर नहीं था। म्लान ललाट पर दोनों भौंहों के बीचों-बीच एक तिल चिह्न था—तिलक की तरह।

यह क्या वही सत्यानाशिन चेहरा है ?

रामचंद्र देव इंद्रियासक्त थे, ऐसा दुर्नाम था। वह नारी-सभोग की लालसा उनमें अतृप्त रहती थी। पर आज इस नारी के वेदनाद्र लावण्य ने रामचंद्र देव के हृदय में इंद्रियासक्ति या कामपिपासा नही जगाई थी। यह आसक्ति इंद्रिया-सक्ति से अलग अतींद्रिय थी। इसमे कामपिपासा का उत्ताप नही था; श्रद्धा की स्निग्धता थी। रामचंद्र देव जैसे उस कुलवधू के लिए राह छोडना ही भूल गये थे। इससे वह बाध्य हो भीरू-कंपित-कंठ से बोली—"रास्ता दें मुझे।"

रामचंद्र देव मंत्रमुग्ध से वहां से हट गये और असहाय आंखों से चिलिका तट की बालुचरा की ओर ताकने लगे। वहा से लौट जाने का उपाय भी नही था। किस उद्देश्य से बक्सी ने छत्रद्वार घाटी से फौज हटाली वह ही जानता होगा। पर यहां से लौट कर उसके साथ सपर्क जोडना खतरे से खाली नही है। गंजागढ के मानसिंह ने रामचंद्र देव के मुंह पर ही सिंहद्वार बंद कर दिया था। इसी बीच वह भी मालुद के फौजदार को सूचित नही करके क्या चुप बैठा होगा। तो इन लोगों को वे इस विश्वासघात का इनाम कैसे दें ? उनके सबध में जानकर मालुद फौजदार के सैनिक शिकारी कुत्तो की तरह उनके पीछे अबतक लग गये होगे। इसलिए चिलिका ही उस समय पलायन और आत्मरक्षा का एकमात्र पथ था।

रामचद्र देव के इस तरह चिंता करते समय उस स्त्री ने किवाड की ओट से झांककर पूछा,—"आप कौन हैं, पाइक हैं कि डकैत ? डकैत हैं तो चले जाइए··· हमारे यहां कुछ भी नही।"

रामचंद्र देव ने गहरी सांस ली और उत्तर दिया—"मैं खोर्धा राजा का पाइक हूं।"

स्त्री ने पूछा—"क्या कहते हैं ! सुना है राजा कही दक्षिण के टिकाली में लड़ रहे हैं और आप उन्हे छोड़कर यहा क्या करने आए हैं ? राजा क्या हार गये ? आप क्यो राजा को छोड़कर भाग निकले हैं ?"

क्या उत्तर दें, रामचंद्र देव सोच ही नही पाये। अप्रतिभ से बोले—"नही, राजा हारे नही हैं। बाणपुर में शिविर डाल रुके हुए हैं, राह पर उन्ही की ताक मे मालुद का फौजदार बशीरखा बैठा है। चिलिका के पथ से उन तक एक जरूरी खबर पहुंचाने के लिए मैं यहा नाव की तलाश में आया हूं।"

वह आश्वस्त होकर बोली—"तो आप पाइक हैं, डकैत नही। दिन मे नाव लेकर चलेंगे कैसे ? चिलिका तट पर रंभा से आरंभ करके मालुद फौजदार की

खुफिया नावें पहरा दे रही हैं। फिर नावो के यहा से चलने की मनाही का ऐलान कर दिया है गजागढ के राजा ने।"

तो चिलिका होकर चलने का रास्ता भी बद है ? आतकपूर्ण स्वर से अपने आपको कहने की तरह रामचद्र देव बुदबुदाये—"तो…तो फिर ?"

वह स्त्री किवाड पकडकर खडी-खडी सोच रही थी—'हाय किस दुखिया की आखो से आसू बहाकर यह इस उजाड मे घूम रहा है। यह क्या फिर से अपने घर का मुह देख सकेगा ? या मौत के मुह मे ही खो जाएगा कही ? क्या पता !… मेरे पति ने भी तो इसकी तरह कही एक बूद पानी के लिए पुकारा होगा।'

वह सब सकोच भूल गयी और बरामदे के नीचे उतरकर बोली—"आप पाइक हैं न, यह घर भी पाइक का घर है। कुछ भी तो खाया नही होगा आपने। आइए, अदर आइए। इस धूप मे कैसे खडे रहेंगे।"

अदर से अब भी बुढ़िया गालिया बक रही थी—"अरी ओ मुह जली, सत्यानाशिन…मर…मरें सब। तुम…तुम नही मरोगी तो और कौन मरेगा ! केवल अहकार, मीठी छुरी चलाता…भाई ही भाई की पीठ मे छुरी भोंके तो क्या होगा…इससे देश को मुगल खा नही जाएगे तो और कौन खाएगा ?"

रामचद्र देव ने पूछा—"भीतर कौन है ?"

उदास स्वर मे उसने बताया—"वह मेरी सास हैं। लडाई मे जब से इनके तीन-तीन लडके मारे गये है तब से पगली हो गई हैं। सुबह से शाम तक बकती रहती हैं और मन को शात करती हैं। बहरी थी अब देख भी नही सकती हैं। आप आए हैं, यह भी उन्हे मालूम नहीं होगा।"

रामचद्रदेव बरामदे पर चढ ही रहे थे कि दूर सुनसान सड़क पर से घोड़ों की टाप सुनाई दी। लगभग आठ-दस घुडसवार एक साथ आ रहे थे। रामचद्र देव ने उस ध्वनि को ध्यान से सुना। हो सकता है कि मालुद के फौजदार के सैनिक ही उन्हे पकडने आए हों।

रामचद्र देव कूदकर घर के अदर पहुचे ही थे कि सातो घुडसवार वहा पहुच गए।

समीप ही काजू के पेड मे बधे हुए घोड़े को दिखाकर उनमे से एक ने पूछा—"इस घोड़े का मालिक कहा है ?"

स्वर मे साहस भरकर उस स्त्री ने उत्तर दिया—"कैसा घोड़ा ? मुझे क्या

मालूम यह घोड़ा किसका है ? कैसे मालूम होगा मुझे ? कितने मुगल सिपाही इस ओर से आ-जा रहे हैं, होगा किसीका।"

घुड़सवार कूदता-सा घोड़े पर से उतर पड़ा और बोला—"रख-रख तेरी चालाकी···यह घोड़ा खोर्धा के राजा का है। हमें सही मालूम है। बता कहां छिपा है वह।"

स्त्री ने कांपते स्वर में पूछा—"राजा, कौन राजा ?"

अश्लील स्वर में चीत्कार किया उनमें से एक ने—"बता कहां छिपा रखा है राजा को। नहीं तो तेरी इज्जत नहीं बचेगी।"

दूसरा राक्षसी कर्कश स्वर में चिल्लाया—"ठीक है, राजा नहीं तो रानी ही सही। उठाओ उसे घोड़े पर।"

घुड़सवारों का परिहास भरा स्वर सुनसान सड़क पर गूंज उठा।

उसी समय रामचंद्र देव एक फरसा उठाकर सड़क पर कूद पड़े और चिल्लाये —"खबरदार, यह पाइक घर की बहू है···यज्ञ की शिखा की तरह। म्लेच्छ इसे स्पर्श नहीं कर पाएंगे।"

रामचंद्र देव के आक्रमण करते समय एक ने घोड़े पर से उन पर निशाना साध कर बर्छा फेंका। पर पल भर में ही बीच में रामचंद्र देव को बचाने के लिए आई वह स्त्री नीचे लहू-लुहान होकर आर्त्तनाद करती हुई गिर पड़ी।

रामचंद्र देव ने आक्रमण करने को फरसा उठाया ही था कि एक साथ अनेक तलवारों के आघात से वह उनके हाथों से छूटकर नीचे गिर पड़ा।

रामचंद्र देव असहाय होकर बोले—"अब हमें बंदी बनाओ।"

4

रामचंद्र देव ने शतरंज पर एक पदातिक की चाल चलाकर शह दी। फिर मन ही मन कहने लगे—'फिर भी मात हुई नहीं। पर उस दिन छत्रद्वार घाटी में से फौज क्यों हटाई थी बक्सी ने···? क्यों ?

'राजपुर प्रांतर पर अगर चिकाकोल फौज को रोकने का अभिप्राय था तो क्यों

खुफिया नावें पहरा दे रही है। फिर नावो के यहा से चलने की मनाही का ऐलान कर दिया है गजागढ के राजा ने।"

तो चिलिका होकर चलने का रास्ता भी बद है ? आतकपूर्ण स्वर से अपने आपको कहने की तरह रामचद्र देव बुदबुदाये—"तो···तो फिर ?"

वह स्त्री किवाड पकडकर खडी-खड़ी सोच रही थी—'हाय किस दुखिया की आखो से आसू बहाकर यह इस उजाड मे घूम रहा है। यह क्या फिर से अपने घर का मुह देख सकेगा ? या मौत के मुह मे ही खो जाएगा कही ? क्या पता !··· मेरे पति ने भी तो इसकी तरह कही एक बूद पानी के लिए पुकारा होगा।'

वह सब सकोच भूल गयी और बरामदे के नीचे उतरकर बोली—"आप पाइक हैं न, यह घर भी पाइक का घर है। कुछ भी तो खाया नही होगा आपने। आइए, अदर आइए। इस धूप मे कैसे खडे रहेगे।"

अदर से अब भी बुढिया गालिया बक रही थी—"अरी ओ मुह जली, सत्यानाशिन···मर···मरें सब। तुम···तुम नही मरोगी तो और कौन मरेगा ! केवल अहकार, मीठी छुरी चलाना···भाई ही भाई की पीठ मे छुरी भोके तो क्या होगा···इससे देश को मुगल खा नही जाएगे तो और कौन खाएगा ?"

रामचद्र देव ने पूछा—"भीतर कौन है ?"

उदास स्वर मे उसने बताया—"वह मेरी सास हैं। लडाई मे जब से इनके तीन-तीन लड़के मारे गये हैं तब से पगली हो गई हैं। सुबह से शाम तक बकती रहती हैं और मन को शात करती हैं। बहरी थी अब देख भी नही सकती हैं। आप आए हैं, यह भी उन्हें मालूम नही होगा।"

रामचद्रदेव बरामदे पर चढ ही रहे थे कि दूर सुनसान सडक पर से घोडो की टाप सुनाई दी। लगभग आठ-दस घुडसवार एक साथ आ रहे थे। रामचद्र देव ने उस ध्वनि को ध्यान से सुना। हो सकता है कि मालुद के फौजदार के सैनिक ही उन्हें पकड़ने आए हों।

रामचद्र देव कूदकर घर के अदर पहुचे ही थे कि सातो घुडसवार वहा पहुच गए।

समीप ही काजू के पेड़ मे बधे हुए घोड़े को दिखाकर उनमें से एक ने पूछा—"इस घोड़े का मालिक कहा है ?"

स्वर मे साहस भरकर उस स्त्री ने उत्तर दिया—"कैसा घोड़ा ? मुझे क्या

मालूम यह घोड़ा किसका है ? कैसे मालूम होगा मुझे ? कितने मुगल सिपाही इस ओर से आ-जा रहे हैं, होगा किसीका ।"

घुड़सवार कूदता-सा घोड़े पर से उतर पडा और बोला—"रख-रख तेरी चालाकी···यह घोडा खोर्धा के राजा का है। हमें सही मालूम है। बता कहा छिपा है वह ।"

स्त्री ने कापते स्वर में पूछा—"राजा, कौन राजा ?"

अश्लील स्वर मे चीत्कार किया उनमें से एक ने—"बता कहां छिपा रखा है राजा को। नही तो तेरी इज्जत नही बचेगी ।"

दूसरा राक्षसी कर्कश स्वर में चिल्लाया—"ठीक है, राजा नही तो रानी ही सही। उठाओ उसे घोडे पर ।"

घुड़सवारो का परिहास भरा स्वर सुनसान सड़क पर गूज उठा।

उसी समय रामचंद्र देव एक फरसा उठाकर सड़क पर कूद पड़े और चिल्लाये —"खबरदार, यह पाइक घर की बहू है···यज्ञ की शिखा की तरह। म्लेच्छ इसे स्पर्श नही कर पाएगे ।"

रामचंद्र देव के आक्रमण करते समय एक ने घोड़े पर से उन पर निशाना साध कर बर्छा फेंका। पर पल भर मे ही बीच में रामचंद्र देव को बचाने के लिए आई वह स्त्री नीचे लहू-लुहान होकर आर्तनाद करती हुई गिर पड़ी।

रामचंद्र देव ने आक्रमण करने को फरसा उठाया ही था कि एक साथ अनेक तलवारों के आघात से वह उनके हाथों से छूटकर नीचे गिर पड़ा।

रामचंद्र देव असहाय होकर बोले—"अब हमें बंदी बनाओ ।"

4

रामचंद्र देव ने शतरंज पर एक पदातिक की चाल चलाकर शह दी। फिर मन ही मन कहने लगे—'फिर भी मात हुई नही। पर उस दिन छत्रद्वार घाटी मे से फौज क्यों हटाई थी बक्सी ने···? क्यों ?

'राजपुर प्रातर पर अगर चिकाकोल फौज को रोकने का अभिप्राय था तो क्यों

वहां वे नही लड़े ?

'पर रामचद्र देव के पकडे जाने के तुरत बाद ही तो चिकाकोल फौजदार ने फौज हटा ली थी और लौट भी गये थे। तब ये लडते भी किसके साथ ?'

इन सारे तर्कों से उनका मन नही बहल रहा था। क्यो उस दिन छत्रद्वार घाटी छोडकर बक्शी चले आये···यह एक ही प्रश्न बारबार उनके मन को आदोलित कर रहा था।

लाख चेष्टाओ के बावजूद बक्शी का शिरा-उभरा चेहरा मुडित शीश और फरसे की तरह तेज आखें रामचद्र देव की आखो के आगे तैर जाती थी।

तो क्या वेणु भ्रमरवर ने विश्वासघात किया है ?

शतरज पर बक्शी की क्रूर कुटिल और भयकर आखे एक विभ्रात करने वाले प्रश्न की तरह दिखने लगी।

तृतीय परिच्छेद

1

महाकार्तिक आ गया।

अब से होली तक दूर से आने वाले यात्रियो से श्रीक्षेत्र भरा रहेगा। पर जजिया के प्रपीडन और ऊपर से मुगल दंगे के भय के कारण उस समय बड़दाड पर कौवे उड़ रहे थे।

चारों ओर मंदिरों की तोड़-फोड़ फिर से एक नित्य की घटना-सी हो गयी है। जहां जो भी मंदिर है उसे तोड़कर उसी के पत्थरों से पिपिलि, कटक और अन्य कई जगहो पर मसजिदों का निर्माण किया जा रहा है। लोग कहने लगे हैं कि पिपिलि मसजिद के समान मसजिद मुगल आधिपत्य के दिनो मे अन्यत्र कही बनी नही।

औरंगजेब के समय से मंदिरो को तोड़ना एक धार्मिक कार्य माना जाता था। साथ ही, यह कार्य एक राष्ट्रीय दायित्व कहलाता था। जब एकरामखां नायब-नाजिम था तब अनगभीम देव द्वारा बनाये गये जगन्नाथ मंदिर को तोड़कर उसने पत्थरो का ढेर बना दिया था। उन्ही पत्थरो से कटक की जुम्मा मस्जिद बनायी गई थी। सुजाखा ने 1635 ई. मे मंदिर के प्राचीर मे लगे पत्थरो से कदमरसूल बनवाया था।

पर सुजाखा नितात हिंदू द्वेषी नही था। हिंदूओं के साथ उसका अंतरंग संपर्क भी था। इसलिए मुर्शिदाबाद से आते समय वह राय आलमचंद, फतेचंद, जगत सेठ आदि हिंदूओं को साथ लेकर आया था। वे सुजाखा के दोस्त और सलाहकार भी थे। इससे, सुजाखां जब तक नायब-नाजिम था ओड़िसा मे मंदिर मुसलमानो के कालापहाड़-नुमा हमलों से अपेक्षाकृत निरापद थे। पर सुजाखा का जारजपुत्र तकीखा जब से कटक का नायब-नाजिम बना, तब से फिर मंदिरों को तोडने का काम शुरू हो गया है। इसलिए पुरुषोत्तम क्षेत्र एक अशरीरी आतंक से कांप रहा था।

इस आतंक के साथ दुर्भिक्ष का भय भी सिर पर था। खेत उजाड पडे थे। खेती करें तो खेतो मे ही सब उजड़ जाय...ऊपर से मालगुजारी का भार भी है। इससे किसान त्राहि-त्राहि करने लगे हैं।

खोर्धा दुर्ग से खान-ए-दौरा के लिए सालाना छह लाख पद्रह हजार छह सौ सोलह रुपये नजराना बधा हुआ था। पर यह नजरान' अदा करना खोर्धा राजा को पसद नही है। वे इसे एक शर्मनाक काम समझ रहे हैं। इसलिए खोर्धा के लोगो को मारपीट कर नजराना वसूलने के लिए वकील सैयद बेग सिपाही लेकर खोर्धा मे बैठा हुआ है। इसके पहले दक्षिण की लडाई के लिए मारपीट करके, यहा तक कि लूटपाट करके भी इसे वसूलने की दिल्ली से ताकीद की जाती थी। अब यह ताकीद मुर्शिदाबाद से की जा रही है।

उधर रामचद्र देव जब बारबाटी दुर्ग मे कैद थे तब कलमा पढकर मुसलमानी के साथ विवाह करके हाफिज कादर यारजग बनने के दिन से खोर्धा मे आकर काठ मारे हुए से बैठ गए हैं। पाइको मे अब पहले जैसा वह दभ भी नही है। राजा जब तक जगन्नाथ के राज सेवक थे तब तक पाइको की दृष्टि से राष्ट्रीय एकता और प्राणशक्ति के प्रतीक बने हुए थे। पर रामचद्र देव के विधर्मी बनने के बाद से पाइको के मन मे उनके प्रति वह श्रद्धा ही नही रही। अब केवल बक्सी वेणु भ्रमरवर पर ही भरोसा है। पर बक्सी रामचद्र देव के विरुद्ध कुछ करने का साहस ही नही कर सकते थे। वे नायब-नाजिम तकीखा से डरते थे, जो रामचद्र देव का साला था।

2

पुरी में पुराना बालिसाही राजमहल के खंडहर मे ही है 'हनुमान अखाड़ा मठ'।

वेणु भ्रमरवर पुरी आने पर वही रुकते हैं।

महाराज हरेकृष्ण देव के दीवान भगी भ्रमरवर के पुत्र वेणु राउत को भ्रमरवर के वंशवृक्ष की सूची में किसी ने स्थान नही दिया था। फिर भी उनके प्रचार

से लगता है, जैसे वे ही खोर्धा सिंहासन के एकमात्र वारिस हैं और मनुष्य तथा नियति के षड्यन्त्रों से सामयिक रूप से बच गए हैं।

अतृप्त उच्चाभिलाषा की यंत्रणा से बढ़कर शायद और कोई पीड़ा नहीं है। टिकाली युद्ध के समय रामचंद्र देव को शत्रुओं के सामने धकेलकर वे सोच रहे थे कि तकीखा के पंजो से रामचंद्र देव का बचकर निकलना असंभव है। इसके बाद खोर्धा सिंहासन पर उनका अधिकार अपने आप हो जाएगा। पर रामचंद्र देव तकीखां के बहनोई बनकर फिर से खोर्धा लौट आएंगे यह किसे मालूम था।

रामचद्र देव पर केंद्रित ये सारी अतृप्ति-दग्ध भावनाए उनके शरीर को लोहे की तपती शलाका की तरह वेध रही थी।

बक्सी अब हनुमान अखाड़े की निभृत कोठरी में बैठकर माला जपते हुए मन के उद्वेग को हलका करने का व्यर्थ प्रयास कर रहे थे।

गंगवंशी राजाओं के समय से निर्मित पुराना बालिसाही प्रासाद, नामहीन अनगिनत गुल्मो के जगल के बीच उजड़े इतिहास की तरह टूटे ईंट-पत्थर के ढेर पर पछाड़ा हुआ-सा गिरा पडा है। पूरब की ओर बने महलों के अलावा अन्य महल और आस्थान टूटकर मरे हुए हाथी की तरह सोये हुए हैं। प्रासाद के मध्यस्थल में बना कभी-का श्वेत पत्थर के घाटो वाला तालाब अतीत के किसी सुदिन की स्मृति की तरह झिलमिलाती धूप में बिछा हुआ-सा है। पर वह भी दलों से भर गया है। मैले दलो के बीच कही-कही कमल खिले हैं। तालाब के उत्तर में श्यामा काली का मंदिर है। वही मंदिर अब हनुमान अखाडा का पीठस्थल बना है। उत्तर भारत के श्री सीतारामजी नामक एक साधु ने इसकी स्थापना की थी। मठ की कोई संपत्ति नहीं है। अन्य मठो से मिली सहायता से इस अखाडे की परिचालना होती है।

सीतारामजी के देहात के बाद मे श्री लछमनजी इस अखाडे के अधिकारी हैं।

आध्यात्मिक साधन-भजनों की तुलना से इन अखाड़ों मे शरीर चर्चा ही प्रधान विषय है। कालापहाड के आक्रमण के बाद, पुरुषोत्तम क्षेत्र पर अफगान और मुगलों के द्वारा बारंबार हुए हमलो के फलस्वरूप शायद पुरी मे इस तरह के अखाड़े बने हैं। अखाड़े के चेलो को कुश्ती, तलवार चलाना, मुद्गर घुमाना, भाला फेंकना आदि का अभ्यास कराया जाता है। अतीत मे श्रीमंदिर पर छोटे-बड़े कई

हमलों का इन्होंने ही प्रतिरोध किया था। इस तरह के कुछ प्रधान अखाड़ो को वक्सी वेणु भ्रमरवर ने अपना खास अड्डा बनाया था। इन अड्डो के जरिए उन्होंने श्रीक्षेत्र को भी कुछ हद तक प्रभावित करके अपना स्थान बनाया था। इसलिए उन्होंने राजकोष से भी इन अखाडो के लिए आर्थिक सहायता दिलवायी थी।

जब बक्सी इसी प्रासाद के एक निभृत कक्ष मे बैठे नामकीर्तन कर रहे थे तब हनुमान अखाड़े के जवानो की शरीर-साधना चल रही थी। लछमनजी श्यामा काली मंदिर के काई जमे बरामदे मे एक कबल पर बैठकर दो मल्लो की भिडत को गौर से देख रहे थे। मल्लो के अग कौशल पर उनकी दृष्टि एक सतर्क समालोचक की तरह जमी हुई थी।

जगु पढिआरी और चेमा लेंका दोनो कुश्ती-कसरत मे एक-दूसरे से बढकर हैं। लगोट कसकर दो नग्नप्राय काले शरीर दो चौड़े काले पत्थरो की तरह मिट्टी पर भिड़े हुए थे। जब चेमा मुंह के बल पर गिर जाता था तब उस पर जगु पढिआरी सवार हो जाता था और होठ चबाकर कुहनियो को धरती पर टिकाकर उसकी कोख के बीच बाहें फसाकर पलटने की कोशिश करता था। पर अजगर-सा पडा हुआ चेमा अपने शरीर को इस तरह उछालता कि पल भर मे जगु फेंके गये की तरह गिरकर मिट्टी चूम लेता था। उस समय उन्हे चारो ओर से घेरकर कुश्ती देखने वाले तालियां बजाते और उत्कठा भरे स्वर मे दिल्लगी करने लग जाते। जगु पढिआरी सभलकर पैंतरा बदलता और अपना कुछ खास कायदा दिखाता-सा उठकर खड़ा हो जाता। दो हनुमानो जैसी उनकी हुकार से फिर अखाड़ा भर जाता।

मदिर की मुखशाला के सामने लगोट कसकर नरसिंहारी एक ऊचे पत्थर पर दड-बैठक करता-सा भाग पीस रहा था। इसके बाद 'नरेंद्र' मे नहाने का मजा आएगा। नरसिंहारी बैठक मारने की भगिमा मे बैठे पैरो की पसली से छाती तक की पेशियों को हिलाकर भाग पीसते समय बीच-बीच मे उपेंद्रभज के गीत गुनगुना रहा था।

भाग पीसने के लिए रखे गये पत्थर के ऊपर एक पिंजडा टगा था जिसमे कुछ मैना चिरमिचर कर रही थी। नरसिंहारी का गाना सुनकर एक ने भगेडी स्वर मे कहा—"शाबाश, मितवा…!"

जगु पढिआरी ने तब कुश्ती के अखाड़े में चेमा को चित कर दिया था। इसलिए वह स्थल देखने वालों की तालियों से गूंज रहा था।

काल के हाथों में कठपुतलियों के समान उन कसरत करने वालों को अपने पृष्ठ-पोषक वेणु भ्रमरवर द्वारा यवनों को श्रीक्षेत्र में आमंत्रित करके लाने की योजनाओं का पता ही नहीं था। उन्हें ओड़िसा के कोने-कोने में कालापहाड़ी आक्रमण के फलस्वरूप धूलिसात हो रहे मंदिरों और देवालयों की जानकारी भी नहीं थी। अत. उसके लिए निर्यातन और निपीडन की ग्लानि भी नहीं थी। अखाड़े में भंगेड़ी मौज और कुश्ती-कसरत में वे आत्म-विस्मृत हो गये थे।

इतिहास में जब क्षयकाल आता है तब इतिहास के अनुष्ठानों के भी गुण और गति में परिवर्तन आ जाता है। इसलिए हनुमान मठ के अधिकारी या चेलों में भी किसी ने भी सर पर मंडराने वाले सर्वनाश को नहीं भापा और उसे जानने की चेष्टा भी नहीं की थी।

उस जीर्ण प्रासाद में तीन अंधेरी गुफाओं की तरह के कक्ष पार करने पर एक अलिंद पड़ता है। अलिंद के चारों ओर काई जमी दीवालों पर से चूने का पलस्तर छूट जाने से दिखाई देने वाली पतली ईंट की धारा खप्पर में साफ दिखाई देने वाले दांतों की तरह लग रही है।

अलिंद के पश्चिम में एक कूआ है। उसके अंदर जाने के लिए सीढियां बनी हैं। कभी उसमें अंत.पुर निवासिनी महिलाएं नहाती थी। अब भी उसमें ढूढ़ा जाए तो कुछ खोपड़िया मिल सकती हैं। इसीमें अतीत में कई आत्महत्याएं हुई हैं, कई शत्रुओं के मृत शरीर इसी में फेंके गये हैं। फिर भी इसका पुराना पानी अब भी स्वच्छ और निर्मल लगता है।

उस कुएं के पश्चिम में एक बरामदा है। उसी में सटकर कुछ कोठरियां हैं। इनमें से एक में एक पुराने पलंग पर मखमली बिछौना बिछाया गया है। और तकिये के सहारे एक कंबल पर बैठे हुए वेणु भ्रमरवर माला फेर रहे हैं। पारलौकिक ध्यान में निमग्न होने के लिए माला जिस तरह उपयोगी है उसी तरह इहलोक की दुश्चिंताओं से मुक्ति के लिए भी उसकी आवश्यकता है। शायद बक्सी जो कुछ सोच रहे थे वह खोर्धा राजगद्दी पर केंद्रित था।

उनका सूखा चर्मावृत चेहरा, मुंडित मस्तक और शीर्ण शरीर उस छायांधकार कोठरी के भीतर पैशाचिक लग रहा था।

बक्सी ने आखें मूदी कि सामने उस दिन रथीपुर गढ मे अंतिम प्रहर मे देखे हुए सपने की विभीषिका तैर गयी। आज तक उस पर अनेक बार सोचने के बाद भी उनके लिए उस सपने का रहस्य-भेद करना सभव नही हुआ है। एक वार उन्होने मणिवक्रेश्वर मदिर के सिद्धवावा हरिदास से इस स्वप्न के रहस्य के सबध मे पूछा था। उस पर सिद्ध हरिदास कुछ उत्तर न देकर केवल मुस्करा कर रह गए।

"इस स्वप्न का कोई अर्थ भी है क्या स्वामी ?" वेणु भ्रमरवर ने पूछा—एक वार नही वारवार !

पर सिद्ध हरिदास के होठो पर उसी रहस्यमय स्मित हास्य के अलावा और कोई उत्तर नही था। अंत मे अनेक जिज्ञासाओ के बाद कुठित मन से सिद्ध वावा ने वताया था—"राज्य लाभ या प्राणहानि ही इस स्वप्न का अर्थ है।"

· "यह कैसी नई वात हुई। खड्ग और मुकुट, श्मशान और सिहासन, इन दो परिणतियो के वीच ही तो राजपुरुपो का जीवन सदैव प्रसारित रहता है।"

बक्सी ने अचानक आखें खोलकर देखा जैसे शराहत हुए हो।

उन्हे उस कक्ष के छायाधकार मे उस स्वप्न की विभीपिका तैरती-सी लग रही थी।

भाल-भाल करवाल परस्पर भिडकर चमक रहे थे। तलवार से तलवार के संघर्ष मे आग की फुलझडी झर रही थी। धीरे-धीरे वे फुलझडिया वूद-वूद रक्त बनती जा रही थी और उस रक्ताक्त पृष्ठभूमि पर स्पष्ट होता जा रहा था—अस्थियों से बना एक सिहासन। उस सिहासन के चारो पैर चार खोपडियो पर स्थापित थे। पर उन खोपडियो के चक्षुविवर मे आखो की पुतलिया जीवत थी। वे आखें जैसे नितात अनासक्त भाव से उस खड्गयुद्ध को देख रही थी। सिहासन पर विस्तृत, रत्नखचित मखमली गद्दी पर अष्टमणियों से निर्मित एक राजमुकुट रखा गया था। सिहासन के दोनो पार्श्व में दो विशालकाय हाथी उस मुकुट के प्रहरी बने थे जिनकी सूडों से अभिषेक जल की धारा की भाति उष्ण शोणित की वर्षा हो रही थी। अचानक एक कवध हाथों मे फरसा लिए आता है। तलवारो की उस भीड को भेदता हुआ वह आकर उस सिहासन तक पहुच जाता है। उसके पदाघात से वह मुकुट और सिहासन अदृश्य हो जाते हैं। इसके वाद वह कवध चारों ओर फरसा घुमाता हुआ श्मशान मे नाचने लगता है।

रथीपुर गढ़ की उस भयंकर रात्रि में इस स्वप्न के बाद बक्सी वेणु भ्रमरवर आर्त्तनाद करके पलंग पर से कूदकर खड़े हो गये। सारा शरीर और ललाट पसीने से लथपथ था। शयनकक्ष में निशिप्रदीप निर्वाण-प्राय होने लगा था। बाहर वायु सचालनहीन निर्जन रात्रि थी। वेणु भ्रमरवर 'दुर्गा-दुर्गा' पुकारते हुए बाहर चले आए। गढ़ के प्राचीर पर संत्री पदचारण कर रहे थे···जूतों के शब्द ही सुनाई पड़ रहे थे। समीप ही गंगवती नदी के तट पर मणिवक्रेश्वर का मंदिर-शिखर एक उज्ज्वल नक्षत्र के आलोक से छायाचित्र-सा प्रतीत हो रहा था। वेणु भ्रमरवर ने हाथ जोड़कर मणिवक्रेश्वर के उद्देश्य से प्रणाम करते समय देखा कि पूर्व दिशा में फरसे की आकृतिवाले धूमकेतु का उदय हुआ है। कई दिनों से प्रत्येक भोर में आकाश पर इस विचित्र आकृति के धूमकेतु के उदय होने का सवाद उन्हें मंत्री से मिलता रहा है। परंतु उसे स्वचक्षु से देखा नहीं था। बक्सी उस भयानक स्वप्न के बाद मौन आकाश की पृष्ठभूमि पर इस भीमाकृति विशिष्ट धूमकेतु को देख अनागत अमंगल की शंका से आतंकित हो उठे।

धीरे-धीरे प्रभात के पक्षियों की मधुर काकलि में चारों ओर की भूमि मुखरित और चकित होने लगी। रथीपुर दुर्ग के चारों ओर खाई की भांति वेष्टित गंगवती की पाशुल जलराशि पर उषा की आद्य अरुण किरण चमक रही थी। धूमकेतु धीरे-धीरे मलिन होकर निश्चिह्न हो गया था। पर वेणु भ्रमरवर की आतंकित दृष्टि अब भी उस कवंध के नर्त्तन को देख रही थी, जैसे नाचता हुआ वह कवंध उनकी ओर बढ़ रहा था।

हनुमान अखाड़े के उस निभृत कक्ष में माला फेरती हुई वेणु भ्रमरवर की उंगलियां जैसे शक्तिहीन होकर जड़ बन गईं, और वह भीमाकृति कवंध जैसे बक्सी को ढूंढते हुए उस कक्ष के अंदर प्रविष्ट हो गया था। बक्सी ने आतंकित दृष्टि से चारों ओर देखा।

बक्सी ने फिर एकबार, शायद एक शतोत्तर बार अपने को आश्वासन दिया—'यह सब उद्वेलित मन की भ्रांति है···।'

बाहर अखाड़े से हुंकार के स्वर के साथ गाने का लयबद्ध स्वर सुनाई दे रहा था जिससे उन्हें जाग्रत जीवन का आभास मिल रहा था और उस निर्भर योग्य आभास से बक्सी मन-ही-मन आश्वस्त हो फिर माला फेरने लग गये। पर मनोनिवेश की लाख चेष्टाओं से भी एकाग्रचित्तता आ नहीं रही थी और इहलौकिक

भावनाएं उन्हें दुश्चिता-सी आदोलित कर रही थी।

सारी दुश्चिताए खोर्धा सिंहासन के कारण ही बनी हुई थी।

उस दिन मुगल सम्राट अकबर के चक्रांतो के कारण गगा से गोदावरी तक विस्तृत उत्कल के अतिम स्वाधीन गजपति मुकुददेव के प्रकृत उत्तराधिकारीगण खोर्धा, आली, और सारगगढ से निर्वासित हो गये। अनहोनी की भांति कही से दनेइ विद्याधर के पुत्र रमेइ राउतरा आकर रामचद्र देव बन गये और खोर्धा सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। कहा जाता है कि ये रामचद्र देव ही खोर्धा राजसिंहासन के सही उत्तराधिकारी है ऐसा स्वप्नादेश जगन्नाथजी ने मानसिंह को दिया था। वह तो सब परवर्ती इतिहासकारो की मनगढ़त कहानिया है पर घोर कुचक्री मानसिंह रामचद्र देव को खोर्धा सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके एक ही तीर में तीन शिकार कर गये। ओडिसा मे मुगल राजशक्ति और प्रबल पराक्रमी विद्रोही अफगानो के बीच स्वाधीन खोर्धा के बहाने पुरुषोत्तम क्षेत्र की स्वतत्रता और मर्यादा को स्वीकार करके मानसिंह ने एक तीसरी शक्ति की स्थापना की। इससे ओडिसा मे उन्हे हिंदू-जनमत का समर्थन मिला और साथ ही गजपति मुकुंद देव के उत्तराधिकारियों को खोर्धा सिंहासन से विताडित करने मे सफल हो गए, इससे गजपति परपरा के प्रति ओडिसा के दुर्गपतियो और सामतो की विश्वस्तता ही नहीं रही।

ज्येष्ठ हैं आलि, अत ज्येष्ठाश के अधिकारी भी हैं। पर वे जमींदार बने हुए हैं। कनिष्ठ हैं सारंगगढ। छकडी भ्रमरवर के वंशज सारगगढ ही के सहारे पड़े हैं। अधारआ, दारुठेंगा, हरिडामड़ा, बारंग, परिआ, कालाराहाग और दाढा आदि गढो मे छकड़ी के वशज अनेक भग्नाशो मे बटकर धीरे-धीरे इतिहासहीन अनामधेयता मे लीन होने लगे हैं। फिर भी, सारगगढ़, खोर्धा और कटक के बीचोंबीच अवस्थित है। इसलिए अनेक दुर्गपति और सामतो को एक कूटनैतिक प्रधानता मिली थी। वे कभी कटक के मुगल नायब-नाजिमो के पक्ष मे रहकर खोर्धा के विरुद्ध सामरिक सहायता देते तो कभी खोर्धा की ओर से नायब-नाजिमो के साथ लड पड़ते। चाहे जो हो, उनके अवचेतन मन मे खोर्धा के राजवश के लिए ईर्ष्या और गात्रदाह की आग जल रही थी। उनमे सारगगढ के साथ खोर्धा को मिलाकर फिर से गगा से गोदावरी तक उत्कल साम्राज्य की प्रतिष्ठा का

स्वप्न और आकांक्षा फिर भी पली हुई थी। पर मुगल शक्ति महाकाल की भांति इस दिवास्वप्न का जैसे उपहास करती थी।

अतीत में खान-ए-दौरां के खोर्धा पर आक्रमण करते समय, सारंगगढ़ के दुर्गपति नील भ्रमरवर के ज्येष्ठपुत्र कपाली भ्रमरवर ने खोर्धा के महाराजा मुकुंद देव की पीठ पीछे छुरा भोंकने में सहायता की थी। इससे प्रसन्न होकर खान-ए-दौरां ने उन्हें खोर्धा सिंहासन पर बिठाया था। तब उन्हें लगा था जैसे अब उनका चिरअभिलाषित स्वप्न ही सार्थक बन गया है पर पल भर में ही वह स्वप्न पानी के बुलबुले की भांति विलीन हो गया। खान-ए-दौरां के ओड़िसा छोड़ते ही महाराज मुकुंद देव लौट आए। आत्मरक्षा करने को व्याकुल विश्वासघातक कपाली भ्रमरवर ढेंकानाल भागे। कपाली के छोटे भाई श्रीनाथ हरिचंदन ने मुकुंद देव को भैया के विपक्ष में सहायता दी थी। इसलिए उसे शिशुपाल, धउली और रथीगढ़ के दुर्गपति के रूप में नियुक्त किया गया था। श्रीनाथ हरिचंदन के ज्येष्ठ पुत्र भगी भ्रमरवर महाराज हरेकृष्ण देव के समय खोर्धा में दीवान थे। उनका बेटा वेणु राउत जो एक समय जगन्नाथ मंदिर में घूमते हुए महाप्रसाद कणों को समेट रहा था उसी के सर पर खयाली महाराज गोपीनाथ ने बक्सी की पगड़ी बांधी। एक अति दुर्दांत हाथी पर काबू पाने के पुरस्कार स्वरूप वेणु भ्रमर राउत के प्रति राजा ने यही किया था।

इसके बाद खोर्धा का राजसिंहासन जैसे हाथ की पहुंच में आ गया था। केवल छुरी बढ़ाने भर की देर थी। खोर्धा के राजसिंहासन के उत्तराधिकार से विताड़ित अतीत के सब भ्रमरवर जैसे आधे स्वर्ग में उस मंगल मुहूर्त्त की प्रतीक्षा करते हुए बक्सी वेणु भ्रमरवर पर आंख गड़ाए हुए थे।

अचानक बक्सी का ध्यान टूटा। उस कबंध की छायामूर्ति उन पर हमला करते हुए कूद पड़ी थी। उस समय बक्सी का सारा शरीर भय से कांप रहा था।

पर यह परमहितैषी गोपीनाथ देव की मूर्ति तो नहीं थी? मूर्ति पर केवल एक मस्तक जोड़ने भर में ही वह पूर्णांग रूप स्पष्ट हो जाएगा।···वही गौर, सौम्य, सुंदर अवयव,···जिससे कपूर मिश्रित चंदन की मंद-मंद मधुर गंध आ रही थी··· वही पुष्ट आजानुलंबित भुजाएं···गले का माणिक और वैदूर्य खचित स्वर्णहार··· वही क्षिरोद्र पट्ट वस्त्र···

सन 1939 मे महाराज हरेकृष्ण देव के बाद गोपीनाथ देव खोर्धा सिंहासन पर आसीन हुए। पर शासनदंड से पुष्पदंड पकडना उन्हे अधिक पसंद था। प्रतिदिन कवियों और पंडितो को लेकर काव्य और कामशास्त्र पर चर्चा या शिकार खेलना; रात्रि के समय मोहिनी तंत्र पद्धति से देवी साधना और धर्म के नाम पर सोराचार मे ही उनका समय बीतता था। अत मे यह बद्धमूल धारणा बनी हुई थी कि मोहिनी तंत्र मे सिद्धि मिलने पर पलभर मे मुगल वशीभूत हो जायेंगे। पर एक सहस्र अष्टोत्तर अक्षत-कुमारियो के साथ सभोग के पश्चात ही वह सिद्धि मिलती है। देवी ने जो मोहिनीरूप धारण करके महिषासुर का नाश किया था, उसी रूप मे साधक के सामने प्रकट होकर वे वरदान देंगी। अत मे गोपीनाथ ने मुगलो का विनाश करने के लिए इसी तंत्र की दीक्षा ली थी।

उस समय कौन उस अख्यात, अज्ञात कुलशील वेणु राउत को जानता था। पूर्ववर्ती महाराज के समय दीवान भगी भ्रमरवर ने अपने बेटे को मदिर मे मदिर-रक्षक के रूप मे नियुक्त किया था। पर वेणु भ्रमरवर की आकाश चुबी आकाक्षा और अहकार को उससे कैसे सतोष मिलता ! उसी समय बाणपुर के राजा ने जंगल से पकडे गए एक अप्रशिक्षित हाथी को उपहार के रूप मे गोपीनाथ के लिए भेजा था। वह हाथी अत्यत असाध्य था, जिसे वश मे करते हुए दो-दो महावत मारे गये थे। महावत को देखते-ही वह हाथी जिस तरह बढ आता था उससे बडे-बडे पुराने महावत और मल्ल भी उसका सामना करने से डरते थे। इस दुस्साध्य हाथी के भय से बड़दांड पर लोगो का चलना-फिरना तक बद हो गया था।

उस समय वेणु राउत उस पर काबू पाने के लिये आगे बढ आया था। प्राण जाए तो जाए और अगर बच जाएं तो अवश्य ही राजा की दृष्टि मे महत्वपूर्ण हो जाऊगा यही उद्देश्य था उसका।

वेणु राउत जब हाथी की ओर बढ रहा था तब उसने देखने वालो के परिहास से लेकर शुभाकाक्षियों के परामर्श तक सब कुछ सुना था। 'साले को जीना कडवा लगने लगा है ! ···अरे ओ वेणुआ, क्या बात है मरना चाहता है ? ···कितने बड़े-बडे महावत जिसके आगे टिक नही सके, उसका तू क्या कर लेगा ? इसके पैरों मे कुचला जाए रे, मुए !'

पर कुछ भी नही सुना वेणु राउत ने और हाथ मे अकुश और कमर मे कटारी खोंस हाथी के सामने जयजगन्नाथ का नारा लगाते हुए खडा हो गया। राजा महल

के शिखर पर स्थित एक परिवीक्षण मंडप में बैठे हुए इस निष्ठुर दृश्य को देख रहे थे।

हाथी वेणु को देखकर पलक झपकते ही घूम गया तो वेणु भी घूम पड़े। हाथी फिर चक्कर काटता-सा मुड़ा तो वेणु लपककर पीछे चले गये और धीरे-धीरे हाथी की पूंछ की ओर बढ़ने लगे···हाथी वेणु को देखकर पलक झपकते घूम जाता तो वेणु भी घूम जाते, हाथी मुड़ता तो वे लपककर पीछे चले जाते और हाथी की पूछ की ओर बढ़ जाते। इसी तरह कुछ देर तक आंख मिचौनी-सी चलती रही। थोड़ी देर बाद हाथी स्तब्ध-सा खड़ा हो गया। शायद आक्रमण करने का कोई नया उपाय सोच रहा था कि वेणु ने पूंछ पकड़ ली और पलक झपकते ही हाथी पर लपक कर चढ़ गये।

देखनेवाले उस समय विस्मय और उत्कंठा से अभिभूत हो गये थे। उन्होंने सोचा तक नहीं था कि मंदिर में इधर-उधर भटक कर महाप्रसाद समेटने वाला वह अस्थि चर्मसार वेणु राउत इस गयंद पर काबू पा लेगा। इसी बीच उन्होंने गरजते हुए और मूड़ हिलाकर पीठ पर से वेणु को खींच लेने का प्रयास करते हुए हाथी को सूंड पर ही कटारी से बारंबार आघात करके लहूलुहान कर दिया था। उसके बाद वेणु को पीठ पर से फेंकने की चेष्टा करता हुआ हाथी जब इधर-उधर पागल की तरह भागने लगा तो वेणु उसके कान के नीचे अंकुश से प्रहार करने लगे। और उस दुर्दांत पशु को एक बाध्य शिशु की तरह बिठाने में सफल हो गये।

उसी दिन से अज्ञात कुलशील वेणु राउत महाराज गोपीनाथ देव के निजी व्यक्तियों में से एक हो गये। उसके बाद यथा समय महाराज ने उनके सिर पर बक्सी की पगड़ी बांधी। इस तरह वेणु राउत रूपांतरित और गुणांतरित होकर बक्सी वेणु भ्रमरवर राय बने और धीरे-धीरे महाराज गोपीनाथ देव के अत्यंत विश्वस्त और वशंवद पारिषद बन गये। बक्सी के बिना राजा के लिए एक पल भी रहना दूभर हो गया। कवियों से काव्य-चर्चा से लेकर पंचमकार साधना के भैरवी चक्र में बैठने तक में बक्सी वेणु भ्रमरवर ही उस समय महाराज गोपीनाथ देव के सहचर थे।

इधर सारे राज्य में मुगल कर्मचारियों के अकथनीय अत्याचार—तलवार की नोक पर मालगुजारी वसूलने से लेकर लूट तक चल रही थी। ऐसा करने के

सिवाय महाराज गोपीनाथ देव से नजराना वसूलने का अन्य कोई उपाय ही नही था। कटे घाव पर नमक छिड़कने की तरह इस पर भी घरो मे बहू-बेटियों की इज्जत नही बची रहती। मोहिनी तन्त्र साधन के लिए गोपीनाथ देव के भैरवी चक्र तक मे उन्हे पकडकर लाया जाता था। चारो ओर त्राहि-त्राहि मच रही थी।

उसदिन—

गोपीनाथ देव के बैठक मडप मे कवियो की सभा बुलाई गई थी। घुमुसर के राज्यच्युत राजपुत्र कवि उपेंद्र भज गोपीनाथ देव के अतिथि बनकर आए हुएथे।

पर इन काव्यादर्शो का रस-भेद करने को बक्सी का धैर्य और आग्रह नही था। उनके समीप ही बैठे-बैठे वे सोच रहे थे कि किस तरह मक्खन से कोमल और पूर्ण रूप से निर्बोध इस गोपीनाथ देव को नि शेष किया जाए। उनमे काव्य रुचि की दृष्टि से ऐसी एक धारणा थी कि सूर्यवशी सम्राटो के समय ओडिया काव्यों मे जो स्वत स्फूर्त प्राणशक्ति थी उसका क्षीण आभास भी इन काव्यो मे नही मिलता। एक निर्वीर्यजाति का आहत पौरुष आज जिस तरह कामयुद्ध मे कदर्प के तीरो के आघात से आहत होकर अपनी लीला सगिनी को क्षत-विक्षत करके आत्म-तृप्त हो रहा है उसी तरह गुणवर्णित रीति से काव्यो के गायन से एक गौण मनोवृत्ति सपन्न समाज की रसतृषा ही प्रशमित हो रही है। दुर्भिक्ष से पीडित मनुष्य आज मानव मास तक का भक्षण कर रहा है, किशोरी के शकित वक्षो मे यौवन की कली के खिलने के पूर्व ही वह एक कीटदष्ट फल की भाति मुरझा जाती है, उस समय इन कवियो के काव्यो मे युवती के सुउन्नत स्तनो पर का स्पर्शजात चिह्न का वर्णन शोभा नही देता।

बक्सी जब विक्षिप्त-से इस तरह मन ही मन सोच रहे थे तब दीवान कृष्ण नरेंद्र ने आकर राजा के कानों मे कुछ धीरे-धीरे कहकर रसभग किया—"दरवाजे पर मुजाम्हा का वकील सैयद बेग लाठी लिए बैठा है। कहता है तीन साल से एक कानी कौडी तक उसे खोर्धा किले से मिली नही है।

गोपीनाथ देव ने शायद उसे सुनकर भी सुना नही। वे कवि और पडितो को पाट जोड़े, मकर-कुडल और यथोचित विदाई देने की व्यवस्था कर रहे थे। दीवान ने फिर से पूछा—"सैयद बेग का क्या करें ?"

गोपीनाथ देव ने असहिष्णु कठ से उत्तर दिया—"खोर्धा के महाराज किसी

को नजराना नही देते। यह मुगल बंदी नही हैं या आली सारंगगढ़ की तरह हम हर साल नजराना देकर सिंहासन का पट्टा नही ले रहे हैं।"

अनेकों की उपस्थिति में सारंगगढ़ के प्रति किये गये विद्रूप और व्यंग्य ने बक्सी वेणु भ्रमरवर के अंतस्थल मे स्थित जिघांसा की सोयी हुई अग्निशिखा को दावाग्नि की भांति प्रज्ज्वलित कर दिया। इस परमहितैषी गोपीनाथ देव की दया और अनुकंपा मे अज्ञात कुलशील वेणु राउत खोर्धा के बक्सी वेणु भ्रमरवर बने हैं—इस विचार के उनके मन मे आते ही उनका मन गोपीनाथ के प्रति कृतज्ञता नही, ग्लानि और ईर्ष्या से भर गया।

गोपीनाथ देव एक विचारहीन और अपरिणामदर्शी-से आस्फालन कर रहे थे—"सुजाखां के लिये अपनी रक्षा करना कठिन हो गया है। मुर्शिदाबाद मे नवाब जाफरखा नासिर मृत्युशय्या पर है। पौते सरफराजखा के नाम से बंग, बिहार और ओडिसा सूबों की सनद दिलवाने के लिए दिल्ली शाहजहाबाद में बैठे उसके अपने लोग चाल चल रहे हैं। मुर्शिदाबाद मनसब पर भी सुजाखा की आंखें गढी हुई हैं। जिससे ससुर, दामाद, बाप-बेटे मे संघर्ष होने लगा है। इसलिए मैं कहता हूं दीवान, टालो इसे। कह दो सैयद बेग से कि खोर्धा महाराज किसी को नजराना नही देते।"

दीवान कृष्ण नरींद्र का मुखमडल गभीर हो उठा। इस दायित्वहीन आस्फालन का परिणाम क्या हो सकता है उन्हे पता था। सैयद बेग से सब सुनकर अगर सुजाखा खोर्धा पर आक्रमण करे तो सब बात ही खतम हो जाएगी।

दीवान कृष्ण नरींद्र चिंतत हो मडप पर से चले आये। उनके ललाट पर की रेखाए और भी कुंचित हो उभर आयी।

बक्सी वेणु भ्रमरवर अलिंद के पास एक अनुच्च प्राचीर के सहारे खडे होकर शून्य दृष्टि से बरुणेई पर्वत पर स्थित दिशासूचक स्तभ की ओर अपलक देख रहे थे। दीवान कृष्ण नरींद्र कब आकर उनके समीप खड़े हो गये थे उन्हे पता तक नही चला। कृष्ण नरींद्र ने गहरी सास ली तो वेणु भ्रमरवर का ध्यान टूटा। उन्होने कृष्ण नरींद्र को तात्पर्यपूर्ण दृष्टि से देखकर पूछा—

"क्या बात है दीवान!"

कृष्ण नरींद्र ने उसी बरुणेई की ओर शून्य दृष्टि से देखते हुए आहत स्वर में उत्तर दिया—

"लक्षण अच्छे नही जान पड़ते।"

धूसर भौहो के नीचे वेणु भ्रमरवर की दोनो आंखो मे षड्यंत्र की रहस्यमय दुर्भेद्यता धीरे-धीरे प्रकट हो रही थी।···वेणु भ्रमरवर बोले—

"तो प्रतिकार! कुछ उपाय तो बताए।"

निस्पृह स्वर से कृष्ण नरीद्र बोले—

"जगन्नाथ जी को पता होगा।"

वेणु भ्रमरवर ने बताया—

"जगन्नाथ भी तो उस एक ही नाव पर बैठे हुए हैं।"

"यह तो स्पष्ट है ही···पर क्या उपाय है?" कृष्ण नरीद्र बोले—

"अब तक जो व्यवस्था होती आयी है वही अगर अपनायी जाए तो क्या हानि है? वह उपाय अव्यर्थ और परीक्षित है।"

वेणु भ्रमरवर की आखें छुरी की भाति चमक उठी।

ओडिसा के अभिशप्त इतिहास मे सिंहासन के लिए अनेक रक्तचलचित दृश्य कृष्ण नरीद्र की शून्य दृष्टि के आगे तैर गये। विश्वासघात और पीठ पीछे छुरी भोकने की अनेक कहानिया उन्हे याद हो आयी। उन्होने गहरी सास ली।

जैसे वेणु भ्रमरवर के सिर पर खून सवार हो गया। उन्होंने पूछा—"क्यो, चुप रह गये? क्या मेरी बात पसद नही आयी?"

कृष्ण नरीद्र ने उत्तर दिया—"सूर्यवश के पतन के बाद ओडिसा इतिहास मे यही व्यवस्था बारबार अपनायी गयी है। पर इससे व्याधि के नये उपसर्गों की सृष्टि ही हुई है···कभी आराम पहुचा है क्या?"

"छोडिये उन पुरानी बातो को। अबकी सोचिये। इसमे आपकी कोई क्षति नही होगी वरन् लाभ होगा। और यह अगर नही होगा तो सुजाखा राजा को घसीटते समय क्या दीवान भी साथ-साथ घसीटते हुए चलेंगे नही।"

कृष्ण नरीद्र ने चिंतित स्वर मे उत्तर दिया—"नही, पर नायब-नाजिम सुजाखा का वकील सैयद बेग साथ मे लश्करो को लेकर अकड़ा बैठा है। वह अगर बाद मे महाराज गोपीनाथ देव के पक्ष मे बोले तो?"

वेणु भ्रमरवर कृष्ण नरीद्र के समीप आये और धीमे स्वर मे बोले—"मुझे मालूम है कि सैयद बेग को कोई आपत्ति नही है। उसे मालूम हो गया है कि महाराज धीरे-धीरे काबू के बाहर चले जा रहे है।"

कृष्ण नरींद्र ने गहरी सांस ली। हताश से बोले—"तब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? शुभस्य शीघ्रं!"

उस दिन निशार्ध मे।

खोर्धा मुझारपुर और वरुणेई गढ में एक दिन बीतता था तो युग ही बीतता था। सब निद्रा मे अभिभूत हो अचेतन पड़े थे। राणीहसपुर के सब प्रदीप निर्वापित कर दिये गये थे।

राजप्रासाद के बाह्य भाग पर बने गोपीनाथ देव के साधना-कक्ष मे जो प्रदीप प्रज्वलित था उसकी प्रकाश रेखा अर्गल रध्र के पथ से मुक्त होकर खड्ग की शोणित धारा की भांति अधकार के गर्भ को चीरती-सी लग रही थी। कक्ष से धूप और गुग्गुल की मोहक सुगध आ रही थी जिससे रात्रि का मूर्च्छित वातावरण स्निग्ध हो उठा था।

कक्ष के अदर चंवर पर चदन से मोहिनी-यंत्र अकित करके गोपीनाथ देव ध्यानमग्न होकर बैठे हुए थे। यंत्र पर पाद्य, चदन, गध पुष्प और तांबूलादि पूजार्घ्य निवेदित किये गये थे। गोपीनाथ देव के सम्मुख एक दिग्वस्त्रा, पीनस्तना, नवयौवनांगी युवती घृतप्रदीप के मद-मद प्रकाश मे पीन उन्नत उरोजो पर लज्जा-वनत दृष्टि स्थिर किए बैठी थी। गोपीनाथ देव रक्तावर पट्टवस्त्र धारण किये हुए थे। प्रशस्त वक्षदेश पर रुद्राक्ष की माला, वाम भुजा पर अष्टधातु निर्मित कवच, माथे पर रक्तचदन का तिलक अतीव मनोहर लग रहा था। उनका मुखमंडल एक अद्भुत अलौकिकता से रहस्यमय लग रहा था। पता नही चर किस गृहस्थ के अत पुर से आज की इस गुप्त-साधना के लिए इस अभागिन का अपहरण करके ले आये थे। इस तरह की साधनाओ के समय बक्सी वेणु भ्रमरवर भी चक्र में उपवेशन करते हैं पर आज वे उपस्थित नही थे। कुछ सुरापात्र गोपीनाथ देव के सम्मुख शून्य पड़े थे। वह मोहिनी साधना की पंचमकार साधना थी। पचमकारो मे रहकर प्रवृत्तियो से निवृत्ति पाना ही इस साधना का रहस्य है। प्रवृत्तियों को जय करके वीरभद्र बनकर साधक इस साधना से सिद्धि-प्राप्त होता है।

गोपीनाथ देव अंगन्यास और करन्यास करके युवती के अनावृत शरीर पर पुष्प-दल निक्षेप करते हुए मंत्रपाठ कर रहे थे—

"पद्मानना श्यामवर्णा पीनोत्तुंगपयोधराम्
कोमलांगी स्मेरमुखी रक्तोत्पलदलेक्षणाम्
ॐ ह्रीं आगच्छ पद्मिनी स्वाहा…"

पुष्पदलों के कोमल स्पर्श से पाषाण प्रतिमा-सी बनी बैठी युवती का निश्चल शरीर, वातरहित किसलय की भांति सिहर सिहर हो उठता था। पर गोपीनाथ देव के मन में चित्त विकार का लेशमात्र प्रभाव भी नहीं पड़ रहा था। वे स्वयं उस समय एक पाषाण विग्रह से बने बैठे थे।

उस समय कक्ष का द्वार न जाने किसके धक्के से अचानक खुल हो गया। गोपीनाथ देव ने मद्यपानोन्मत्त आंखों से बक्सी बेग समरवर को देखा। बक्सी एक उलंग करवाल पकड़े हुए खड़े थे। बेग समरवर के इस भयंकर आविर्भाव को देख युवती ने अपने को कक्ष के एक अन्धकाराच्छन्न कोने में छिपा लिया था। गोपीनाथ देव बक्सी के इस भांति प्रवेश के उद्देश्य को ही नहीं समझ सके और उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ दृष्टि से देखते रह गये।

कुछ समय के पश्चात् अविचलित स्वर में बोले—"बक्सी! भैरवी चक्र में साधना करते समय खड्ग की आवश्यकता नहीं है। सिद्ध-समय करवाल से माया का रज्जु और प्रवृत्तियों के बंधनों को छिन्न करना पड़ता है।"

उस समय बक्सी की दोनों आंखें हिंस्र होकर आग की भांति जल उठीं। गोपीनाथ देव के परिस्थिति का ज्ञान करके बक्सी पर कूदने के पूर्व ही बक्सी ने उनका मस्तक छिन्न कर दिया था। गोपीनाथ देव का छिन्न मस्तक मोहिनी-यंत्र पर चरम बलिदान की भांति निवेदित हो गया।

पर गोपीनाथ देव की हत्या करने के बाद भी क्या बक्सी खोर्धा सिंहासन पर अपने को अभिषिक्त करने में सफल हो सके? उसके दूसरे दिन प्रभात समय बक्सी जब कुछ पात्रों और सामंतों के साथ चौरीनवर बाकिया को जा रहे थे तब पथ पर ही हाथों में तलवार लिये सैयद बेग ने उन्हें रोका।

बक्सी सैयद बेग को देखकर रुक गये।

सैयद बेग की सहायता से ही पिछली रात गोपीनाथ देव की हत्या की गयी थी। पर सुबह ही वह सैयद बेग कुछ और दिखाई देगा यह सपने में भी बक्सी

ने सोचा नही था। परंतु सैयद बेग जानता था कि बक्सी के समान विश्वासघाती एक दिन मुगल राजशक्ति के विरुद्ध भी विश्वासघात ही करेगा। गोपीनाथ देव को खोर्धा राजसिंहासन पर से हटाने के लिये बक्सी की तरह के एक अस्त्र की आवश्यकता थी। पर अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये उस पर विश्वास या भरोसा करना बुद्धिमानी नही होगी। और भी, हो सकता है, वह साध्यातीत असाध्य बन जाए। इसलिये बाकी के नजराने की वसूली पर बातचीत करके गोपीनाथ देव के छोटे भाई रामचंद्र देव को वह इस बीच राजगद्दी पर बिठा आया था। इसके अलावा, भगी भ्रमरवर के बेटे वेणु भ्रमरवर को खोर्धा के राजा के रूप मे स्वीकार करने को अधिकाश दुर्गपति और सामंत भी प्रस्तुत नही थे।

सिंहासन पर से रामचंद्र देव किंकर्त्तव्यविमूढ बक्सी को देख कर बोले— "आइए बक्सी, आपका अनिष्ट नही किया जाएगा। मैंने क्षमा कर दिया है।"

बक्सी ने एक बाध्य अनुगत की भाति रामचंद्र देव के चरणो मे खड्ग रख दिया और प्रणाम करके नतमस्तक हो खड़े रहे। दीवान कृष्ण नरेंद्र रामचंद्र देव के सिंहासन के पीछे बक्सी को देखते हुए अपराधी की भाति खड़े थे। दीवान शायद आखो की मौन भाषा मे कहना चाहते थे—"ठीक है, इस चाल से तो सफल नही हुए…और कोई मौका हाथ लगेगा ही।" पर उस समय उनकी ओर देखने का साहस ही बक्सी में नही था।

अनेक प्रतीक्षाओं के बाद फिर सुयोग मिला था। रामचंद्र देव ने जब टिकालि युद्ध के लिए प्रस्थान किया तब बक्सी पर छत्रद्वार घाटी की प्रतिरक्षा का भार सौंप गये थे। रामचंद्र देव के निर्देशो के अनुसार छत्रद्वार घाटी पर अगर वेणु भ्रमरवर तैयार रहे होते तो चिकाकोल के लश्करों का बचना असंभव हो गया होता। मालुद के फौजदार ने अगर पीछे से आक्रमण किया होता तो उसका *अस्तित्व तक मिट गया होता*। पर उस दिन जानबूझ कर बक्सी ने छत्रद्वार घाटी पर से फौज हटा ली थी। असहाय राजा को मृत्यु के मुख मे धकेलकर बक्सी ने सोचा था कि अब खोर्धा का सिंहासन उनकी ही मुट्ठी में है। पर उन्होंने सपने मे भी नही सोचा था कि रामचंद्र देव सूली पर न चढ़ कटक से नायब-नाजिम तकीखा के बहनोई बनकर लौट आयेंगे।

अदृष्ट के अभिशाप से बक्सी की सारी आशाओं पर पानी फिर गया था।

यों और सामंतों में अनेक अवश्य जातिच्युत, विधर्मी राम-
त कादर को गजपति के रूप मे स्वीकार करने को प्रस्तुत
र ही से रामचंद्र देव का काम तमाम हो जाएगा। पर प्रबल
ाजिम तकीखा के बहनोई सामत हाफिज कादर यार जंग
साहस कौन कर सकता था? इसलिये साले-बहनोई के बीच
ास की सृष्टि करके एक-दूसरे को जब तक शत्रु नही बना लें
हासन पर से रामचद्र देव को हटाने की सभावना ही नही
मरवर उसी मौके की तलाश मे थे।

तमहल के कक्ष मे बैठे-बैठे माला फेरते हुए बक्सी उसी कूट-
हे थे। हो सकता है जगन्नाथ भी इस खीचा-तानी से मुक्त
ाएगे। पर एक ओर खोर्धा सिंहासन की उज्ज्वल सभावना
न्य सब कुछ था।

चौक पड़े।

मे एक छाया ने अदर के आच्छन्न अधकार को चंचल कर
ी के ललाट पर पसीना फूट पड़ा।

वकील जइ पट्टनायक अंदर प्रवेश करने के लिए, बक्सी के
ा करते हुए ओढ़ी हुए चद्दर से पसीना पोछ रहे थे। कटक
कीखा के दरबार मे जई पट्टनायक खोर्धा की ओर से वकील थे।
ौढ़ होते हुए भी उनके चेहरे पर अदम्य सामर्थ्य झलक रहा
ा मे तुलसी की माला, उन्नत ललाट पर अंकित हरि-तिलक से
बसे पहले घनी भौंहो के नीचे उनकी दो गहरी आखें ही दिखाई
ा के नेपथ्य मे शठता, क्रूरता और षड्यंत्र ही उनकी आखो मे

कुछ समय पूर्व ही कटक से आकर वहा पहुचे थे। शरीर
ा चोगा जगह-जगह पसीने से भीगकर काला दिख रहा

ायक को देखकर प्रकृतिस्थ हुए और उन्हे अदर बुलाया…
कक्ष के अंदर आए। वेणु भ्रमरवर के आसन के समीप ही पड़ी

कुर्सी पर बैठ गये। उनके बैठ जाने के बाद भ्रमरवर ने पूछा—"और क्या खबर है कटक की !"

जइ पट्टनायक ने धीमे स्वर मे बताया—"एक जरूरी खबर लेकर आया हूं। चिकाकोल से दो साल के बकाया नजराने की रकम करीब तीन लाख लेकर फौजदार के दीवान नरसा राजु कटक आ रहा है।"

"पर यह कौन-सी खबर हुई ? चिकाकोल से तो इसी तरह लाखों रुपया कटक के जरिये जगत सेठ शाहजहांबाद दिल्ली तक ले जाता है और निजाम-उल-मुल्क को पहुंचाता है। इस खबर को पहुचाने को जइ पट्टनायक ने इतना श्रम क्यों किया ? और चिकाकोल के नजराने के साथ वेणु भ्रमरवर का क्या संपर्क है ? कटक लालबाग दुर्ग के हाल-हकीयत, राजनैतिक मौसम, सरफराजखां के साथ सुजाखां का झगड़ा कहां तक बढा, मुर्शिदाबाद मनसब के लिए बाप-बेटे में लड़ाई होगी या नही, ओडिसा की सरहद से कितनी दूरी पर मराठा वर्गियों का डेरा है और सब से बढकर महाराज रामचंद्र देव के प्रति तकीखां का अब मिजाज क्या है—आदि कूटनैतिक खबरें जानने के लिए बक्सी उतावले हो रहे थे। महाराज रामचंद्र देव को लेकर गलत फहमी बढाने को, खोर्धा पर हमला करने को तकीखां को बहकाने के लिये कृष्ण नरींद्र और बक्सी वेणु भ्रमरवर ने जइ पट्टनायक को कटक में वकील बनाकर रखा था। खोर्धा में जीरा भूंजा जाए तो कटक तक गंध पहुंचती है। अनेक दिनो से खोर्धा पर आक्रमण और जगन्नाथ मंदिर का लुंठन नही करके तकीखा के लश्कर भी ऊब रहे हैं। पर सुजाखां के समय से नायब-नाजिम के दरबार मे जमकर बैठे हुए राय आलमचाद और फतहचंद आदि हिंदुओं के प्रभाव से तकीखा भी जगन्नाथ पर हाथ उठाना नही चाहता था।

बक्सी ने अप्रसन्न स्वर से पूछा—

"चिकाकोल नजराने के साथ हमारा क्या संपर्क है ?"

जइ पट्टनायक की आखों मे धूर्त्त हंसी फूट पडी। वे बोले—"क्या संबंध है, समझ नही रहे हैं ? खोर्धाराज्य होकर जाते समय नरसा राजु जैसे निरापद कटक पहुचे और बीच मे राहजनी न हो पाए उसकी व्यवस्था करने के लिये खुद तकीखा ने महाराज को कडी ताकीद करके पत्र लिखकर मुझे दिया है।"

बक्सी का धीरज टूटने लगा था। उन्होंने असहिष्णु स्वर से कहा—"हमें उससे क्या लेना-देना, जो करना है राजा ही करेंगे !

जइ पट्टनायक ने शांत स्वर मे बताया—"आप समझे नही। खोर्धा की सीमा के अंदर अगर चिकाकोल के दीवान को कुछ हुआ और यह नजराने की रकम ही कहीं चली गयी तो…!"

अब वह बात बक्सी की समझ मे आयी।

बक्सी की दोनो आखें भूखे साप की आखो की तरह चमक उठीं। जइ पट्टनायक उसे और भी प्रज्वलित करने के लिए शायद बोले—"तीन लाख रुपये कोई थोडी रकम नही है। मुर्शिदाबाद दिल्ली से कटक को रुपयो के लिए हरदम ताकीद की जा रही है। और अब अगर तीन लाख ही हाथों से जाए तो तकीखा धीरज धरकर रहेगा क्या?"

बक्सी ने पूछा—"चिकाकोल से रुपये लेकर नरसा राजु कब आएगा? उसके साथ कितने सैनिक होगे?"

जइ पट्टनायक ने धीमे स्वर मे बताया—

"सिवान नविसों से वह भी पता कर लिया है। माघ के महीने मे नरसा राजु चिकाकोल छोडेगा। उसके साथ लगभग पचासेक घुडसवार होगे। सोमपेंठ तक तो चिकाकोल सूबे की सीमा है; वहीं से खोर्धा का इलाका पडता है। और क्या डर है, ऐसा सोचकर नरसा राजु लगभग निश्चित है।"

बक्सी पलग पर से उतर आये और जइ पट्टनायक को बाहों मे भर लिया। आदर भरे स्वर मे बोले, "आप सीधा कटक लौट जाए। महाराज तक यह खबर पहुचाने की और कोई आवश्यकता नही है। पर तकीखा को बता दीजियेगा कि यथा समय खबर पहुंच गयी है। आपके इस उपकार को हम कभी भी नही भुलाएगे।"

जइ पट्टनायक के चले जाने के बाद बाणपुर गढ की महारानी ललिता महादेई के नाम उन्होंने पत्र लिखा—

"महाराज रामचद्र देव उर्फ म्लेच्छ हाफिज कादर के आठवें अंक, तुला दिनाक पाच, पुरुषोत्तमक्षेत्र स्थित बालिसाही राजप्रासाद से बक्सी वेणु भ्रमरबर देव राय का खोर्धा महारानी ललिता महादेई को पत्र लिखने का अभिप्राय यह है कि आगामी माघ के महीने मे चिकाकोल के दीवान नरसा राजु दो साल का बकाया नजराना पूरे तीन लाख रुपये लेकर कटक के लिए प्रस्थान करेंगे। उनके साथ पचास से अधिक सैनिक नहीं होंगे। खोर्धा की सीमा के अदर इन रुपयों की लूट

हो जानी चाहिए। उससे तकीखां सोचेगा कि महाराज ने ही रुपयों को लूटा है। उसमें हमारा यह लाभ होगा कि जब तकीखां खोर्धा पर आक्रमण करे तब एक भी पाइक प्रतिरोध करने के लिए आगे नहीं बढ़ेगा। उस समय तकीखां के साथ संधि करके भागीरथी कुमार को राजसिंहासन पर बिठाएंगे। अगर वह नहीं होगा तो खोर्धा से म्लेच्छ राजत्व को हटाना असंभव है, समझें। मणिमा जब से वरुणेई दुर्ग छोड़ कर चली गयी हैं तब से खोर्धा श्रीहीन हो गया है। पयरगढ राजप्रासाद पर अब रजिया बीबी का राजत्व चल रहा है। दिन को अगर वह रात बतलाती है तो महाराज उसे रात ही समझते हैं। आप यह पत्र पाते ही बाणपुर और सालेरी की घाटियों के पाइकों को तैयार रखें। मैं यहां से दो सौ तक अत्यंत विश्वस्त सैनिकों को भेजूंगा। वे दीवान नरसा राजु को उसी घाटी में .खतम करके रुपये लूट लेंगे। मकर पंद्रह तक नरसा राजु बाणपुर पहुंच जाएगा।

इस पत्र वाहक को कटारी और पगड़ी की निशानी दी गयी है"

इस पत्र को लिखकर मोहर बंद करके वेणु भ्रमरवर ने एक अत्यंत विश्वस्त सेवक के साथ बाणपुर भेज दिया।

पत्र भेजने के बाद जगन्नाथ के उद्देश्य से हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और अस्फुट कंठ से प्रार्थना करने लगे—"यही शायद अंतिम अवसर है प्रभु। यह अगर हाथ से चला जाएगा तो और आना असंभव है। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो प्रभु!"

3

संध्या की दीर्घ शीतल छाया वरुणेई शिखर पर से नीचे प्रांतर पर चुपचाप उतर आ रही थी। धीरे-धीरे एक निर्वेदग्रस्त शीतल नैराश्य चमगादड़ों के झुंड की तरह उतर कर धरती पर छा रहा था। गढ़ के प्राचीर के समीपवर्ती बांस के जंगल में एक अशांत पक्षी चीत्कार करते-करते चुप हो गया था। वरुणेई गढ़ के मठों से घंटा ध्वनि सुनाई दे रही थी।

रामचंद्र देव अर्धनिद्रित अवस्था में रजिया बेगम का स्वप्न देख रहे थे। उस साथीहीन पक्षी की भांति रजिया बेगम की स्मृति रामचंद्र देव को अनेक नि:संग,

असतर्क मुहूर्तों मे अभिभूत करती है। रजिया जैसे एक विस्मृत सगीत की मूर्च्छना थी, जिसका आदोलन और गुजरण अवचेतन मन मे भी है।

क्या वेणु भ्रमरवर ने विश्वासघात किया ! यह अनुत्तरित जिज्ञासा-सी रजिया की स्मृति के साथ मिलकर उन्हे आलोडित कर रही थी। अपने ही अन्नदाता, परमहितैषी महाराज गोपीनाथ देव की हत्या जिस वेणु भ्रमरवर ने की है वह विश्वासघात के अलावा और क्या कर सकता है ? पर खोर्धा राजसिंहासन प्राप्ति की आकाक्षा रखने वाले रामचद्र देव मे यह एक शिशु-सुलभ विश्वास भी था कि शायद खोर्धा की कल्याण-कामना करते हुए गोपीनाथ देव की तरह एक दुर्बल और इद्रियासक्त व्यक्ति को हटाकर उनके स्थान पर उनके छोटे भाई यानि खुद उन्हे राजगद्दी पर बिठाने के लिए ही वेणु भ्रमरवर ने राजहत्या की है। दीवान कृष्णनरीद्र ने भी उनके मन मे एक ऐसी धारणा उत्पन्न की थी और उन्हे प्रोत्साहन दिया था। इसलिए उस दिन टिकाली की लडाई के उस सकटपूर्ण मुहूर्त मे, *बक्सी वेणु भ्रमरवर को घत्रद्वार घाटी छोड़ कर चले आने की बात* को रामचद्र देव विश्वासघात या युद्ध-कौशल किस पर्याय मे लेंगे समझ नही रहे थे। अब भी वह उत्पीडक प्रश्न रामचद्र देव के हृदय को आदोलित कर रहा था।

पथरगढ राजमहल को घेरे नि सग शून्यता थी। रामचद्र देव जब से धर्मांतरित हुए थे तब से अनेक सामत विश्वस्त राजपदाधिकारी यहा तक की अपने आत्मीय स्वजन भी उन्हे हीन दृष्टि से देख रहे थे। राजा जगन्नाथद्रोही म्लेच्छ बन गये हैं कह कर प्रजा मे भी उनके लिए उतनी श्रद्धा नही थी। ओडिसा के सिरमौर जगन्नाथ के सेवक गजपति कभी मुसलमान बन जाएगे ऐसी कल्पना तक जगन्नाथ-भक्त प्रजा के लिए पीडा दायक थी।

पर रामचद्र देव किस तरह किसे समझाए कि वह हिंदू-विद्वेषी नायब-नाजिम तकीखा की शनि-दृष्टि से जगन्नाथ को बचाने के लिए ही धर्मांतरित हुए है। टिकाली की लडाई के बाद रामचद्र देव समझ गये थे कि दो शताब्दियों के दीर्घ आक्रमण और आत्मरक्षा, रक्तक्षय और विपर्यय, व्यर्थता और विडबना के बाद ओडिआ जाति आत्मशक्तिहीन हो गयी थी। फिर 'यवन' रक्तबाहु से लेकर अफगानो तक जिन्होने ओड़िसा पर आक्रमण किया है, जगन्नाथ को लाछित किए बगैर उनकी प्यास बुझी ही नही। अब अगर तकीखा जगन्नाथ पर आक्रमण करने आए तो उनकी रक्षा करने का उपाय ही नही था।

पर एक अदम्य जाति की आत्मा के रूप में जो जगन्नाथ अबतक अपराजेय रहे हैं उन्हें तकीखा के हाथों निगृहीत कराने की कल्पना तक रामचंद्र देव के लिए असहनीय थी।

अब धर्मांतरण के बाद रामचंद्र देव को सब वर्जित कर गये थे। इसके कारण रामचंद्र देव के मन में दुःख नही था। क्यों कि जगन्नाथ निरापद थे रामचंद्र देव उर्फ हाफिज कादर बेग पर जबतक तकीखा को भरोसा है तब तक जगन्नाथ पर आक्रमण की आशंका नही थी। रामचंद्र देव ने एक मिथ्या अंगीकार भी किया था कि कालापहाड़, जगन्नाथ के जिस ब्रह्म-पिंड का स्पर्श तक नहीं कर सका था उसी दुर्लभ मणिमय-पिंड को, वे तकीखा के हाथों मे सौंप देंगे। इसलिए तकीखा खोर्धा और जगन्नाथ के बारे मे निश्चित था और अन्य जमीदार और दुर्गपतियो को सताने मे तथा अन्य स्थानो के मदिर और देवायतनों को तुड़वाने मे व्यस्त था।

अवश्य ही जगन्नाथ अबतक निरापद थे। दक्षिणी सीमा पर टिकाली-रघुनाथ पुर को जिस दिन से खोर्धा से अलग कर चिकाकोल के साथ शामिल किया गया है, उस दिन से खोर्धा पर मुगल आक्रमण की आशका भी नही थी।

गंगा से गोदावरी तक उत्कल साम्राज्य छिन्न होते-होते अब खोर्धा ही मे सीमित होकर रह गया था। उत्कल के जिन गजपतियों के नाम सुनकर एक दिन गौड़ से लेकर गोलकुंडा तक के प्रबल पराक्रमी सुलतानों का हृत्कंप होता था; अब न वह उत्कल था, न वह गजपति ही थे और न वह अपराजेय पाइक सेना ही थी। फिर भी इस छोटे से खोर्धा भूखंड को दखल करने के लिए अफगान सूबेदार दाउदखां से लेकर मुगल फौजदार खान-ए-दौरां तक सेनापति व्यस्त, विव्रत और हताश हो गये थे। पर इसके लिए ओड़िसा को भारी मूल्य चुकाना पड़ा था। डेढ सौ वर्ष से अधिक समय तक निरतर लडते-लडते ओड़िसा की भूमि ही श्मशान बन गयी थी। श्यामल शस्य क्षेत्र प्रांतर बन गये थे…जनपद उजड़कर शून्य हो गये थे…घर-घर विधवाओ के आकुल क्रंदन से भर गये थे। यह जाति और कब तक लडती!

रामचंद्र देव पतित हो जाएं, म्लेच्छ बनें पर ओड़िसा मे शाति की प्रतिष्ठा हो, जगन्नाथ निश्चिंत रहे, निरुपद्रव स्थिति में रहें! इतिहास मे न जाने कब

वह सुप्रभात आएगा और दीर्घ कृष्ण अंधकारमय रात्रि के पश्चात् नवीन सूर्य की दीप्ति से खोर्धा फिर उद्‌भासित होगा ! यह मुग्ध-भावना ही सहस्र संकटों के बीच रामचद्र देव को आशावादी बनाकर रखे हुए थी।

दक्षिण में हिंदुओ की मराठाशक्ति जाग्रत हो उठी है। चौथ वसूली के लिए वे दिल्ली तक का दरवाजा खटखटाने लगे हैं। दिल्ली शाहजहाबाद मे मुगलो के दिन भी पूरे होने को आए हैं। अतर्द्रोह और विश्वासघात के बीच मुगलशक्ति भी कब तक बनी रहेगी ?

पर ओडिसा के लिए विपत्ति जितनी दिल्ली से नही उतनी मुर्शिदाबाद-बंग, बिहार और ओडिसा की राजधानी से ही आएगी। पर मुर्शिदाबाद मनसब के लिए भी गृहयुद्ध छिड़ चुका है। सुजाखा ने कटक के नायब-नाजिम, गद्दी पर अपनी जारज सतान तकीखा को बिठाकर खुद मुर्शिदाबाद पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने अपने लड़के सरफराजखा को बिहार-आजिमाबाद का नायब बना दिया होता तो झगडा खतम हो गया होता। पर बाप-बेटे मे झगड़े के कारण उसने आजिमाबाद को अपने अनुगृहीत अलिवर्दाखा के सपुर्द कर दिया। इसलिए बाप-बेटे में मुर्शिदाबाद को लेकर झगड़ा धीरे-धीरे आग की तरह सुलगने लगा है। मुर्शिदाबाद की अधोगति निकट आती जा रही है। रामचद्र देव ने इस परिस्थिति से लाभ उठाते हुए खोर्धा के अपहृत गौरव का पुनरुद्धार करने का संकल्प किया था। और इसके लिए ओड़िसा मे निरवच्छिन्न शाति की आवश्यकता थी।

"रामचद्र देव भी शरीर मे अतिम रक्त बिंदु के रहते तक लडने को तैयार हैं। पर ओडिसा के लिए प्रधान शत्रु तो मुगल नायब-नाजिम नही है, अपने ही घर के गृहशत्रु और विश्वासघाती हैं। इसलिए आज बक्सी वेणु भ्रमरवर, दीवान कृष्ण नरींद्र, अधिकाश मुखिआ दुर्गपति, गढनायक, किसी पर भी भरोसा करना संभव नही हो रहा है। अपनी छाया तक का विश्वास करना रामचद्र देव के लिए असभव हो गया है। किसी भी असतर्क मुहूर्त्त मे वे पीठ पीछे छुरी भोंक सकते हैं।

ओड़िसा के इतिहास मे विश्वासघातियो की जय भी तो नही होती ! यही विश्वासघात एक के बाद एक विषमय चक्रांतो की सृष्टि करता है और वही चक्रात उन विश्वासघातियो को भी ग्रस लेते हैं।

इस परिस्थिति में नायब-नाजिम तकीखां की सदिच्छा रामचंद्र के लिए रक्षा-कवच बनी थी। पर रामचद्र देव को भी पता था कि तकीखां मौके की ताक में बैठा हुआ है। रामचद्र देव यवनी के साथ विवाह करके दरबार में राय आलमचंद या फतेचद की तरह एक दरबारी के रूप में रहेंगे, ऐसा तकीखां ने सोचा था। खोर्धा सिंहासन के शून्य पड़ने के बाद, खोर्धा को कटक के साथ मिलाकर ओड़िसा सूबे को सुवर्णरेखा से चिकाकोल तक बढ़ाने की इच्छा थी तकीखा की। इसलिए रामचंद्र देव को कलमा पढ़ाकर अपनी बहन रजिया के साथ शादी करवाकर मुसलमान बनाने से तकीखां का एक धार्मिक दायित्व ही पूरा नहीं हुआ था, इसकी पृष्ठभूमि में एक स्पष्ट कूटनैतिक योजना का सूत्रपात भी हुआ था। इसलिए रजिया की तरह एक कोमल कली तक को कूटनीति के रूप मे बलि-पशु की तरह बांधने में वह कुंठित नहीं हुआ था।

पर रामचद्र देव राय आलमचंद या जगत सेठ की तरह लोभवश लालबाग किले के सोने के पिंजड़े में हाथ-पैर बांधे बैठे रहनेवाले व्यक्ति नहीं थे। रामचद्र देव खोर्धा लौट आए। उनके इस प्रकार लौट जाने के अभिप्राय को तकीखां ने सही समझ लिया था और उसी दिन से उसकी शनिदृष्टि रामचंद्र देव के पीछे-पीछे उनपर चरम आघात करने की ताक में घूर रही है। इधर विश्वासघातियों के चक्रांतों के कारण खोर्धा का राजसिंहासन भी रामचद्र देव के लिए कंटक-शय्या बन गया है।

अंत मे महारानी ललिता महादेई भी विश्वासघातियों के साथ मिल गयी हैं। यवनी रजिया बीबी खोर्धा की महारानी बनेगी और उसका लडका खोर्धा राज-सिंहासन पर अपने अधिकार का दावा करेगा इसकी कल्पना तक उन्हें एक घायल सर्पिणी की भांति भयंकर बना रही थी। रामचद्र देव के खोर्धा लौट आने के पहले से ही वे अपनी चूड़ियां फोड़कर अपने वैधव्य की घोषणा करके मायके चली गयी थी। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि भागीरथी कुमार को जब तक वे खोर्धा सिंहासन पर नहीं बैठाएगी तब तक खोर्धा की धरती पर पैर भी नहीं धरेंगी।

एक नि.संग नक्षत्र की भांति रामचंद्र देव आज पूर्णरूप से अकेले थे। खोर्धा की शांति और सुरक्षा के लिए और जगन्नाथ के मान की रक्षा के लिए उन्होंने

धर्म तक का त्याग किया था। समाज, संस्कार सबकी तिलांजलि दी थी। उसी खोर्धा की प्राणभूमि से भी वे निर्वासित हुए हैं, और जगन्नाथ के द्वार पर से भी विताड़ित हुए हैं।

भवितव्य के क्रूर षड्यंत्र में हो सकता है सब खो गया हो…फिर भी…! वे तो नये सिरे से कुछ करने के अनापेक्षित अधिकार से वंचित हुए नहीं हैं। स्वयं जगन्नाथ भी उन्हें इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकते, क्योंकि मनुष्य की मुक्ति के लिए वही एकमात्र साधना है और वह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार भी है। इसी से रामचंद्र देव के मन में धैर्य था।

रामचंद्र देव मन-ही-मन कल्पना कर रहे थे…दुर्गम…अंधकार पथ…और उस अंधकार पथ पर एक क्षीण प्रदीप लेकर वह अकेले चल पड़े थे। अचानक तूफान उठा और झंझावात से वह प्रदीप ही निर्वापित हो गया, पीछे आश्रय नहीं है, सामने अवलंबन भी नहीं है, केवल अंधकारमय पथ ही है। चलना क्या यहीं बंद हो जाएगा? क्या यहीं से प्रत्यावर्तन करना होगा? गंतव्य पथ पर क्या वे और अग्रसर नहीं होंगे?

रामचंद्र देव की क्लांत आंखों की पखुड़ियां मुंदी जा रही थीं और उनकी आंखों के आगे टिकाली युद्ध में बंदी बनने के बाद के उन विडंबना और लांछित मुहूर्तों की स्मृति तैर रही थी।

बारबाटी दुर्ग के नवप्रस्त प्रासाद के अष्टम प्रस्त में रामचंद्र देव के लिए कारागार था। टिकाली-युद्ध में वे गजागढ़ के पास चिलिका तट पर बंदी बनाए गये थे, और लोहे के पिंजड़े में बंद करके यहां लाये गये थे।

कटक के नायब-नाजिम जब बारबाटी दुर्ग में रहते थे तब यही अष्टम प्रस्त उनका अंदर-महल था। नवम-प्रस्त के प्रवेश-पथ पर गढ़ के ठीक मध्यस्थल में एक विराट स्तंभ था जिस पर से दूरवीक्षण यंत्र के द्वारा शत्रुओं की गतिविधियों का पता लगाया जा सकता था। महानदी की उत्तरी दिशा पर शत्रु पहुंच जाए तो इस स्तंभ पर से स्पष्ट दिखाई देगा। अन्य प्रस्तों में अतिथिशाला, दरबार-प्रकोष्ठ, रंधनशाला, दुर्ग रक्षकों और सेनाओं के आवास, शस्त्रागार, हाथी, ऊंट और अश्वों की शालाएं आदि बनायी गयी थीं। पर नायब-नाजिम आगाया जामन *काफिरों द्वारा बनायी गयी छत के नीचे नहीं रहेंगे।* इसलिए लालबाग में उन्होंने

अपने लिए एक नया दुर्ग बनवाया था। उसी दिन से लालबाग दुर्ग नायब-नाजिमों का आवास-स्थल बन गया और बारबाटी को मुख्यतः बंदीशाला और सैन्यशिविर के रूप में व्यवहृत किया जाने लगा। इसके अलावा जिन अंतपुर-वासनियों के प्रति नायब-नाजिम की श्रद्धा नहीं रह जाती थी वे भी इस दुर्ग के नवम प्रस्त के अंदर महल में अतीत की सौभाग्य-स्मृति का स्मरण करते हुए पड़ी रहती थी। अब सुजाखां के समय भी कई बेगमें अपनी खास दासियों को लेकर वहीं रहती थीं।

रामचंद्र देव जिस प्रस्त में थे वह बंदीशाला बना था। वहां शताधिक जमींदारों, इजारेदारों और दुर्गपतियों को यथा समय मालगुजारी नहीं देने के जुर्म में बंदी बनाकर रखा गया था। उस समय उनके आर्त्तनाद से बारबाटी का मूर्छित वातावरण कांप रहा था। कहा जाता है, नायब-नाजिम खान-ए-दौरा के समय इसी कारागार में सात सौ ओड़िआ जमीदारों की हत्या की गयी थी। अब जो बंदी यहां हैं वे फिर कभी बाहर का मुक्त दिवालोक देख सकेंगे ऐसा विश्वास ही नहीं कर रहे थे। बंदी रामचंद्र देव भी उस परिणति की प्रतीक्षा कर रहे थे।

चरम परिणति के प्रस्तुत होते समय आत्म-समर्पण की भावना की जो स्थिर प्रशांतता मन को छूती है, वह रामचंद्र देव को अंतिम परिणति के प्रति निरुद्विग्न बना रही थी।

रामचंद्र देव कारागार के एक अप्रशस्त गवाक्ष के पथ से बाहर नीलाभ आकाश की ओर ताकते हुए अविचलित खड़े थे। गुलाम गर्दिशों में से खोजा, क्रीतदास और अन्य परिजनों का अश्लील शोरगुल और उसके साथ सैनिकों का शराबी कोलाहल बारबाटी के निर्वेदग्रस्त परिवेश को बीच-बीच में चंचल कर देता था।

कारागृह के अंदर शीतल छायांधकार आच्छन्न था। उत्तरी दीवार पर बने झरोखे से शाम का स्तिमित प्रकाश भीतरी भाग को ईषत् आलोकित करने का असफल प्रयास कर रहा था। प्रस्तर निर्मित दीवार और स्तंभ पर ओड़िआ शिल्पियों का कला-कौशल उसी आलोक में अस्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। स्तंभ पर बनी लास्यमयी कन्याओं की प्रतिमाएं उस निश्प्राण परिवेश में उस समय अप्रासंगिक लग रही थीं। एक चारपाई पर शायद रामचंद्र देव के खातिर एक जरीदार चादर बिछायी गयी थी। चारपाई के पास बनी पत्थर की मेज पर

पानी भरी सुराही रखी हुई थी और थाली मे खायी हुई रोटियों के सूखे टुकड़े पड़े थे।

झरोखे मे से सामने जनाना महल की गुलाब वगिया दिख रही थी। पर अब जनाना महल वहा नही था इसलिए देखभाल के अभाव से उस सुरक्षित गुलिस्ता मे घास और काटेदार पौधे उग आए थे। सजे-सवेरे फव्वारे सूखे पड़े थे। फिर भी उस परित्यक्त और शुष्क परिवेश मे कुछ गुलाब और गुल-ए-मखमल के पौधे अनगिनत फूलो और कलियो से भरे पडे थे। कारागार के बाहर टहलने वाले अफगानी सतरियों के जूतो की चरमराहट सुनाई दे रही थी।

बाहर आकाश धीरे-धीरे मलिन होता जा रहा था। बगीचे मे गुलाबों पर सध्या की छाया सहमी-सी बिछी पडी थी। रामचद्र देव तब भी वहा एक प्रस्तर मूर्त्ति की भाति खडे थे। अतीत की अनेक ऐतिहासिक स्मृतिया उनकी शून्यदृष्टि के पथ मे जलभारहीन बादलो की तरह मडरा रही थी और लीन होती जा रही थी।

उस स्मरणातीत अतीत मे···उन दिनो महानदी के दक्षिण तटवर्त्ती बारवाटी गाव का नाम कोदिंडा दडपाट था। वहा एक आहत बाज पर बकपक्षी सवार हो गया था। इस संभावनातीत विचित्र दृश्य को देखकर अनगभीम देव को न मालूम किस शकुन का आभास मिला कि उन्होने उसी स्थान पर बारवाटी दुर्ग के निर्माण के लिए भित्तिस्थापन कर दिया।

वह इतिहास का कोई सूचना गर्भित शकुन था क्या?

उसी दिन से वहा कई बगुलो ने बाजो को कवलित किया है। ऐसा अगर होता तो क्या खोर्धा के महाराज रामचद्र देव यहा बदी बनकर सूखी रोटिया चबाते?

पर जिसकी प्रतीक्षा मे रामचंद्र देव वहा अलसाये कौतूहल से खड़े थे वह आयी नही थी।

क्या वे आज शाम को इस बगीचे मे आना ही भूल गयी हैं। उन्हे क्या पता है कि इस काराकक्ष के झरोखे से उन्हे प्रतिदिन रामचद्र देव सधानी दृष्टि से देखा करते हैं। इसलिए क्या उन्होंने संकोचवश इस बगीचे मे आना ही बद कर दिया है?

शून्यदृष्टि से बाहर देखते हुए रामचद्र देव इसी तरह सोच रहे थे। इस पल-

भर की उत्तेजना और कौतूहल से उनका घटना विहीन, निःसंग और अनिश्चित काराजीवन किंचित सहन योग्य हो रहा था।

अलंघनीय भवितव्य की भांति उस नारी ने रामचंद्र देव को पूरी तरह प्रभावित किया था। उस दिन उसके काले मखमल से बने बुर्के के अपसारित प्रांत ने ही रामचंद्र देव को उसके प्रति उत्सुक किया था। पर उस निष्प्राण, उत्पीड़क परिवेश में रामचंद्र देव उसे साकार रूप से देखेंगे इसकी कल्पना उन्होंने सपने में भी की नहीं थी।

वह नारी एक शरीरहीन छाया है या उत्पीड़ित मन का विकार मात्र है अथवा जाग्रत स्वप्न का इंद्रजाल, यह निश्चित कर पाना रामचंद्र देव के लिए उस दिन असंभव-सा हो गया था। उनके इस कारागृह में अवस्थान करने के कुछ दिन बाद यह घटना आकस्मिक रूप से घटी थी।

गजागढ के पास चिलिका तट पर उस उजड़ी हुई बस्ती मे उस दिन युद्ध के बिना आत्म-समर्पण करके बंदी बन जाने की ग्लानि उन्हे सता रही थी। घायल शेर की भांति विक्षुब्ध रामचंद्र देव उस कारागृह में टहल रहे थे। वर्तमान की ज्वाला मे वे भविष्य की सारी दुश्चिंताओ को भूल गये थे।

उस दिन उस ज्वालामय मुहूर्त मे उस बगीचे मे बुर्के से ढकी उस नारी की मूर्ति का आविर्भाव हुआ था। बगीचे में अयत्नवर्द्धित एक गुलाब के पौधे के पास आते समय मुंह पर से बुर्का कुछ हट गया था, जिससे उसके रक्तिम ललाट और कानों मे झूलते मणिमुक्ता जड़े कर्णफूल संध्या की अरुण किरणों मे चमक उठे थे। बुर्के के नीचे ललाट का अंश बादलों से ढके चांद-सा लग रहा था। वह तितली की तरह इस पौधे से उस पौधे तक चल-फिर रही थी और कभी शाखाओ को नंवाकर सूंघ लेती थी और कभी फूलो से गालों को छू लेती थी।

धीरे-धीरे यह नैमित्तिक और दैनंदिन दृश्य बन गया। कारागृह मे सारे दिन रामचंद्र देव उसी को देखने की प्रतीक्षा करने लगे और एक आहत कौतूहल से गवाक्ष के समक्ष खड़े रहने लगे। यह कौतूहल धीरे-धीरे प्रतीक्षा और उत्कंठा का रूप लेने लगा।

प्रतिदिन उसी निश्चित समय पर वे वही अपरिवर्तित दृश्य देखते…कौन है यह रहस्यमयी छाया मूर्ति? जनाना-महल की रहने वाली है क्या? या किसी उत्पीड़ित अतृप्त आत्मा की छाया-प्रतिमा है?…किसी असंतुलित मानस का दिवास्वप्न है!…रामचंद्र देव निश्चित नहीं कर पाते थे।

पर रामचंद्र देव ने गौर किया होता तो शायद देखा भी होता कि एक सूने फव्वारे की ओट से एक और अन्य व्यक्ति भी उस नारी को देखते समय उनके क्रिया-कलापों को देखा करता है। उसकी उपस्थिति की सूचना तक रामचद्र देव को मिल नही रही थी। धीरे-धीरे शाम ढल जाती, चिराग जलाने वाले एक-एक करके आते, उनके जूतों की आहट सुनाई देती। कारागार के भारी दरवाजों के खुलने और बद होने की आवाज भी आती, दुर्ग के दूसरे प्रान्त में बनी छोटी मसजिद की अजान के स्वर मे निस्तरंग सन्ध्या जब भंग हो जाती तब वह नारी प्रतिमा भी अदृश्य हो जाती।…सगीत की मूर्च्छना की भांति कहीं लीन हो जाती।

और फिर रामचद्र देव सोचने लगते…कौन थी वह…क्यो आयी थी?

उस दिन वह नहीं आयी।…क्यो? हर रोज की तरह चिराग जलाने वाला आया और मोम की बत्ती जला गया। अचानक उजाले के लिए उस कारागार की अधकाराछन्न छत के नीचे कुछ चमगादड़ उड़ने लगे। पर उसके बाद हर रोज की तरह दरवाजा बद नही किया गया। चिराग जलाने वाला एक यंत्र-चालित पुतली की भांति आया, चिराग जलाया और उसके चले जाने के बाद 'सलाम आले कुम!' कहता हुआ कोई अदर दाखिल हुआ।

वह जबरदस्तखा था, नायब-नाजिम तकीखा के विश्वसनीय पारिषदों में से एक। सुजाखा के समय से वह नायब-नाजिमों के अदर-महल की देखभाल करता आ रहा है। जनाना-महल की बेगमों की श्रद्धा और विश्वास भी उस पर बना रहा है। जबरदस्तखा नौ-मुसलमान अर्थात् धर्मांतरित था, फिर भी उसने मुगलों की तरह सर के बाल छोटे-छोटे करवाये हुए थे। मुह पर शैवाल की तरह दाढ़ी, और मूछ की जो क्षीणतम सूचना थी वह पक कर सफेद दिख रही थी। उसका चेहरा मोमबत्ती के उजाले मे कोमल लग रहा था। जबरदस्तखा ने लाल मखमल की कमीज पहनी थी जिसकी दाहिनी ओर की चादी की बनी बूटें रस्सी मे से झूल गयी थी। कमरबद मे हाथी दात के मूठ वाली एक छुरी खोसी हुई थी। सर पर टोपी थी।

रामचद्र देव असमय में वहा जबरदस्तखा को देखकर कुछ विस्मित हुए। पर जबरदस्तखा ने अपने दतहीन मुह पर अपनेपन की रेखाए खीचते हुए पूछा—

"कैसे हैं मिजाज गरीबनवाज के?"

सभापण के इन मुगलाई रिवाजो को वे अच्छी तरह जान गये थे। अप्रसन्न

स्वर में रामचंद्र देव ने उसे प्रतिसंभापित करते हुए कहा—"शुक्रिया, तशरीफ फरमाइये !"

जबरदस्तखा ने कुछ विनत हो टहलते हुए कहा—"हुजूर के साथ मुलाकात हो, यह हर रोज सोचा करता हू। पर फुर्सत ही नही मिलती। आज हुजूर ही से फरमाइश हुई—'*मियांजाओ, हमारे बिरादर खोर्धा के बादशाह से मिल आओ !*'... तो मैंने कहा—"जो हुकुम खुदावद' !"

जबरदस्तखा निहायत गप्पी आदमी था। वह लालबाग से कैसे आया, कब निकला, घोड़े पर आते हुए कहा घोडा किस तरह चौंका था, यहा तक की आज हुजूर के बावर्चीखाने से पुलाव की कैसी खुशबू आ रही थी वगैरह सुनते-सुनते सुननेवाला असल मामला जानने को उतावला हो जाता था। पर उस दिन जबरदस्तखां से यह सब सुनने का उनमे आग्रह या धीरज नही था, न वे उसे अचानक और बेमौके आये देख उतने उत्कठित हुए थे।

रामचद्र देव परिहास-मिश्रित स्वर मे बोले—"देखिए, मैं एक मामूली कैदी ही हूं। नायब-नाजिमो की बिरादरी मुझे किस कदर नसीब होगी ?"

जबरदस्तखा मुलायम आवाज में बोला—"तोब्बा...तोब्बा, कैसी बातें करते हैं ! किसकी हिम्मत है कि खोर्धा के बादशाह को कैदी कहे ! खुदाताला की दुनिया मे गर्दिश के दिन भी हैं, खुशहाली और खुशनसीबी से भरपूर दिन भी हैं। आज तख्त तो कल तख्ता...!"

उसके बाद जबरदस्तखां अचानक धीमी आवाज मे बोला—"ओड़िसा सूबे के नायब-नाजिम तकीखां और फिर मुर्शिदाबाद के शाहंशाह दीन-दुनिया के मालिक सुजाखां के बिरादर बनना मामूली नसीब की बात नही हो सकती हुजूर !"

रामचंद्र देव, जबरदस्तखां की इन पहेली जैसी बातों को समझ नही पा रहे थे।

जबरदस्तखा सब कुछ खोलकर कहने की कोशिशो के बावजूद कह नही पा रहा था। रामचंद्र देव भी क्या कहें यह निश्चित न कर पाने के कारण चित्र-प्रतिमा की भांति चुपचाप खड़े थे।

जबरदस्तखां अचानक बाहर चला गया और बुर्के से ढंकी, एक नारी का हाथ पकड़कर अदर आ गया। आते हुए वह सहानुभूतिपूर्ण स्वर मे कह रहा था—"आओ, आओ, अंदर आ जाओ बेटी !"

बुर्के में से उसके दाएं हाथ की अंगुलियों के अलावा और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। गोर, सुगठित हाथों की अशोक मंजरी-सी अंगुलियों से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि बुर्के के अंदर एक सुंदर नारी ही थी।

सुप्त है या जाग्रत, यह भी रामचंद्र देव समझ नहीं पा रहे थे।

कौन है यह रहस्यमयी नारी? रामचंद्र देव इसी विचार से विस्मयाभिभूत से हो गये थे।

जबरदस्तखां ने बुर्का उठाया। बादलों में छिपे चंद्रमा की भांति-स्वर्णिम ललाट की शोभा स्पष्ट हो गयी। कमान-जैसी भौंहों के नीचे सुर्मे की पतली-सी रेखा से चित्रित दो मुद्रित आंखें···सपना तो नहीं है? यह तो वही रहस्यमयी है, जो गुलाब-वाटिका में प्रतिदिन संध्या समय आकर रामचंद्र देव के नयनों में सपनों का इंद्रजाल बिछा जाती है। पर यहां इस कारागार में क्यों आयी है?

जबरदस्तखां ने बुर्का गिरा दिया। इत्र-ए-जहांगीरी की खुशबू से कैदखाने का अवरुद्ध वातावरण पल भर में रोमांचित हो उठा।

जबरदस्तखां बोला—"हुजूर, यह आपकी मनसा है। इनसे हुजूर का निकाह हो तो खोर्धा और कटक, दोनों बिरादरी एक हो जाएगी। ये मुर्शिदाबाद के नवाब सुजाखां की नवाबजादी हैं और नायब-नाजिम तकीखां की बहन हैं।"

यह विचित्र प्रस्ताव सुन, रामचंद्र देव विस्मित हुए। निकाह के तय हो जाने पर बेटी के घरवाले पान बांटते हैं। यहां लड़की की ओर से जबरदस्तखां ही था, और कोई नहीं था। उसी ने जेब में से पान का एक हरा पत्ता निकाला और रामचंद्र देव के हाथ में थमाता हुआ बोला—"जनाब, गौर करें, नवाब सुजाखां आज बंगला, बिहार और ओडीसा सूबों के मालिक हैं। खोर्धा और कटक के बीच जंग तो एक मामूली-सी बात हो गयी है। दोनों ओर खून-खराबी होती रही है जिससे खोर्धा मुल्क को नुकसान ज्यादा पहुंचा है। पर आज नायब-नाजिम बहादुर की यही ख्वाहिश है कि ये सारी नाजायज बातें यहीं खत्म हो जाएं और खोर्धा-कटक एक हो जाएं, ओड़ीसा सूबे पर अमन का राज हो। इसलिए नायब-नाजिम मालिक तकीखां हुजूर को बहनोई बनाने की ख्वाहिश रखते हैं।"

रामचंद्र देव के हाथों से पान का पत्ता गिर पड़ा। इस तरह के अप्रत्याशित, असंभव प्रस्ताव की धमकी सुन वे कुछ सहम भी गये।···जबरदस्तखां जिस तरह अकस्मात आया था उसी तरह चला गया। जाते-जाते कहता गया—"हुजूर

इस पर गौर करें। शहंशाह नवाबजादे के दोस्ती के बढ़ाए हुए हाथ को इस कदर सरका देना…"

जबरदस्तखां के चले जाने के बाद बुर्के के अंदर की वह नारी-प्रतिमा निश्चल जलराशि पर एक क्षीण तरंग की भांति सिहरकर फिर निश्चल हो गई। जबरदस्त-खां के बंधुत्वपूर्ण प्रस्ताव के साथ-साथ अप्रत्यक्ष रूप से जो धमकी थी उसकी परिणति पर विचार करते हुए वे अस्थिर से हो गये थे।

खोर्धा अब जैसे नायब-नाजिम तकीखां की दया पर ही आश्रित है। यह और कोई समझे न समझे, रामचद्र देव अवश्य समझ रहे थे। तकीखा का मुकाबला करने के लिए ओड़िया पाइकों मे शक्ति न हो सो बात नही थी, परतु उस समय बाहर का शत्रु जितना बलवान था उससे बढ़कर घर के शत्रु थे। खोर्धा की स्वाधीनता के साथ जगन्नाथजी भी पूरी तरह जुड़े हुए थे। खोर्धा की दाभिकता फिर भी शेष थे, इसलिए नायब-नाजिमों ने श्रीजगन्नाथ मदिर को हाथ नही लगाया था। पर अगर खोर्धा ही नही रहे तो श्रीमदिर को तोड़कर इसी के पत्थरों से श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र मे एक मसजिद खड़ी कर देने मे तकीखां को क्या देर लगेगी! शत दुर्योग, पराजय और लाछन के बीच जिन जगन्नाथजी को अक्षत रखने के लिए भोई वंश के महाराजाओ को इधर-उधर भटकना पड़ा है, आज अगर वही तकीखा के हाथो निर्यातित हों तो?

बुर्के से ढंकी उस नारी ने धीरे-धीरे अपने मुंह पर से बुर्का उठाया। मुरझाए हुए कमल की पंखुड़ियों की भांति उसकी वेदनाद्र आखें जैसे रामचद्र देव को देखकर नीरव भाषा मे कह रही थी—'मुझ पर विश्वास करें। मैं इस षड्यंत्र मे नही हूं। मैं निरपराधी हूं।'

शिशिर बिंदु की तरह निष्पाप और उज्ज्वल उन आखों ने न मालूम किस तरह पल-भर मे ही रामचद्र देव को सम्मोहित-सा कर दिया। उनकी स्मृति में उस दिन चिलिका तट पर उस उजड़ी हुई बस्ती में पानी पिलाने वाली, आश्रयदायिनी, हतभागिनी सर देई की आखो की पीड़ित दृष्टि प्रतिबिंबित होने लगी।

रामचंद्र देव ने आविष्ट स्वर मे पूछा—

"तुम कौन हो?"

उसने अकपित स्वर में उत्तर दिया—

इसके बाद खोर्धा लौटने मे और किसी प्रकार का प्रतिबंध नही था। पर हाफिज कादर वेग रजिया वेगम को लेकर किस मुंह से खोर्धा लौटेंगे यह रामचंद्र देव के लिए एक समस्या बन गयी थी। रामचंद्र देव वारवाटी दुर्ग मे तकीखां के वहनोई वनकर एक और वंधन से बंध गये थे और वंदी वनकर बैठे हुए थे।

उस दिन मुसलमानों का शव-ए-रात पर्व था। उसी दिन रामचंद्रदेव और रजिया वीवी की मधुयामिनी भी थी।

तव तक इस्लामी समाज ने भारत मे हिंदू-संस्कृति के घनिष्ट संपर्क में आकर कई हिंदू-पर्व और त्यौहारों को अपना लिया था। शव-ए-रात पर्व उनमे से एक था। सावन महीने की चतुर्दशी की रात्रि में यह उत्सव मनाया जाता था। यह हिंदुओं की दीपावली अमावस्या की तरह इस्लामी महानिशा है। इसके निरंध्र अधकार में जीव ब्रह्म मे लीन हो जाता है। नियमानुसार सारी रात जाग्रत रहकर कुरान पाठ होता है। मुसलमानों मे यह विश्वास है कि इसी रात को जन्नत में आदमी के भाग्य और भविष्य के बारे मे फैसला किया जाता है। पर धीरे-धीरे यह पर्व दीपावली अमावस्या की तरह आलोक-मंडित, दीपमालाओं से विभूषित होकर अग्नि-क्रीड़ा और पटाखों के शब्द से कोलाहल मुखर उत्सव बन गया है।

शव-ए-रात के साथ-साथ तकीखां की वहन और सुजाखा की वेटी रजिया के विवाह के उपलक्ष में उस दिन वारवाटी दुर्ग को दीपमालाओं से सजाया गया था। दुर्ग की मध्यवर्ती फतेखान मसजिद भी आलोक-मालाओं से मंडित थी। दूर से उसका गुंवद, आलोक से बना छत्र-सा प्रतीत हो रहा था। दुर्ग के चारो ओर दीये जल रहे थे और आकाश तक आलोक सीढ़ियां-सी लग रही थीं। दुर्ग के प्राचीरो मे जल रहे दीपक किसी रूपकथा के स्वप्नलोक का भ्रम पैदा कर रहे थे। दुर्ग के अंदर आतिशवाजी देखने के लिये वाहर शहर के लोगों की भीड़ थी, पर सर्वत्र हाहाकार मच रहा था···सुजाखा की जारज कन्या के साथ विवाह करके जगन्नाथ के सिरमौर-सेवक खोर्धा के महाराज अंत में धर्मभ्रष्ट हो गये...।

रात का दूसरा पहर वीत चुका था। दीये वुझने लगे थे। फिर भी जगह-जगह कुछ दीये एक उत्सव-मुखर संध्या के अंतिम अवशेषों की भांति जल रहे थे।

रजिया से शादी कर लेने के वाद रामचंद्र देव उर्फ हाफिज कादर वेग आठवें प्रस्त से नौवें प्रस्त को स्थानांतरित हुए थे।

मधुयामिनी मे उनके रंगमहल को ईरानी गलीचे, समरकंद से मंगवाए गये

रेशमी तकिये, मुर्शिदाबाद से आए पर्दे और फूलदान, धूप और इत्रदान से सजाया गया था। रजिया उसी महल के एक कोने में सज-धजकर होकर बैठी हुई कुरान-शरीफ पढ़ रही थी। रात्रि के अंतिम प्रहर की शीतल वायु संगमरमर के रोशनदानों से आकर पर्दों को बाउल दरवेशों की तरह नचा रही थी। रजिया ने काले रंग का कश्मीरी शाल ओढ़ लिया था।

सरदारों के प्रांगण में उस समय भी रक्स-ए-रात की महफिल जमी थी। रात की तनहाई में शराबी नज्मों के स्वर सुनाई दे रहे थे, देवदासियों के पैरों के घुंघरू तब भी बज रहे थे। रामचंद्र देव उस समय उसकी याद में फानूस के नीचे खड़े होकर झरोखे की जालियों में से महानदी की ओर चित्र-प्रतिमा की तरह अपलक देख रहे थे। महानदी के वक्ष पर कृष्ण तिथि का चंद्र मग्न हो रहा था। वह चांद आकाश के बादलों में कहीं खोता जा रहा था या महानदी की अतल जलराशि में आत्महत्या कर रहा था, यह समझना शराब के नशे में चूर रामचंद्र देव के लिये एक पहेली-सा था। कांपते हाथों में प्याला लेकर उसी ओर अपलक देखते हुए रामचंद्रदेव शायद इसी पर सोच रहे थे।

रामचंद्र देव ने एक ही सांस में प्याला खाली कर दिया। उनके कांपते हाथों से छूटकर प्याले ने जैसे उस मूर्च्छित परिवेश के निर्वेदग्रस्त मर्मस्थल को सिहरित कर दिया।

रजिया धीरे-धीरे आसन पर से उठ आई और रामचंद्र देव के समीप ही खड़ी हो गई। कूटनीति के यूप में बांधी गई उस निरीह नारी की ओर देखकर रामचंद्र देव का हृदय गहरी सहानुभूति से भर गया। उन्होंने रजिया के मेंहदी रंगे हाथों को अपने हाथों में ले लिया। उस समय जैसे महानदी की अंधकाराच्छन्न जलराशि में डूब गया चंद्रमा रजिया की मदिर आंखों में चमक रहा था।

रजिया रामचंद्र देव के कानों में चुप-चुप कहने की तरह धीरे से बोली—"आज लड़की को कुछ तोहफा देने की रीति है—कहिए तो, क्या देंगे आप मुझे...?"

रामचंद्रदेव रजिया की आंखों की गहराई को देखते हुए बोले—"इहलोक, परलोक में जो कुछ भी मेरा है वह सब तो अब तेरा है जवा !"

रजिया ने उन्हें शरारती आंखों से देखकर कहा था—"कसम खाइए..."

रामचंद्र देव ने धीरे-धीरे रजिया को बांहों में भरते हुए कहा था—"सत्य-सत्य-सत्य—त्रिबार सत्य किया। अब कहो।"

रजिया तन गई। कमर से बाहों तक रामचंद्र देव के बंधन से कुछ मुक्त होकर बोली थी—

"मुझे जगन्नाथजी का दर्शन करा सकेंगे महाराज ? मां कहती थी एक बार जो जगन्नाथ को पा लेता है उसकी सब न पाने की प्यास ही बुझ जाती है। जगन्नाथ रात्रि के अंधकार की तरह अपने में समस्त प्राप्ति-अप्राप्ति को, सारे दुःख, आनंद, हंसी और आंसुओं को एकीभूत करके अपने में लीन कर लेते हैं।··· हाय बिचारी 'जगन्नाथ जगन्नाथ' कहती हुई कब्र तक चली गई पर जगन्नाथ को देख न सकी।"

रामचंद्र देव की बाहों का बंधन अचानक ढीला पड़ गया।

महानदी की अंधकाराच्छन्न जलराशि में तब तक चांद डूब गया था। शब-ए-रात की अंतिम यवनिका की तरह राखसने कोहरे का पर्दा चारों ओर गिरने लगा था।

पथरगढ राजमहल की तनहाइयों में हलकी नींद में सोये रामचंद्र देव के हृदय को किसी रूपकथा की राशि की भांति उस शब-ए-रात की स्मृति ने सम्मोहित किया था। किसी के खड़ाऊं की खट्-खट् सुन उनकी नींद टूट गयी और वे जागकर पलंग पर बैठ गये।

खोर्धा राजवंश के कुल-पुरोहित गोदावरी वर्धन लक्ष्मी परमगुरु महापात्र के अलावा इस घोर दुर्दिन में इस तरह स्पर्धित पदशब्दों से महल के नीरव गांभीर्य को आहत करने का साहस कौन कर सकता है ? यहां तक कि तकीखां के वकील सैयद बेग भी आते हैं तो एक संभ्रांत दूरी पर जूतों को उतार आते हैं।

लक्ष्मी परमगुरु के पैरों की आहट से रामचंद्र देव की अवचेतनता चली गयी थी। सखाहीन, सहायहीन, स्वजन-वर्जित संसार भर में यही उनके लिए अवलंबन और सांत्वना थे। वही एकमात्र व्यक्ति हैं जिन्होंने गंभीर सहानुभूति के साथ रामचंद्र देव का धर्मांतर सहन किया है। वही अकेले समझ रहे हैं कि खोर्धा की शांति और मान रक्षा के लिए ही रामचंद्र देव ने अपने को पतित और अपाङ्क्तेय बनाया है। उसपर लक्ष्मी परमगुरु अगर उन्हें उस दिन तकीखां के बंधन से मुक्त करके नहीं लाये होते तो शायद वे अब भी कटक बारबाटी दुर्ग में उसी तरह पड़े होते।

रामचंद्र देव रजिया के साथ विवाह करके शाही मेहमान बन कर जब बारबाटी मे राजनैतिक बदी की तरह थे तब खोर्धा राज्य के किसी ने भी उनके बारे मे सोचा नही था। जब खोर्धा 'खास' बनने जा रहा था उस समय भी सिंहासन के लिए विभिन्न प्रार्थियो और परिजनो के बीच षड्यंत्र चलता रहा। उस समय रामचद्र देव को मुक्त करा लेना तो दूर की बात रही वे मर गये हैं या जिंदा हैं, यह जानने के लिए भी कटक मे किसी का पैर नही पड़ा था।

उधर हाफिज कादर बेग बनकर बारबाटी दुर्ग मे रामचद्र देव पिंजडे मे बंद पक्षी की तरह थे।

उन्होने समझ लिया था कि अब हमेशा के लिये खोर्धा का रास्ता ही उनके लिए बंद हो गया है।

उस दिन दीवाने खास में तकीखा का दरबार लगा था। सारे वजीर, उमराव, महतासीब, काजी, सिवाननवीस, वाकियानवीस, और फौजदार आदि राज-कर्मचारी तकीखा के सोने की जाजिम से ढके मरमरी चबूतरे के नीचे अपनी-अपनी जगह बैठे हुए थे। मोर पख और खस से बने पखे लेकर खादिम पखा झल रहे थे। शराब के नशे मे चूर तकीखा एक तकिये के सहारे बैठे थे। रामचद्र देव वहा एक कोने मे लाछित से बैठे हुए थे एक वशवद दरबारी की तरह।

पहले-पहले इस तरह बैठना रामचद्र देव को खल रहा था। नर-पशु तकीखा के लिए निर्बोध खुशामद और चापलूसी मे शामिल होना गजपति-ऐतिह्य-स्पर्धित रामचद्र देव के लिए असह्य था। पर वे निरुपाय थे। इसी नराधम की मेहरबानी पर उस समय खोर्धा टिका हुआ था।

तकीखा तुर्क नही था। वह धर्मांतरित नौ-मुसलमान था। फिर सुजाखा के जारज पुत्र के रूप मे उसे सब जानते थे। इसीलिए तकीखा के पास अन्य मुगलों की तरह परिमार्जित रसिकता नही थी। उसके नीरस हृदय मे धर्मांधता ही अधिक थी।

फिर भी रसिकता जताते हुए उस समय तकीखा ने किसी पर व्यग कसा। तकीखा के मुह से किसी ने परिहास व्यजक बातें सुनी नही थी। उसे सुनकर दरबार में जितने लोग बैठे थे सबने ठहाका लगाया, मानो जीवन भर मे एक ने भी इतना रसपूर्ण परिहास न सुना हो।

हाय, क्षमता के दरबार मे दीनता भी ऐश्वर्य बन जाती है। आत्मग्लानि आत्म-श्लाघा मे बदल जाती है। पदलेहन तक को लोग वहां पौरुष मानते हैं…दरबारियों की हर बात मे चापलूसी और हर पल कोरनिश के कायदों को जिसने देखा नहीं, उसके लिए यह समझना असंभव है। रामचद्र देव समझ नहीं पा रहे थे। यही नहीं, अपने हृदय की विरक्ति पर काबू पाना भी उनके लिए असभव प्रतीत होता था।

दरबारियों के निर्बोध हास्य कौतुक मे अपने को शामिल न करके पाषाण प्रतिमा की भांति रामचद्र देव निश्चल बैठे रहे। उनका यह बे-अदब कायदा देख पास बैठे जगत सेठ फतेचद ने धीमे स्वर मे टोका—"हंसिये…हंसिये न राजा बहादुर!"

उसके बाद दरबारी रिवाज सिखाने के लिए उसने एक फारसी शेर सुनाया।

अगर शा रोज रा गोयेद शाब अस्तइन्
बेवायद् गुफ्त् इनक् मा वा परवीन्

राजा अगर दिन को रात कहें तो क्या जवाब देना होगा जानते हैं? कहना होगा—"जी चांद तारे भी नजर आ रहे हैं!"

तब तक दरबारियों का ठहाका बद नहीं हुआ था। तकीखां को सुनाने के लिए 'करामात' 'करामात' चिल्लाने वाले दरबारियो मे होड़-सी लगी हुई थी।

उस दिन इसी ग्लानिकर परिस्थिति में लालबाग लक्ष्मी परमगुरु के खड़ाऊ के शब्द से प्रतिध्वनित हो उठा था। एक खोजा ने आकर के कोरनिश करके आगाह कर दिया कि कोई काफिर दरवेश शहंशाह मेहरबान के तसलीम के लिए आया है।

दरबारियों ने एक साथ पूछा—

"कौन है वह काफिर दरवेश!"

खोजे ने बताया—"कहते हैं खोर्धा राजा के मुल्ला हैं।"

तकीखा से अनुमति लेकर लक्ष्मी परमगुरु उस दिन स्पर्धित कदमों से दीवाने-खास मे प्रविष्ट हुए।

पर लक्ष्मी परमगुरु ने तकीखा को कोरनिश नहीं किया। उनका बलिष्ठ

सुगठित और वपुवत शरीर झुका नही या वे नतमस्तक नही हुए। इस तरह से बे-अदबी से पेश आने की हिम्मत कोई कर सकता है, इसकी कल्पना तक दरबारियो मे किसी ने नही की थी। गजपति पुरुषोत्तम के काची विजय कर प्रत्यावर्त्तन करते समय जिन्होने तत्रबल से गोदावरी नदी मे असमय वन्या की सृष्टि करके काची सेना को गोदावरी अतिक्रमण के लिए आने से रोक लिया था और जिन्हे इसी कारण गोदावरी वर्धन महापात्र की उपाधि मिली थी, उनका मस्तक तो महागौरव जगन्नाथ के अलावा और किसी के आगे झुक नही सकता !

काफिर दरवेश के इस बे-अदब अदाज के लिए क्या सजा बख्शी जाएगी यह जानने के लिए सारे दरबारी उतावले हो रहे थे। लेकिन लक्ष्मी परमगुरु के उन्नत ललाट पर स्पर्धित सिंदूर तिलक, श्मश्रुल मुखमडल मे दीप्तिमान उज्वल नयन, प्रशस्त वक्ष-देश पर शोभित रुद्राक्ष की माला और दक्षिण हस्त मे स्थित दीर्घ त्रिशूल ने जैसे तकीखा को सम्मोहित-सा कर दिया था।

तकीखा ने विनीत स्वर मे निवेदन किया—"तशरीफ रखिये !"

लक्ष्मी परमगुरु गर्व से बोले—"म्लेच्छ के सिंहासन के नीचे किसी साधक का आसन ग्रहण करना शास्त्रो मे निषिद्ध है।"

तब तकीखा ने उनके आने का कारण जानना चाहा और यह भी बताया कि वे जो चाहते हैं उन्हे मजूर है।

लक्ष्मी परमगुरु तकीखा की अर्धनिमीलित आखो पर अपनी अग्निदीप्त सम्मोहक दृष्टि स्थिर करते हुए कठोर स्वर मे बोले—"खोर्धा सिंहासन शून्य पड़ा है, मैं रामचद्र देव को लेने आया हू।"

तकीखा ने सम्मोहित-सा उत्तर दिया—"मजूर है मुझे !"

इसके बाद एक गृहहारे अबोध बालक की बाह पकड़ कर अपरिचित पथ से लौटाने की तरह लक्ष्मी परमगुरु उस दिन रामचद्र देव को तकीखा के व्यूह मे से मुक्त करके ले आए। तकीखा निर्वाक, निस्पद देखता रह गया था। दरबारियों ने एक दूसरे को विस्मित दृष्टि से देखा।

अब वही लक्ष्मी परमगुरु रामचद्र देव के एकमात्र शुभचिंतक और मंत्रदाता हैं।

लक्ष्मी परमगुरु जब प्रकोष्ठ मे प्रविष्ट हुए तब रामचद्र देव ने आसन से उठ

कर उनको पदस्पर्श करके प्रणाम किया। लक्ष्मी परमगुरु ने अभयमुद्रा में हस्त उत्तोलन करके उन्हे आशीर्वाद किया।

रामचद्र देव मलिन स्वर में बोले—"आपने सुना है क्या, मुक्तिमंडप ने निश्चय किया है कि मैं रत्नवेदी के पास से श्रीजगन्नाथ का दर्शन नही कर सकूगा।"

लक्ष्मी परमगुरु हंसते हुए बोले—

"हा मैंने उसकी व्यवस्था भी की है। तुम्हें तो जगन्नाथ वचित नहीं कर रहे हैं। हृदय को जब तक श्मशान नही बना लोगे वहा महाभैरव जागेंगे कैसे ? उन्हें जो भी पकड़ता है वही डूबता है।"

रामचद्र देव असहाय स्वर मे बोले—

"तो मैं भी क्या डूब जाऊगा !"

परमगुरु के अधरों पर रहस्य-विजड़ित हसी फूट पड़ी। वे बोले—"डूबना क्या अब भी बाकी है !"

चतुर्थ परिच्छेद

1

सिंहल-ब्रह्मपुर दधिवामन मंदिर के मेघनाद-प्राचीर का पश्चिम भाग पूरी तरह तोडा जा चुका था।

इधर-उधर स्तूपीकृत पत्थरो से एक प्राचीन भग्नावशेष के भ्रम की सृष्टि हो रही थी। बाहर की दीवार के टूटने के बाद मंदिर के गर्भगृह पर आक्रमण का आरंभ हुआ था।

गाजी सुलतान बेग एक टट्टू घोड़े पर सवार होकर इस आक्रमण का संचालन कर रहा था। सौ के लगभग मजदूर मंदिर पर चोट करते-करते थक गये थे। यह मंदिर इतना मजबूत है, अगर गाजी मियां को पहले से पता होता तो पिपिली फौजदार से तोप ही ले आया होता। पर उसने सोचा था कि एक साथ सौ हाथों से चोट पड़े तो कितनी देर तक मंदिर टिका रह सकता है! मंदिर तोडनेवाले वार करते-करते थक गये थे···और जब धीमे पड जाते तो गाजी मियां पागल-सा चिल्ला उठता—"अल्लाह हो अकबर!"

गाजी मियां के चिल्लाने से मंदिर तोडनेवाले और भी तेजी से वार करने लगते। उन भयंकर आघातो से सिंहल-ब्रह्मपुर गांव का बांस के जंगल से घिरा निस्पंद परिवेश जैसे आर्तनाद कर उठता था। मंदिर से निरापद दूरी पर शताधिक नीरव दर्शक असहाय और भयभीत दृष्टि से मंदिर तोडनेवालो को देख रहे थे तथा मंदिर के किसी परिचित अंश या बाहर प्राचीर पर बनी किसी मूर्ति के टूटते समय आपस मे एक-दूसरे को दिखा रहे थे। मंदिर पर पडने वाला प्रत्येक प्रहार मानो उनके हृदय पर हथौड़े के वार की भांति लग रहा था। उस समय उनके मुख-मंडल की रेखाएं यंत्रणा से कुंचित हो जाती थी। आंखें वाष्पाकुल हो उठती थी। पर उनमे से कोई भी इसका विरोध करने का साहस नही कर रहा था। वहां जितने लोग जमा थे उनमे से किसी ने अगर प्रतिरोध में

उंगुली भी उठायी होती तो गाज़ी मियां सहित उसके साथी वहां से भाग निकले होते, पर एक अकारण भय ने उन्हें पंगु और असहाय बना दिया था।

दलतन्ना पहाड के नीचे स्थित सिहल-ब्रह्मपुर गाव मे गढ़नायक का चबूतरा और दधिवामन मंदिर सारे खोर्धा राज्य मे प्रसिद्ध था। भोइ वंश के प्रथम राजा मुकुद देव के नाम से प्रसिद्ध रामचद्र देव के समय यहा दधिवामन मदिर और चबूतरा बनवाया गया था। इसके नैपथ्य मे ओडिसा के इतिहास का वह विडबित अध्याय—जो अब स्मृति बनकर रह गया है, किसी पराक्रमी महाराजा या प्रतापी सेनापति नही, एक सामान्य किसान और गृहस्थ बिशर महांति के यवन कालापहाड से जगन्नाथ का उद्धार करने के लिये झेले गये क्लेश और साहसिक वीरता की कहानी है—वही इस मदिर के काई जमे प्राचीरों पर अदृश्य शिलालेखों की तरह उत्कीर्ण होकर रह गया है। बिशर महांति के गौड़ देश से जगन्नाथ को लेकर ब्रह्मपुर लौटने के पश्चात् नवकलेवर के समय काफी अन्वेषण के बाद यहां शास्त्रोक्त लक्षण-सपन्न 'दारू' मिला था। उसीघटना की स्मृति में यहां उस जगह यह दधिवामन मंदिर निर्मित हुआ था। अब उसी मंदिर को गाज़ी मिया के धार्मिक पागलपन के कारण तोडा जा रहा है।

गाज़ी सुलतान बेग समीपवर्ती किसी एक गाव में मसजिद बना रहा है। इस मदिर के पत्थरो से मसजिद की नीव डाली जाएगी। गाज़ी सुलतान बेग प्रबल पराक्रमी था। साथ ही मंत्रबल से चुराई गयी चीजों को बरामद करना, चोरो का सही पता लगाना, असाध्य रोगों की चिकित्सा करना, आदि अलौकिक सिद्धियों का अधिकारी भी था। वह इस इलाके में नायब-नाजिम महम्मद तकी-खां के हुक्म से और अल्लाताला की मर्जी से मसजिद बनाने आया था। खोर्धा राजा हाफिज कादरबेग भी विधर्मी बन गये थे। इसलिये गाज़ी मिया के खिलाफ कौन उठ सकता है? देखनेवाले अपनी इच्छा से आह तक नही भर सकते थे।

यह तैलंग मुकुंद हरिचंदन के राजत्व के दसवें अंक 1488 साल की घटना है।

कालापहाड़ की भयावह स्मृति और उसी प्रसंगमे बिशर महांति की निडरता की कहानी आज एक कथा बन गयी है। पर उस समय ओड़िसा के कोने-कोने मे इस कहानी ने प्रलय के आतंक की सृष्टि की थी। उस दिन भी ओड़िसा के अभिशप्त इतिहास मे क्षुद्र स्वार्थ ने नीच विश्वासघात करके देशद्रोह की छुरी उठाई थी। उस दिन राजुखां कालापहाड़ की वीरता और साहस के कारण नही,

सारंगगढ़ के दुर्गपति रामचंद्र भंज के हीन विश्वासघात के कारण ओड़िशा के इतिहास पर दुर्भाग्य की यवनिका गिरी थी? दुःख नहीं होता अगर कालापहाड़ से लड़ते हुए अंतिम गजपति मुकुंद देव ने प्राण गंवाए होते। पर इतिहास की विडंबना से आततायी रामचंद्र देव द्वारा पीठ से वार करने के कारण वे मारे गये थे।

कटक पर अधिकार करने के बाद कालापहाड़ पुरी श्रीक्षेत्र पर केंद्रित होकर रह गया। श्रीमंदिर पर आक्रमण और जगन्नाथ का नाश सुनिश्चित है यह जानकर परीक्षा दिव्यसिंह देव ने पहले से देव विग्रहों को कामी नदी के मार्ग से चिलिका मुहाने पर स्थित छगाली हाथीपारा गांव में 'पाताली' करके रख दिया। पर दान पहारा सिंह से मालूम करके कालापहाड़ ने उस जगह का पता लगा लिया और वहां से विग्रहों को हाथी पर लादकर गौड़ सड़क पर से गंगा तीर हिंदू जगत के शिरमौर को काठ के टुकड़ों की तरह जलाकर राख बना गये।

उस समय ओड़िशा में स्वाधीन राजशक्ति नहीं थी और जनशक्ति पंगु बनकर पड़ी हुई थी। कालापहाड़ का प्रतिरोध करने के लिए या जगन्नाथ का उद्धार करने के लिए उस समय एक भी अभय पुरुष नहीं था। ओड़िशा के घर-घर में केवल एक निष्फल हाय-हाय मची हुई थी। राजुरो कालापहाड़, जगन्नाथ को चमड़े की रस्सी से बांधकर बड़दांड पर ले गया। यह घर-घर में विधवाओं के असहाय रुदन-सी एक निरर्थक बात बनी हुई थी।

पर उस दिन असहाय, अज्ञात, कंकालनुमा शरीर, सूखे मलिन चेहरे का किशोर महांति गौड़ सड़क पर एक क्षुधित भिक्षु की भांति जगन्नाथ पथ का अनुसरण करते हुए मुगल फौज के पीछे-पीछे चल रहा था। पहनावे में लंबा गैरिक कुर्ता था, गले पर मृदंग झूल रहा था, सिर पर नामावली चादर को पगड़ी की भांति बांध दिया गया था। वह प्रसन्न मन से भजन गाते और मृदंग बजाते हुए चल रहा था—

देखो शून्य देही हुए शून्य रे
शून्य मंदिर तो निद्रित पड़ा है
शून्य में लगी है लीला रे…
मन……देख रे!

विशर महांति के प्रति पठान मैनिकों ने ध्यान ही नहीं दिया था। कोई वैष्णव घर लौटता होगा, सोचकर उसके प्रति उनके मन में कौतूहल भी नहीं जागा था।

पर जो विशर महांति को जानते थे वे एक-दूसरे से पूछा करते थे—"क्या विशर महांति पागल हो गया है ?"

जब विशर महांति नहीं गाता था तो पागल की भांति लोगों को सुनाता हुआ बकता जाता था—"यह भी उसी इच्छामय शून्य पुरुष की इच्छा है। अपनी ही इच्छा से चमड़े की रस्सी से अपने को बंधवाया और हाथी की पीठ पर गौड सड़क पर अपने को घसीटवाया। फिर उनकी इच्छा होगी तो वे अपने-आप लौट आयेंगे।"

और फिर पागल की तरह मृदंग बजाकर भजन गाने लगता—

शून्यमय के घर मची है चहल
अनाहत ध्वनि नाद रे
मन सुन रे !

विशर महांति का इस प्रकार मृदंग बजाना और भजन गाना देखकर उस दुःखपूर्ण मुहूर्त्त में भी लोग हंसी नहीं रोक पाते थे और कहते थे—"नहीं, सही है—विशर महांति बिलकुल पागल हो गया है।"

पर ठीक उसके पश्चात् देखने वालों की दृष्टि जगन्नाथ पर जम जाती। उस समय जगन्नाथ चमड़े की रस्सी से बंधे हुए हाथी पर लादे गये थे और गौड सड़क पर चल रहे थे। ओड़िशा के इष्टदेव जगन्नाथ के चरम निर्यातन को देखकर लोग मुगल राजशक्ति का अनुमान लगा सकेंगे इसलिए अत्यंत अशोभनीय ढंग से विग्रहों को हाथी पर से झुलाया गया था।

सड़क के दोनों ओर झुंड बनाकर आबाल वृद्ध-वनिता निरापद दूरी पर रहकर ही उस मर्मांतक दृश्य को देख रहे थे। प्रतिवाद करने की भाषा नहीं थी उनकी न शक्ति थी प्रतिरोध करने की। आंखों में आंसू भी नहीं थे। हृदय को हिला देने वाली आह भर रह गयी थी। उनके हृदय की कोमल तंत्रियों को जैसे कोई लौह मुद्गर से प्रहार करके छिन्न-भिन्न कर रहा था। सड़क के मोड़ पर हाथी के आंखों से ओझल होते समय लोग गरदन उचकाकर देखने लगते…वह शायद श्याम श्रीमुख का अंतिम दर्शन था।

पर बिशर महाति सबको सुनाता हुआ कहता जा रहा था…

"कृष्ण भी तो इसी तरह मथुरा की सड़को पर अक्रूर द्वारा घसीटे नही गये थे क्या ? रामचद्र भी तो वनवासी बने थे।"

गौड पहुचकर गंगातट पर दारु विग्रहो को जलाने के लिए कालापहाड़ ने धूनी जलाई थी। पर यह कैसा विचित्र दारु जिसे आग जला नही पाती। सात ताल ऊपर शिखा उठकर जलने लगी फिर भी विग्रह दग्ध नही हुए। इससे चिढकर कालापहाड ने उन विग्रहो को विवश होकर गगाजल मे बहा दिया।

बिशर महाति उसी सुयोग की प्रतीक्षा मे वहा बैठा था। गगाजी से जगन्नाथ के अर्धदग्ध विग्रह मे से ब्रह्म को ले आकर उसने मृदग के खोल मे रख लिया।

पर उसके बाद थल मार्ग से लौट आने का साहस नही किया उसने। इतने परिश्रम से महाब्रह्म को बिशर महाति चुराकर ले जा रहा है यह जानकर शत्रु सैनिक अगर उससे छीन लें तो ? युगो से प्राप्त दुर्लभ सपदा की भाति उस ब्रह्म को मृदंग खोल मे छिपाकर बिशर महाति ओडिसा लौटने वाले एक 'बोइत' मे कई दिन बाद कही कुजग पहुचा। वहा से दस्यु की भाति से खोर्धा की ओर बढ़ने लगा। दीर्घ समय की अराजकता के बाद पात्रो ने भोइ रामचद्र देव को ओडिसा के नायक के रूप में निर्वाचित किया था और उन्हे सिहासन पर अभिषिक्त कराया था। मानसिंह के अभय से ओडिसा मे फिर शाति विराजमान थी।

रामचद्र देव राजसेवक अवश्य हैं, पर सिंहासन पर प्रभु कहा हैं ? जगन्नाथ का सिंहासन तो शून्य पडा है। ओडिसा में राजत्व कैसे हो ? भग्न परित्यक्त देवालय मे प्रतिध्वनि की तरह ओडिसा की मर्मभूमि मे एक ही विलाप था…जगन्नाथ ! जगन्नाथ !!

बिशर महाति उसी समय जगन्नाथ के महाब्रह्म को लेकर छिपता हुआ खोर्धा पहुंचा था। जगन्नाथ अपनी इच्छा से लौट आये हैं। घर-घर मे उत्सव मनाया जाने लगा। पर यह ऐतिहासिक कर्म सपादन करके भी बिशर महाति के मन मे गर्व या अहंकार नही था। इच्छामय अपनी इच्छा से साधवो के बोइत मे आये। पथ मे कितने किसानो और गृहस्थो के घर खूटियो पर टगे रहकर आये हैं, अपनी ही इच्छा से। बिशर महाति तो निमित्त मात्र है। इसके लिए उसमे पुरस्कार की प्रत्याशा रहेगी तो काठ के मृदग खोल, बोइत, छत और खूटियो को भी तो पुरस्कार मिलना चाहिए। उसके बाद नवकलेवर करके शून्य पड़े रत्नसिंहासन पर देवताओ

की प्रतिष्ठा करने के लिए ओडिसा इस प्रात से लेकर उस प्रात तक आलोड़ित हो उठा। पर काफी अनुसंधान के बाद भी शास्त्रोक्त लक्षण सपन्न दारु नहीं मिले। अत मे अब जहा दधिवामन मदिर बना है, वहा सर्वप्रथम जगन्नाथ के ईषत् कृष्णाभ दारु का सधान मिला। वहा गमनागमन रहित एक प्रातर मे पांच शाखाओं वाला महानीम था। उसी दारु पर शख और चक्र चिह्न उत्कीर्ण हुआ था। वृक्ष के नीचे एक पुरानी बावी थी जो बढ़कर बहुत बड़ी हो गयी थी। प्रतिदिन सुबह उस बाबी मे से एक अतिकाय नाग निकलता और फन उठाये खेलता रहता। इसी जगह जगन्नाथ के लिए दारु प्राप्त हुए थे। अतः उसकी स्मृति मे रामचद्र देव ने ब्रह्मपुर नामक बस्ती बसाई थी और दधिवामन मंदिर का निर्माण किया था। रामचंद्र देव ने बिशर महांति को गढनायक की उपाधि से भूषित करके उस मंदिर का सचालन भार उनको सौंपा था। और मदिर के लिए तीन सौ साठ बीघा भूमि की व्यवस्था की थी। सिंहल-ब्रह्मपुर के चबूतरे और दधिवामन मदिर की यही कहानी है।

उसी दिन से अब तक सिंहल ब्रह्मपुर चबूतरे पर पाच पीढियो ने भोग चढ़ाये हैं। बिशर महांति से लेकर कुज गढ़नायक तक की पाच पीढ़ियों ने इस मदिर का संचालन किया है। आज उसके अतीत के सुदिन अस्तमित हो गये हैं। मुगल नायब्र-नाजिमों के समय से खंडायत गढनायकों को अनेक रूप से सताते हुए, ओड़िसा पाइकों की कमर तोडने के उद्देश्य से लगातार प्रयास चला आ रहा है। ऐसी बस्तियो को घेरकर मुसलमान बस्तिया भी बसाई जाने लगी हैं। पेशे से ही लश्कर की पुरानी पीढ़ी के पठानों को घर-जमीन देकर शातिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए खेती-बाड़ी की व्यवस्था कर दी गयी है। इसके लिए मदिरो की निष्कर भूमि को छीन कर इन सैनिकों में बांटा जा रहा है। इसी तरह सरधापुर, मुकुंदपुर, दिव्यसिंह पुर, बीलगड, काइपदर, रथीपुर, बलरामगढ़ आदि प्रसिद्ध शासन और चौपाड़ियो को घेरकर मुसलमान सिंहल ब्रह्मपुर गाव के पास इसी तरह एक मुसलमान बस्ती बसायी गयी थी। मदिर की बहुत सारी भूमि इससे गढनायक के अधिकार से चली गयी थी। कुज गढ़नायक के समय के उन तीन सौ साठ बीघे में से कुल पचास बीघे भूमि बची थी। मदिर के द्वादश पर्व और अन्य उत्सवों को चलाना कठिन हो गया था। फिर भी कुंज गढ़नायक स्वयं अभुक्त रहकर भी उन उत्सवों को जैसे-तैसे चला रहे थे।

दधिवामन मंदिर का निर्माण 'पीढ रीति' से हुआ था। इस रीति से बने मंदिर के एक अंश पर दूसरे अंश को टिकाया गया-सा लगता है और इसमे कोई सूक्ष्म शिल्पकर्म नही होता। प्रधानत, सूर्यवंशी राजाओं के समय मंदिर निर्माण के लिए इतना उत्साह नही था। कोणार्क मंदिर का निर्माण करके ओडिसा के राजा और शिल्पियो की मंदिर निर्माण की अतृप्त तृषा ही जैसे प्रशमित हो गई थी। सूर्यवंशी राजाओ के युग मे नये मंदिर बनाने के लिए जितने उत्साह की जरूरत होती है उस समय पुराने मंदिरों को विधर्मी आक्रमण से बचाने के लिए उससे अधिक सतर्क रहना पडता था। फिर सिहल-ब्रह्मपुर के दधिवामन मंदिर की तरह जिन जगहो मे राजा या राजपुरुषो ने मंदिर बनवाये थे वहाँ कलात्मक से अधिक व्यावहारिक स्थूलता ही अधिक प्रतिफलित हुई थी। दधिवामन मंदिर का निर्माण भी इसी तरह पीढ रीति से हुआ था। इसके प्राचीरो के जघा, साकर बारंडि, सिकर, सप्तकास आदि पर किसी प्रकार का सूक्ष्म शिल्प नही था। नीव से जो स्तंभ बने, उनकी ऊंचाई लगभग तीस हाथ होगी। स्तंभो के मध्यभाग पर फूल, नृत्यागना और वन-लताओ को खोदने का असफल प्रयास हुआ था। पर धीरे-धीरे उन पर काई जम जाने के कारण वे भी अदृश्य हो गये थे। पीढों पर केवल सिंह, हस्ति, अश्व, मर्कट, वृषभ, मकर और बीच-बीच मे अलस कन्याओ की मूर्तिया उत्कीर्णित थी। श्री से लेकर कलश तक के विभिन्न अशों मे कर्पूरी, डोरी, पत्र-लता, आमलाबेकी आदि पारपरिक रीति से उत्कीर्ण हुए थे। मोटे रूप मे कहा जाए तो यह मंदिर स्थापत्य और भास्कर्य की दृष्टि से उल्लेखनीय नही था। मंदिर विमान से सयुक्त 'जगमोहन' बना था। मंदिर निर्मित होने के वर्षों बाद कुज गडनायक की प्रपितामही ने इस मंदिर मे नाट मंदिर बनवाने के लिए नीव डाली थी। पर वह कार्य असमाप्त रह गया था। आज भी जगमोहन मंदिर तक जाते समय उसी नीव से होकर जाना पडता है। मंदिर के चारो ओर विभिन्न स्थानो मे देव-देवियो को स्थापित करने के लिये आले बनाये गये थे। उन आलो मे काले संगमरमर से बनी अष्ट-भुजा दुर्गा, गणेश, कार्तिकेय, ककाली, वराह आदि देव-देवियो की प्रतिमाएं सिंदूर के प्रलेप के नीचे ढक गई हैं। ये दधिवामन के पार्श्व देव-देविया हैं। पर अनभ्यस्त आखो को भी पता चल जाएगा कि अन्य स्थानो से सग्रहीत कर यहा उन मूर्तियो को स्थापित किया गया है। क्योंकि उन मूर्तियों की सूक्ष्मता और कलात्मकता मंदिर के अन्य किसी भी अश मे नही

थी। मंदिर का प्राचीर प्रशस्त था। इसकी उत्तर दिशा मे एक सुरक्षित पुष्प उद्यान था जो अब भी है। स्थानीय अधिवासी उसी जगह को जगन्नाथवल्लभ कहते हैं। इसी बगीचे से फूल लेकर अपने हाथों से माला गूथकर दधिवामन की पूजा के समय पहुंचाना कुंज गढनायक का नित्य-प्रति का कार्य-सा बन गया था। दक्षिण ओर एक पुष्करिणी थी। उसी के समीप भंडारघर, रंधनशाला आदि जीर्ण अवस्था मे खड़े थे। कुंज गड़नायक के समय मे चबूतरे के भाग्य विपर्यय के साथ इस देवालय की अवस्था भी जराग्रस्त हो गई थी। काल के घात-प्रतिघातो मे कुंज गढनायक का शीर्ण और दुर्बल शरीर धनुष की तरह वक्र हो गया था, उसी भांति मंदिर भी गुल्माच्छादित और शैवालाच्छन्न हो गया था और उस पर जरा के चिह्न स्पष्ट हो गये थे। पर विश्वास और भक्ति के महामेरु की भांति वह मंदिर एक अचलायतन की तरह खड़ा था।

चबूतरे की अवस्था भी वैसी ही थी। मिट्टी से बनी, हाथी की तरह ऊंची दीवार कई जगह ढह गयी थी। सात चौक का घर आधे से अधिक अवहेला और और देखभाल के अभाव से ढह गया था। नहाने का तालाब दल से भर गया था और बरसो पुराना कुआ-सा लग रहा था। उसी तालाब के चारो ओर के बगीचे अनगिनत पेड़-पौधो से भरे अरण्य बन गये थे। रथ खींचने के लिये दो गयद चबूतरे मे बधे रहते थे। पर अब देवता और गढनायक दोनों अन्न-कष्ट से पीड़ित थे। दोनो हाथियों के लिये खाने की व्यवस्था कैसे हो? खाद्य के अभाव में मानो उनका अस्थि-पंजर ही शेष रह गया था। फिर भी रथ-यात्रा के समय उन हाथियो को जरीदार आवरण और आभूषणो से सज्जित करके निकाला जाता था। पर रथ रास्ते मे कही भी रुकता नही था इसलिये उन हाथियों को उसे खीचना नही पड़ता था।

कुंज गढ़नायक पुत्रहीन थे। एकमात्र पुत्री दुर्गेश्वरी के अलावा अन्य किसी प्रकार का संसार-बंधन नही था। यमुना-झाडपड़ा वैरीशत्प के घर दुर्गेश्वरी आडंबर के साथ ब्याही गयी थी। पर विवाह हुए एक वर्ष बीता नही था और दुर्गेश्वरी चूड़िया उतारकर पिता के घर वापस आ गयी। एक ही दुलारी पुत्री का आकुल क्रंदन सुनकर आतुर हो कुंज गढनायक दधिवामन मंदिर मे तीन दिन और तीन रात तक भूखे-प्यासे पड़े रहे और उनका हृदय कहता रहा— "अंत मे आपने बिशर महांति का ही वंश नाश कर दिया, जगन्नाथ!" वह

प्रार्थना नही थी, वह याचना नही थी, एक अभिमान भरा अभियोग ही था—"विशर महाति या कोई भी नही रखा आपने जो परलोक के लिए एक बूद जल दे सके ! विशर महाति ने आपकी मान रखा क्यों थी न ?" अत मे तीसरी रात कुज गडनायक को स्वप्नादेश मिला था। स्वप्न मे गडनायक के सामने स्वय दारुमूर्ति आविर्भूत हुए और बोले—"मुझ पर जो आश्रित होता है वह मान ताल जल के नीचे डूबता है। तुम तो डूब चुके हो और क्षोभ किस लिये ! जाओ अपने चबूतरे को लौट जाओ।"

इसके बाद सब दु.ख-शोक भूलकर कुज गडनायक लौट आये। पर उसके बाद वे गूगे बन गये। कान के पास वज्रपात होने पर भी उन्हे सुनाई नही देता। दुर्गेश्वरी का हृदय दहला देनेवाला रुदन भी उनके कानो मे नही पडता था। बहुत पहले ही उनकी पत्नी परलोक सिधार चुकी थी। दधिवामन के लिये मालायें गूंथने और मदिर मे झाड़ू लगाने के सिवाय कुज गडनायक का और कोई काम नही था। उनके शोकमलिन नेत्र शिशु की आखो की तरह उज्ज्वल और निर्मल बन गये थे। प्रभात के आद्य अरुण आलोक की भाति उनमे कालिमाहीन आनद का स्पर्श था। चेहरे पर की कुचित रेखायें भी कोमल लग रही थी। कुज गडनायक पूरी तरह से शोक-सताप हीन बन गये थे।

अब दधिवामन मदिर के प्राचीर पर पड रहे साबल और हथौड़ी के प्रहार से उत्पन्न शब्द सारे सिहल-ब्रह्मपुर के शात, नीरव परिवेश मे प्रतिध्वनित होते समय न सुन सकने के कारण शायद कुज गडनायक के मन मे उसकी कोई प्रतिक्रिया नही थी। चेहरे पर ग्लानि का क्षीणतम स्पर्श तक नही था उनका प्रियतम मंदिर टुकड़े-टुकडे होकर गिरता जा रहा था। और उन्हे पता ही नही चल रहा था। वे वधिरता की अतल प्रशाति मे निमज्जित हो गये थे। अन्य दिनो की तरह वे चबूतरे पर बैठे महाप्रभु के लिये दवना फूलो की माला बना रहे थे।

2

पश्चिम आकाश मे सूर्य देव अस्त होते जा रहे हैं। मदिर तोड़नेवाले मदिर

पर प्रहार करते-करते थक गये हैं। मंदिर की दक्षिण-पश्चिम दिशा में जहा कर्पूरी के पास पडी दरार, जो साप की भांति वक्ररेखा से नीचे तक पसर आयी थी, उस पर बारबार प्रहारों के कारण दो-तीन पत्थर निकल गये थे। मंदिर मे आश्रित शताधिक कबूतर प्रहार की ध्वनि से भयभीत हो उड़कर नरेंद्र पुष्करिणी, गुंबद, मदिर या दूरस्थ खेत अथवा प्रातर पर चक्कर काटकर फिर उड़कर लौट आते और दल बाधकर मदिर शिखर पर बैठ जाते थे। उनमें शायद यह विश्वास और दभ लौट रहा था कि लाख आघातो से भी भक्ति और विश्वास का यह अचलायतन टूटेगा नही। कबूतरों के वक्पकम् स्वर मे मंदिर तोड़ने-वालो के तुच्छ प्रयास के प्रति मानो उपहास भरा था। मदिर के पास दो बूढे वृक्षो के बीच तंद्रा से सोयी पड़ी पंकिल चदन पुष्करिणी पर दो मछरंगा पक्षी उसके कृष्णाभ जल को शायद नींद से जगाने की चेष्टा मे चक्कर लगाते हुए उड रहे थे। मंदिर तोड़नेवाले जब प्राचीर को तोड़ न सके तो उन्होंने पार्श्व देवताओ को तोड़ना आरभ कर दिया। अष्टभुजा दुर्गा की चार भुजाए टूटकर गिर पड़ी। गणेशजी का लंबोदर कई जगह विक्षत हो गया और सूड़ भी टूट गयी। वराह का उत्थित पैर टूटकर गिर पड़ा।

उस समय मंदिर मे संध्या-पूजा होनी चाहिए। मदिर तोडने वालों के आक्रमण के बावजूद सिंहद्वार बंद करके प्रभात पूजादि जैसे-तैसे सपादित हुई थी। पर संध्या समय मदिर मे प्रवेश का सेवकों में साहस नही हुआ। वे भी देखने वालो के साथ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो खड़े रहे और शून्यदृष्टि से मंदिर तोड़े जाने का निष्ठुर दृश्य देखते रहे।

गाजी सुलतान बेग टट्टू पर से चिल्लाता जा रहा था—"जोर से मारो···और जोर से···अल्लाह हो अकबर !"

टट्टू पर बैठे गाजी मियां की भयंकर मूर्ति को लोग भयभीत आंखों से देख रहे थे। गाजी मियां एक काला चोगा गले से पैर तक डाले साक्षात् यम-सा दीख रहा था। गले मे काले, नीले, लाल पत्थरों से बनी मालाएं झूल रही थी, और शाम की किरणो से चमक रही थी। सिर पर बाल गुच्छो मे बधे सापों की तरह लटक रहे थे। उसकी कमरपट्टी के साथ बंधी एक तलवार झूल रही थी।

थके-मादे लश्कर गाजी मिया का चीत्कार सुनकर पल-भर के लिए तेजी से वार करने लगते थे। सारे दिन शाबल मारने पर भी मदिर को अक्षत खड़ा देख

गाज़ी मिया के सिर पर खून चढ रहा था। मदिर के ऊपर चढकर शिखर के पास से तोड़ना शुरू करने की सलाह देते हुए वह चिल्लाने लगा। गाज़ी का चीत्कार सुन जहाबाजपुर का फकीरा मियां मदिर के छोटे-छोटे आलो और मुडेरो पर पैर धरते हुए चढने की चेष्टा करने लगा। उसे देखकर और भी एक दो व्यक्ति चढने की चेष्टा करने लगे। पर मदिर की दीवार पर जमी हुई काई के कारण पैर फिसल रहा था और वे चढ़ ही नही पाते थे।

इसी बीच जैसे-तैसे फकीरा मिया मुडेरो पर पैर धरते हुए चढ गया। उसे देख खुशी से गाज़ी मिया 'शाबाश···शाबाश' रटने लगा था।

फकीरा मिया मदिर के कर्पूरी पर लगे कलश पर आखें गढाये हुए था।

शिखर के आवलाबेकी से कर्पूरी···और उसके बाद कलश···असीम, अनत निराकार के पादपद्मो मे विश्वासघन हृदय की आकुल प्रार्थना की भाति एक सुकुमार सरलता से ऊपर को उठेहुए थे। कलश पर नील चक्र और सुदर्शन पताका इतिहास की शत-शत दुर्गति और विलय मे जैसे इस अपराजेय जाति के स्पर्धित विजयकेतु-सा मंद-मद पवन के झोको से आनदित हो तरगायित भगिमा मे नृत्य-रत था। पल-भर मे ही वह कलश और नीलचक्र टूटकर नीचे गिर पड़ेगा, इसकी कल्पना मात्र से देखने वालो को शत बर्छों से विद्ध होने की पीडा हो रही थी।

पहले कलश ही को तोडा जाए तो मदिर तोड़ना सहज हो जाएगा। मदिर तोड़ने वाले इसलिए मदिर पर चढ़कर कलश की ओर बढे थे। काई जमे मुडेरो पर पैरो की आहट सुन कबूतर अपने आश्रयस्थल से उड़कर मदिर के चारो ओर चक्कर काट रहे थे, पर सध्या की दीर्घायत छाया को अनिश्चितता मे उड़ते हुए क्लात होकर फिर मदिर पर के अपने निश्चित स्थल को लौट रहे थे।

दधिनउति पर बने त्रिकोणकार बेलों पर पैर टिकाते हुए फकीरा मिया जब लगूर की तरह कर्पूरी पर चढने लगा तब देखने वाले यही सोचने लगे कि वह चढ़ ही जाएगा। सचमुच अगर वह कुदाल मारकर कलश तोड़ दे तो ? तो पल-भर मे मदिर ढह कर नीचे आ जाएगा, इसमे सदेह नही था।

फकीरा मियां के अतिम आक्रमण को नीचे देखने वाले किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सास रोके देख रहे थे। गाज़ी मिया भी उत्तेजना से घोड़े पर चढ़ा 'अल्ला हो अकबर' चिल्लाना भूल गया था। दर्शकों की शून्यदृष्टि में भय और उद्वेग आतंक की छाया घनीभूत होती जा रही थी।

पर उन तोडने वालो के विरुद्ध उगली उठाने भर का साहस किसी मे नही था। अतीत के अनेक अत्याचार और प्रपीड़नों को सहन करके जैसे उनका मनोबल ही *असख्य देवमूर्तियो और मदिरों की तरह ढह गया था।*

साथ ही, फकीरा मिया या उसके साथी, जिन्होने कुदाल और हथौडी लेकर मदिर को घेर रखा था, कभी भी धर्म के नाम से पाखड बन सकते हैं, यह भावना वहा खडे दर्शको की दूरतम कल्पना मे भी नही थी। पिछली दो तीन पीढियों से ये मदिर तोडने वाले हिंदुओं के साथ-साथ रहकर इस भूमि, इसकी जनश्रुति, प्रवाद, परपरा, विश्वास और परिवेश के साथ घुलमिल गये थे। पहनावे से हिंदुओ से अवश्य ये कुछ भिन्न लगते थे, पर हृदय से ये धर्मोत्तर मनुष्य बन गये थे। जगन्नाथ का विनाश करने के लिए यहा कुदाल और हथौडी लेकर चीटियो की तरह उन्होंने मदिर को घेर लिया था। परतु उनमे से भी अनजान मे न जाने कितने जगन्नाथ के भक्त बन चुके थे। मुसलमान होते हुए भी सालवेग नमस्य थे। घर-घर मे प्रत्येक आनदमन से "आहे नीलशइल प्रवल मत्त वारण···" गाते थे इस सिंहल-ब्रह्मपुर गाव में भी। यवन हरिदास भी तो उस समय वदनीय थे।

अच्युतानद गुसाईं की 'शून्य सहिता' का पद 'तुर्की भजे अलफ्, हिंदू भजे अलख' केवल पोथियों मे बंद न था, वह प्रत्येक ओड़िया की चित्तभूमि मे प्रसारित हो चुका था। मुसलमानों के अल्लाह जिस तरह निराकार हैं, जगन्नाथ भी उसी तरह अलख-निरंजन हैं। सब अलख की लीलाएं हैं। जगन्नाथ-अल्लाह एक हैं। इस तरह की समन्वय-भावना ने धर्मांधता से ऊपर उठकर हिंदू-मुसलमान सब को एक बना दिया था। ओड़िसा किसी समय भी मताधता, धर्मांधता और अनुदारता की भूमि नही रहा।

नायब-नाजिम की राजधानी कटक या अन्य स्थानों पर घटने वाली धार्मिक निर्यातना और धर्म के नाम पर अत्याचारो की हृदय हिलाने वाली कहानिया सुनने को मिलती थी, पर बास और केवड़े के जंगलों से परिपूर्ण, शस्य श्यामल क्षेत्र और प्रातर परिवेष्ठित शात पल्लियों को इन कहानियो ने प्रभावित नही किया था।

सब ठीक था पर जिस दिन से गाज़ी मियां पैगंबर का पूत कहलाकर और टट्टू पर सवार होकर इस इलाके मे आया, मदरसा खोला और मदरसे को चलाने के बाद उसकी एक मसजिद खड़ी करने की धार्मिक इच्छा हुई थी और जिसके लिए उसे नायब-नाजिम तकीखा का समर्थन और पिपिली फौजदार से सहायता मिली थी,

उसी दिन से लगा जैसे सब कुछ बदलता जा रहा है। पक्कि तालाब, और श्यामल बांस के झाडों की तरह उन मुसलमानो की ममताभरी आखें अचानक कठोर और निष्प्राण बन गयी। इसी फकीरा मियां ने जो अब कलश के पास तक चढ गया है हर साल चदनयात्रा के समय अग्निक्रीडा मे शामिल होकर वाहवाही लूटी है। दधिवामनजी की चदनयात्रा के समय फकीरा मिया का बनाया हुआ पटाखा विशेष आकर्षण बन जाता था। मदिर शिखर पर चढ़कर ओडिआ मिश्रित उर्दू मे वह चिल्ला रहा था—"आवे नीचे खडा होके क्या देखताम ! सावेली एकठो ले आम !" फकीरा मिया की आवाज सुन फयाज मिया भी एक सावल लेकर ऊपर चढने की कोशिश करने लगा।

उस समय कौन कहा था कोई नही समझ सका। अकाल वज्रपात की तरह कही से एक तीर आया और फकीरा मिया के पजरो को वेधकर चला गया। जो पल-भर पहले मदिर के शिखर पर से सावल के लिए चिल्ला रहा था, एक कटे पेड की तरह नीचे गिर पड़ा। तब तक गाजी मिया भी टट्टू पर से लहूलुहान हो गिर पडा था। न जाने कैसे क्या हुआ कि सब-कुछ पल-भर मे बदल गया। चारो ओर से वर्षा की तरह उन पर तीर बरस रहे थे। और साथ-साथ 'जय जगन्नाथ' का गभीर उद्दाम घोष निनादित हो रहा था। जितने दर्शक थे मानो सबका जड़त्व दूर हो गया था, वे भी स्वर मिलाकर वज्र गभीर कठ से 'जय जगन्नाथ' नाद से गगन-पवन मुखरित करने लगे।

पल-भर मे तोडने वालो के भूलुठित शरीर और पत्थरो के ढेर से मदिर श्मशान-सा लग रहा था। इस महाश्मशान भूमि मे मदिर शिखर पर उडने वाले कबूतर ही जीवन की सूचना दे रहे थे। कुज गढनायक अपने चबूतरे के शब्दहीन, तरगहीन परिवेश को छोड न जाने कब वहा उपस्थित हो गये थे। गरुड स्तभ के पास वे आख मूदे खड़े थे। उनके झुर्रीदार गालो पर से अश्रुधार बह रही थी। दुर्गेश्वरी को विधवा होकर घर लौटने के बाद उन्हें किसी ने रोते हुए देखा ही न था।

अनहोनी की भाति घुड़सवार आये और अकस्मात आक्रमण कर जिन्होने मदिर को बचा लिया था, वे घोड़ा दौड़ाते पश्चिम दिग्वलय मे सूर्यास्त के साथ खो गये।

उस दिन रात को घर-घर मे वही चर्चा हो रही थी—विशर महाति की मान-रक्षा के लिए स्वय जगन्नाथ श्वेत अश्व पर और बलराम कृष्ण अश्व पर आये

थे ! नरि पढ़िआरी के बरामदे पर भाग पीसे जाते समय भी यही बात चल रही थी। पढ़िआरी भाग घोटते हुए बता रहे थे कि उन्होंने अपनी आखो से देखा है शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी स्वयं जगन्नाथ को। जगु पट्टनायक चिलम दूसरे को थमाते हुए बोले—"तब कितनी अफीम पड़ चुकी थी पढ़िआरीजी ?···" यह सुन नरि पढ़िआरी गुस्से से लाल हो और पीसना बंद करके उठ खड़े हुए। वे चिल्लाते हुए बोले—"सुनो, यह गजेडी मुझे अफीमची कहता है। अरे हो बैकुंठ, तू ही बता, क्या तूने 'काले ठाकुर' को घोडे पर नही देखा है ?" वहा बैकुठ मेकाप कब से स्थिर दृष्टि मे बैठा था। कब भाग पिस जाए, तो पी जाए। आज एक घूट भी तो अभी तक नही मिली है। गांव में घटी घटना के कारण जिससे सिर मे पीड़ा होने लगी थी। उससे सहा नही जा रहा था। उसने बताया—"अरे बात तोवही है। सच कहने मे डर किस बात का ?" पर किसी-किसी ने यह भी कहा कि खोर्धा के राजा रामचद्र देव, जो हाफिज कादर बेग बने हैं, वे ही घुड़सवारों में सबके पीछे रहकर मदिर तोड़ने वालों पर तीरो की वर्षा कर रहे थे।

नरि पढ़िआरी चिल्लाये—"बंद करो हो···ये सारी बेतुकी बातें···रामचद्र देव, म्लेच्छ यवन। उसके नाम का उच्चारण तक महापाप···वह क्यो आयेगा ! स्वयं जगन्नाथ और बलभद्र दोनो भाई मान-उद्धार करने पधारे थे···नही तो बात ही समाप्त हो गई थी···!"

3

चिकाकोल से कटक तक की सड़क के दोनो ओर के अनेक सराय घरो मे बालुगाव की एक सराय उस समय बहुत प्रसिद्ध थी। धीरे-धीरे अपनी चर्याकारिणी सरदेई के नाम से प्रसिद्ध होकर वह लोगो में सरदेई सराय कहलाने लगी थी। उस रास्ते से जाने वाली व्यापारी, लश्कर, फौजदार, सिपाही, राही, तीर्थयात्री सब यही ठहरना पसद करते थे।

सड़क से पुकारने भर के फासले पर सरदेई सराय थी, दक्षिणमुखी तीन-चार

कमरों का कच्चा मकान। सराय के पीछे चिलिका का वालू प्रातर था, झाऊ और केवड़े का जंगल था। सामने चिकाकोल-कटक सड़क अजगर सी टेढ़ी-मेढ़ी होकर मोड़ पार करते हुए एक जगह खो गयी-सी लगती थी। सराय से कुछ दूरी पर सड़क के किनारे एक पोखरी थी। उसी से सटकर एक बड़ा बरगद था। इस बरगद का नाम था—"हांडि भंगावट।"

सरदेई सराय को न जानने वाला अगर किसी सराय का पता पूछता था तो लगभग यही सुनता था···"वह जो हाडिभगाबट है ना, उसी-की बायी ओर जो भी एक सराय है—वही है सरदेई सराय !"

चिलिका की देवी कालिजाई के दर्शन करने जो यात्री दिन के समय आते हैं वे लौटते समय इसी बरगद के नीचे विश्राम करते हैं, इसलिए बरगद के नीचे इधर-उधर चूल्हे बनाये गये हैं, राख पड़ी हुई है, अधजली लकड़ी, कोयले और टूटी हड़िया भी पड़ी हैं। चिलिका जब भरी हुई होती है और लौटते-लौटते देर हो जाती है तो यात्री आकर सरदेई सराय मे ठहर जाते हैं। सरदेई के आत्मीय व्यवहार के कारण अन्य सरायो की अपेक्षा इस सराय को लोग ज्यादा पसद करते थे। चाहे कोई एक रात के लिए ही क्यो न ठहरा हो, वयस्कों को बाबा, चाचा, मामा, मौसा तथा हमउम्रो को भाई और अपने से छोटे यात्रियो को बेटे, बबुआ आदि संबोधनो से सरदेई सपर्क जोड़ लेती थी और उन्हे अपना बना लेती थी। इसी तरह महिलाओ के प्रति भी वही वर्त्ताव करती थी। उनकी रसोई के लिए सरदेई पोखरी से पानी ला देती थी, बरतन लाकर देती थी। चावल, सब्जी, हाडी लकड़ी तो मिल ही जाती थी, जो पैसो से खरीदी जा सकती हैं। साथ ही कपट-हीन ममता और स्नेह भी वह देती थी जिसकी कोई कीमत नही होती। सराय और सामान का किराया भी दूसरी सरायों से कम लेती थी। एक रात के लिए वह एक कौड़ी लेती थी। उसी एक कौडी मे बरतन, पानी और सरदेई की ममताभरी सेवा भी मिलती। इसलिए सब सरदेई सराय की प्रशसा करते थे।

कालिजाई यात्रियों के अलावा एक और तरह के ग्राहक भी कभी-कभार आ जुटते थे। एक रात के लिए एक कौडी क्यो, पूरी आठ कौड़ी यानी उस समय प्रचलित एक मुगल रुपया तक देने में वे कुंठित नही होते। उनकी आखें लाल होती··· धड़कन और सास तेज होती। उन्हे दूर से देखकर ही सरदेई पहचान लेती थी और अभिमान भरे स्वर से आमन्त्रित भी करती थी। उनमे कई प्रकार के लोग

होते थे, व्यापारी, साहूकार, नाव चलाने वालों से लेकर सिपाही तक। सब घोड़े पर अकेले आते। वहां घोड़ों के लिए भी आदर-सत्कार में कमी नहीं होती।

जान-पहचान के किसी ग्राहक को देखने मे सरदेई *अभिमान से कहती*—"अरे इस असमय कैसे आना हुआ? राह भूलकर चले आये क्या?...रात भर की सराय भी कब तक याद रहेगी?"...आदि। सरदेई का इस तरह अभिमान भरा स्वागत *उनकी धड़कन को और तेज कर देता।*

उन लोगों की खातिरदारी करने के लिए उसके पास जगुनि नायक नाम का एक नौकर है। सराय के पीछे के बालू के टीले की आड़ मे जो भट्ठी है वहां से वह शराब ले आता है और सराय ही में अलग से बेचता है। उसने अलग एक चूल्हा बनाया है जिसमे उनके लिए खास पकवान बनता है। उससे जो भी पैसे मिलते हैं वह जगुनि रख लेता है। सरदेई उन्हे छूती तक नही।

शराब पी-पीकर जब आखें प्याज की पंखुड़ियो की तरह लाल हो जाती हैं, मुंह मे से झाग निकल आता है, सांस तेज हो जाती है। सरदेई उसी समय बायी बाह और कमर की बंधनि मे गगरी लिए ह्रांडिभंगावट के पास की पोखरी से पानी लाने निकल पड़ती। कभी-कभार अतिथियो मे से कोई उसके पीछे-पीछे चल पड़ता, किसी दुर्लभ वाछित वस्तु के संधान मे। सरदेई बिना देखे भी पैरों की आहट से पता लगा लेती है और सहानुभूति भरे स्वर में बुलाने लगती है—"जगुनि, अरे ओ जगुनि...!"

केवड़े के झाड़ों की आड़ मे से निकलकर जगुनि अपने बाहर निकले टेढ़े-मेढ़े दांतो को दिखाकर उधर ही से चिल्लाने लगता है—"मुझे बुलाती हो देई...।"

जगुनि की उस भीमकाय मूर्त्ति को देख, आने वाला आदमी और आगे बढने का साहस ही नहीं करता। वहां से सराय को लौट आता। यदि कोई जगुनि के आविर्भाव के प्रति भ्रूक्षेप किए बिना अपनी भुजाओं के भरोसे आगे बढ जाता है तो देर तक केवड़े की कंटक शय्या मे पड़े रहने के बाद समझ जाता है कि सरदेई फूल नहीं, काटा है, कांटा, केवल काटा!

इस तरह के आग्रह अगर एक से अधिक आ जाते हैं तो सरदेई जगुनि को नही बुलाती। हर एक को देखकर अलग-अलग इस तरह हंसती है कि प्रत्येक यही सोचता है जैसे सरदेई की सारी प्रतीक्षा उसी के लिए है।

उसके बाद सराय में उस दिवास्वप्न की सारी उत्तेजना के बीच, खाली मद्य-

पात्रों की संख्या असंख्य हो जाने के बाद उनमे लड़ाई इतनी बढ़ जाती है कि शांति रक्षा के लिए जगुनि को आना पडता है।

सरदेई और जगुनि !

रसिकजन परिहास से कहते—"फूल और काटा। उगली मे काटा चुभाओ तो भी फूल तोडा नही जाता।"

उस दिन सूर्योतप्त निर्जन मध्याह्न मे चिलिका तट की उस परित्यक्त उजड़ी हुई वस्ती मे पलातक रामचद्र देव जलदानी सरदेई की मुरझाई नीलकुइ-सी आखो की वेदना-विधुर जिस दृष्टि को देख सम्मोहित हो गये थे, अब भी वह दृष्टि कोमल थी...मलिन नही हुई थी। उसकी श्यामल देहलता जीवन निदाघ से अवश्य कुछ मुरझा गई थी, पर उसमे से सुकुमार श्यामलिमा निष्प्रभ नही हुई थी। वही सरदेई इस सरदेई सराय की सबसे बडी विशेषता थी।

चिलिका तट की उस उजडी वस्ती मे सरदेई की उस उजडे हुए संसार मे उसकी अंधी, बहरी पगली सास ही थी। उसके मर जाने के बाद उस वस्ती के साथ उसका जो आत्मीय बंधन था वह भी टूट गया। उस दिन शाति की सास लेकर जीवन के साथ लड़ने के लिए वह अकेली ही चल पडी। आकर कब वह बालूगाव पहुंची और जगुनि की सराय मे आश्रय की प्रार्थना करने लगी थी, अब वह सब ठीक से याद नही। उस दिन ससार त्यागी जगुनि ने भी किस तरह उसे देखते ही न मालूम किस रहस्यमय खिंचाव के कारण उसे 'देई' कहकर पुकारा था वह भी अच्छी तरह याद नही। पर उस आधी भूली हुई कहानी को कभी-कभी, जब सराय मे कोई यात्री नही होता तब किसी एकात मुहूर्त मे उस सराय के बरामदे मे, या हाडिमगा तट के नीचे या पोखरी के किनारे बैठी-बैठी सरदेई याद करने लगती है।...पर समझती कुछ भी नही !

जगुनि भी कहा से कब और कैसे तूफान मे उडता-सा आकर बालूगाव मे पडा था, कुछ याद नही कर पाता। उसका इतिहास भी उसके लिए अस्पष्ट हो गया है।

"जगुनि रे, किस गाव मे था तेरा घर, कुछ याद है तुझे ?"—सरदेई कभी-कभी पूछ बैठती। तो जगुनी की आखो के आगे चिलिका के नमकीन जल की तरह विस्मृति का नील-विस्तार ही तैर जाता।

उसी तरह जगुनी भी कभी-कभी पूछ लेता—सरदेई से उसके बारे में जानना

चाहता। उस समय सरदेई की आंखों के आगे चिलिका के अतल जल पर तैरने वाली एक अकेली नाव के चित्र की भांति कुछ तैर जाता। और दोनों में एक-दूसरे के बीच अपने-अपने जीवन को लेकर प्रश्नो का अनुत्तरित समाधान हो जाता है। सरदेई गहरी सांस लेती है। पर जगुनि अपने पृथुल शरीर को सरदेई की गोद में लुढकाकर एक लाडले बच्चे की तरह कहता—"उठ देई चल अब तेज भूख लगी है ! आज और कोई नही आयेगा !"

सरदेई उस समय सामने की सडक को देखती हुई अपने मे खोयी-सी रहती, जैसे जगुनि की बातें उसने सुनी ही न हों। तो जगुनि उसकी गोद मे आदर से सिर पटकता कहता—"सुनती नही हो क्या ? चल उठ, भूख लगी है !"

सरदेई उसके बालो को सहलाकर आदर से कहती है—"क्यो उछलते हो..." और वह झट मे याद कर कहने लगती है—"अरे देख तेरे लिए एक मछली डालकर आयी थी आग मे, अरे भूल गई ! अब तक तो जलकर कोयला बन गयी होगी वह।"

सरदेई और जगुनि दो सूखे हुए पत्तो के समान थे। जीवन की वैशाखी झंझा में उड़ते हुए आकर बालूगाव की उस सराय मे टिक गये थे।

पूष की धूप, उस दिन सालेरी पहाड के उस ओर लुढक गई थी या तैरते धूमिल बादलो की ओट में छिप गयी थी, पता नही चल रहा था। उस दिन पूष की सुनहरी धूप धान के खेतों पर नही लहरा रही थी, और न ही आलस्यमय आंखो में तंद्रा भर रही थी। जंगल के समीप शस्य-श्यामल क्षेत्रों मे सुनहरे फूलो का मेला लगता है। तोता, जंगली कबूतर और अन्य पक्षियों की काकलि से परिपूर्ण वह शस्यभूमि संगीतमुखर हो जाती है। सबको एक पुण्यतिथि की प्रतीक्षा रहती है। उस दिन के आते ही स्त्री-पुरुषों के दल के दल कटाई आरंभ कर देते हैं।

पर इस साल वह सब कुछ नही था। सारे खेत सूने पड़े थे। टिकाली रघुनाथ-पुर को जिस दिन से चिकाकोल सूबे के साथ शामिल कर लिया गया था, उस दिन से इस सीमांत क्षेत्र मे मुगल लश्कर, सिपाही, अमीन और इजारेदारों के अत्याचार बढ गये थे। खोर्धा राज्य की सीमा के अंदर यह इलाका था, फिर भी मुगल लश्कर और इजारेदारों की लूट को रोकने के लिए शासकों मे शक्ति और सबल नही था। शस्यहीन प्रांतरो के बीच इधर-उधर चित्र-से प्रतीत होने वाले गांव उजड़े पड़े थे। खेतों में न धान था, न काटने वाले थे और न पक्षियो का दल

था। खोर्धा राज्य मे फिर सैनिक तैयारियां चलने लगी थी। निष्कर और तनख्वाह पाने वाले पाइक खोर्धा, रथीपुर, गजागड़, शिशुपालगड़ आदि घाटियों मे छावनी बनाए हुये थे। उस समय खेती कौन करता! अभी से एक 'भरण' धान की कीमत बीस 'काहाण' हो गई थी। खेतों मे अभी से गिद्ध दुर्भिक्ष के डैने पसारकर उड़ने लग गए थे।

चिलिका की ओर से साय-साय करती शीतल हवा हृदय को हिलाती हुई समीप के जगल में छिपी जा रही थी। सड़क पर एक भी पथिक यात्री घुड़सवार दिखाई नही पड़ता। फिर से लड़ाई होगी यह अफवाह जबसे फैली है, साधारण जीवन-प्रवाह ही जैसे निष्पदित और स्तिमित हो गया है। लोग अपने घर-बार छोड़कर रजवाड़ो मे आ बसने लगे हैं। गाय भैंसें मालिक-विहीन होकर इधर-उधर सूखी मिट्टी सूंघती घूमने लगी हैं।

इसलिए कालिजाई को आनेवाले यात्री भी नही आ रहे थे। जिनकी मनौती थी वे ही एक आध मुर्गा या बकरा लेकर बालूगाव से नाव पर बैठ जाते थे।

अन्य वर्षों मे साधारणत इसी समय से बालूगाव मे यात्रियो की भीड़ बढ़ती जाती है। सराय मे, हाड़िभगा बरगद के नीचे यहा तक कि खाल प्रातर पर भी यात्री आ बसते थे। आश्विन और कार्तिक के आसपास से पुरी के लिए तीर्थयात्री चलने लगते। बाणपुर, खल्लिकोट, गजाम से पुरी के लिए शताधिक यात्री बालूगाव मे एकत्रित होते। वहा से नाव पर माणिकपाटणा और वहा से पैदल चलकर श्रीलोकनाथ के दर्शन कर पुरी पहुचते हैं। खजड़ी और मृदग तथा भजन की ध्वनि से वह नीरव भूमि एक नूतन प्राणस्पंदन से जाग्रत हो जाती है। पर इस साल 'पचक' के समय भी यात्री दिखाई नही पड़ते थे, सिवा जरा-जीर्ण कुछ विधवा वृद्धाओ के। उस समय देश मे कही भी लड़ाई जारी नही थी। तूफान के पूर्व स्तब्धता की तरह सब ओर निश्चल प्रशातता थी। किस तरह युद्ध की अफवाह फैल गयी थी, किसने फैलायी थी कोई भी नही जानता था। शायद पिछले डेढ सौ वर्षों मे बार बार लड़ाई, आक्रमण और आतक का सामना करके जनता मे षष्ठेंद्रिय ही तत्पर हो गई थी जिससे अवचेतन मन को भी भविष्य की सूचना मिल रही थी। वैसे टिकालि रघुनाथपुर की लड़ाई मे हारे हुए रामचद्र देव के हाफिज कादर बनने के बाद से लड़ाई का डर ही नही था।

सराय बद थी। जगुनि सुबह से ही केवड़े के जंगल मे नेवला पकड़ने निकल

पड़ा था। सरदेई पोखर से पानी लाने के लिए जाकर वहीं आलस्यवश तट पर पैर पसारकर बैठ गयी थी। मेघाच्छन्न आकाश, मैदान से पड़े खेत, निर्जन सड़क, चिलिका के पानी पर पड़ी बादलों की छाया; और इन सबको हिलाती, कंपाती बहनेवाली शीतल हवा सरदेई के मर्मस्थल को एक अकारण हाहाकार से भर रही थी। समीप के जंगल से एक कपोत, कलिक पक्षी या डाहुक अपनी अकारण ध्वनि से अरण्य के हृदय को मुखरित कर रहा था। उसी समय शायद सरदेई का ध्यान टूटा। वह भी अकारण ही बुलाने लगी..."जगुनि...अरे ओ जगुनि...!"

पर केवड़े की आड़ में से वह परिचित स्वर..."मुझे बुला रही है क्या देई" सुनाई नहीं दिया।

सड़क के उस ओर से शायद टाप की आहट आयी थी।

और कोई दिन होता तो निर्जन सड़क पर टाप की आहट पाते ही भयभीत हिरनी की भांति सरदेई सराय की ओर भाग निकलती—पर न जाने किस लिए आज किसी अनजान घुड़सवार की टापों की आवाज से उसके मन में आशंका का संचार नहीं हो रहा था और पता नहीं क्यों वह गहरी सांस लेकर उस अश्वारोही की प्रतीक्षा-सी करने लगी। शायद इस आस्थाहीन शीतल सन्ध्या में वह किसी मनुष्य की ऊष्ण उपस्थिति ढूंढ रही थी।

घुड़सवार, हो सकता है लश्कर या सिपाही हो। घोड़े पर से उतरकर कर्कश स्वर में पूछा—""बाणपुर के लिए यही सड़क है तो?"

हाडिमगावट के पास से दायीं ओर की सड़क सांप की भांति बल खाती हुई बाणपुर की ओर चली गयी है। वहीं से बाणपुर और खोर्धा सीमा का जंगल आरंभ हो जाता है। सरदेई ने सिर नवाये खड़े-खड़े संकोचवश घूंघट खींच लिया और धीरे-धीरे से बोली—"हां!"

घुड़सवार धीरे-धीरे उसके पास आकर बोला—"प्यास लगी है, पानी नहीं पिलाओगी?"

चित्र प्रतिमा-सी सरदेई उस अपरिचित घुड़सवार की अंजलि में गगरी से पानी डालने लगी। पानी पीकर घुड़सवार चला गया। घोड़े की टाप से उड़ती धूल जंगल के पत्तों पर बादल की तरह दिखने लगी। उसी ओर पश्चिम आकाश रक्तिम होने लगा था।

सांझ ढल रही थी।

"जगुनि रे···ओ जगुनि"—कहती हुई वह सराय को लौट आयी।

"देई, देखती हो कैसा नेवला पकड़ लाया हूं?"—लौटती हुई सरदेई को देख सराय के बरामदे से जगुनि कहने लगा।

जगुनि ने एक नेवला पालकर रखा था। सरदेई के बाद वही नेवला उसका अपना था जिस पर वह भरोसा कर सकता था। कभी-कभी सरदेई के प्रति भी उसके मन मे शका उठती थी, पर उस नेवले के प्रति वह पूर्णरूप से नि सदेह था। वही नेवला अचानक एक दिन कही चला गया। उस दिन से एक और नेवला पकडने की ताक मे था। आज सारे दिन इधर-उधर भटककर एक छोटा-सा नेवले का बच्चा पकड लिया था उसने, जिसे पिजडे मे बद करके सरदेई को दिखाने की उत्कठा से वह बाहर बैठा था। नेवला मुक्त कटकाकीर्ण श्यामलता से पिजडे के अदर बद होकर क्षीण स्वर से ची-ची कर रहा था, और पिजडे को काटकर भाग निकलने को पागल-सा मचल रहा था। पिजडे की लोहे की सलाखो से आहत होकर वह *कभी-कभी चीत्कार कर उठता था* तो *जगुनि एक कच्ची* बिट्टी लेकर पिजडे के छेद से अदर बढाते हुए प्यार करता था—"लेरे लाडले···ले···।"

पर जगुनि के इस प्यार को नेवला अत्याचार ही समझ रहा था और उसका आर्त्तनाद और बढ रहा था।

···इस तरह के धूसर मेघम्लान, पाशुल दिन मे सरदेई के मन के आकाश को बुझ गयी-सी स्मृतियो के बादल छा लेते थे। उसी स्मृति मे सरदेई अपने को कुछ समय के लिए खो देती है। आज भी पोखर के पास समय बिताकर लौटते हुए उसके मन की अवस्था वैसी ही थी। इसलिए शायद सरदेई ने जगुनि की बातो को सुना तक नही था। लबे समय से बिछुडे हुए बछडे को देख गाय जिस तरह *हबा···हंबा करती है, लगभग उसी तरह स्वर लहराकर सरदेई बोली*···"*सुबह* से ही कहा चला गया था रे तू! न खाया, न पीया···शाम हो गई और अब लौटा है तू!"

उजाड़ झाऊवन मे हिमकणो से भीगी-सी हवा रिक्तप्राणो के हाहाकार की भाति कोलाहल कर रही थी। उसी के साथ मिलकर सरदेई का स्वर भी कही लीन हो गया।

सरदेई मन-ही-मन हवा को कोसने लगी—'यह मुहजली हवा भी अब वैरन बन बैठी है!'

तब जगुनि ने उसे देखा। सराय की नीची छत के पास सरदेई के झुकते-न-झुकते वह बोल उठा—"देखती हो देई, कैसा नेवला है मेरा !"

उस समय जगुनि कच्ची बिट्टी को नेवले के मुह पर कसकर पकड़े हुए था। सरदेई पानी भरी गगरी को बरामदे में रखकर बोली—"अरे···अरे क्या कर रहे हो, जगुनि, अरे मर जायगा बेचारा ! यह नेवले का बच्चा इस कच्ची बिट्टी को खा सकेगा क्या ?"।

जगुनि ने सरदेई की ओर देखा···पूछा—"तो और क्या खाएगा ?"

सरदेई बोली—"बड़ा-सा एक नेवला पकड़ लिया होता तो और बात थी। इसे दूध पिलाकर कब तक रखोगे। इसने तो दूध पीना तक नहीं सीखा होगा। कपड़ा भिगोकर बूद-बूद कर पिलाये बिना वह पी ही नहीं सकेगा और मर जायगा !"

सरदेई की बातें सुन कच्ची बिट्टी जगुनि के हाथ से छूट गई और लुढकती हुई नीचे गिर पडी। और फिर तेज हवा ने उसे थूहड़ के पौधो तक सरका दिया। जगुनि कुछ क्षण नेवले को भूलकर धूसर सध्या की मलिन छाया से धीरे-धीरे घनीभूत होते आकाश की ओर देख रहा था। पशु की आखों की तरह उसकी अभिव्यक्तिहीन सजल आखें अस्वाभाविक रूप से करुण लग रही थी।

बालू में से धीरे-धीरे केंकडो के मुह दिखाने की तरह जगुनि के अवचेतन मन की विस्मृतिया एक के बाद एक सिर उठा रही थी। एक भयकर दुर्भिक्ष के समय किसी सडक पर परित्यक्त, आश्रयहीन अबोध शिशु···। जब मनुष्य का मांस तक मनुष्य खा रहे थे तब कौन किसे सहारा दे !

फिर भी कोई-न-कोई अवश्य था जिसके सतान-वंचित क्षुधित प्राणो में एक शिशु के प्रति वात्सल्य ममता की दुर्वा हरी थी। किसी से सुनी हुई कहानी की तरह याद है। वह शिशु जीवन्मृत अवस्था में पड़ा था—दूध तक पीना उसके लिए कठिन था। कुछ अपरिचित चेहरे और अनजान गोदो की उष्मता भी याद है···! तोतले स्वर में वह शिशु धीरे-धीरे 'ब-बा-मा' कहने लगा।

दुर्भिक्ष उस समय जीवन का नित्य सहचर था। फिर कुछ ही वर्षों के बाद पुन. अकाल पडा। जैसे एक अकाल कम था और साथ ही मुगल दंगा···। दुर्भिक्ष की कराल क्षुधा और मुगल जुल्मो से चारो और कंकालो के ढेर लग गये। उस दुष्काल के समय जिन्होंने उस बालक को सड़क पर से उठाकर पाला था, उनके

भी उस बुढ़िया का वहां आकर बैठना कभी-कभी तांत्रिकों ने देखा है।

उसमें दुनिया के प्रति दया नहीं थी। महानुभूति या ममता नहीं थी। सराय में ठहरनेवालों के लिए पानी ले जाने से लेकर जंगल से जलावन की लकड़ी लाने तक का कोई भी काम वह बुढ़िया उन कंकालनुमा बच्चों से करवाने में हिचकाती नहीं थी। बीच-बीच में जिसे वह बेच देती थी या जो भूख और निर्यातन से मर जाता था केवल वही उस जीवंत रौरव नर्क से मुक्त हो पाता था।

सब चले गये। केवल जगुनि रह गया था।

न मालूम जगुनि के भाग्य ने उसे किस ओर खींचा होगा? लगातार कई वर्षों के सूखे के बाद उस साल वर्षा हुई थी। देश में मुगल-दंगा शांत हो गया था। खेतों में लक्ष्मी बसी हुई थी और देशभर में निरुपद्रव शांति विराज रही थी। लोग आश्वस्त हो गये थे। हठात् न मालूम कहां से संक्रामक महामारी आई। गांव के गांव शून्य होते गये। पर विचित्र बात तो यह थी कि उस बुढ़िया का बीमार शरीर फूलने लगा। जो भी जैसे-तैसे उस समय बच गया कहता—"इस बुढ़िया का जीव कालिजाई में सात ताल पानी के नीचे एक डिबिया में बंद है और उसकी रखवाली एक इतनी बड़ी रोहू करती है। इसलिये महामारी बुढ़िया का कुछ न कर सकी। जो बच गये थे उन्हें विश्वास हो गया कि बुढ़िया महामारी की बहन है। और नरमांस के लिये ही वह अपनी बहन को बुलाकर ले आयी थी। इसका नाश जब तक नहीं हो जाता, तब तक और रक्षा नहीं है।

आज भी उस दिन का वह भयानक दृश्य जगुनि को याद है। एक दिन उस हाडिभंगावट के नीचे आसपास के लोग जमा हुए। उन्होंने वहां आग जलायी। शिखा आकाश को छूने लगी। उस दिन शाम को बुड्ढी डायन श्मशान के सेमल के पेड़ के पास गयी थी, न मालूम किस जड़ी-बूटी की खोज में।' लोग उसे वहां से उठाकर ले आये और जबरदस्ती बैंगन की तरह उसे आग में झोंक दिया।

उस दिन जगुनि डर के मारे भागता-दौड़ता रहा और केवड़े के झाड़ों में सारी रात छिपा रहा। सुबह जाकर वह आग बुझी थी। उस समय तक गांववाले वहां न थे। बुझती आगे से धुआं उठ रहा था और तब भी उसमें से जलते मांस की गंध आ रही थी।

जगुनि सराय में लौट आया। उसके बाद महामारी से भी छुटकारा मिल गया।

नेवले का बच्चा पिंजड़े मे से जगुनि को देखकर मुह निकालने की चेष्टा करता हुआ चें-चें कर रहा था। यह नेवले का बच्चा जगुनि को अपने अनावृत, उपेक्षित और लाछित शैशव का स्मरण करा रहा था। इसीसे कभी-कभी उसे जहा से पकडकर लाया था वही छोड आने की सोचता, पर दूसरे ही क्षण उसका विचार बदल जाता। उसने याद किया, सरदेई उसे दूध देने को कह रही थी। सराय मे दूध नही था। पास ही भैंसो की गोठ थी। वह नेवले के लिए दूध लाने चल पड़ा।

सरदेई जब भीतर से सध्यादीप सजाकर बाहर आयी तो देखा कि जगुनि नही था। झाऊ के जगल मे हवा साय-साय करती बह रही थी। बरामदे में नेवला चें-चें कर रहा था। झाऊ वन की ओर से दल के दल चमगादड डैने झाडते हुए आ रहे थे। दूसरी ओर से नीडो को लौटनेवाले पक्षी चुपचाप आ रहे थे।

सरदेई जोर से पुकार उठी—"जगुनि···रे···ए···ए···ओ···जगुनि···इ···इ"

पर उसका स्वर सराय की ओर लौट आया।

झाऊ वन मे तूफानी हवा के दीर्घ सास के अलावा और कोई प्रत्युत्तर नही मिलता था।

सरदेई एक सफेद चादर ओढकर बरामदे मे दीवार के सहारे बैठी हुई थी। थक गयी थी। शाम ढलती जा रही थी। बाणपुर जगत के माथे पर के आकाश के आगन मे जैसे किसी ने गुलाल बिखेर दी हो। झाऊ, ताल और खजूर के पेड़ दूर से पिशाचिनी की तरह बाल फैलाये आनेवाली तूफानी रात के स्वागत मे मानो नाच रहे थे। समीप ही उस हाडिभगावट की जटाओ मे शाम का सारा अधकार, रात के सब चमगादड और तूफान की सारी तेज हवाए उतर रही थीं। केवडे के झाड़ो की आड से सियार का चीत्कार उस परिवेश को और भी डरावना बना रहा था।

जो बाणपुर का रास्ता पूछ रहा था, अब वह उस जगली सडक मे कहा होगा? कौन था वह घुडसवार? कहा से आया था? किसलिए इस अधेरी रात मे भी उसे बाणपुर जाना पडा?

सरदेई की स्मृतियो मे उस दिन की वह मूर्ति तैर गयी। चिलिका तट की वह उजड़ी बस्ती, वह घुडसवार, वही सुनसान दुपहरी···। उसे भी तो प्यास लगी थी। वह भी उसी तरह घुटनों के बल बैठ गया और सूखे होठों के आगे अजलि

पसार ली। उसी तरह एक सांस में गगरी का आधा जल पी गया था।

दुखिया का जीवन, अंधकार, मुगल-दगा, दुर्भिक्ष, ये सब मिलकर मानो एकाकार हो गये थे। एक को दूसरे से अलग करना भी सभव न था। वह अपरिचित घुड़सवार, उसकी प्यास, वह आग बरसानेवाली दुपहरी, सभी मिलकर उसकी चेतना में एकाकार हो गये थे।

उस दिन भी उसने मालकुदा गांव मे उसके घर के सामने खड़े-खड़े बाणपुर के रास्ते के बारे में पूछा था। बाणपुर कहा है, कौन-सा राज्य है, इस सबका उसे क्या पता? उसने तो केवल बाणपुर की भगवती के बारे मे सुना था। पुकारने से सुनती हैं, जवाब देती हैं। उसके ससुर कई बार वहा मनौती चढ़ाने भी गये थे। कही तो भी वह सुगठित, पुष्ट, सुंदर चेहरा छिप गया है। काले सगमरमर से बनी मूर्ति-सी सूरत! गालों पर के गलमुच्छे, कंधों पर पड़े कुंचित केश··· उसके पति, स्वामी! कही तो भी खो गये हैं उसके देवर! उनका विवाह तै हो गया था···अनजान गावो से उसकी देवरानिया आयी होती। घर भर गया होता। सास तो उस दिन का सपना देखा करती थी। अचानक तूफान-सा मुगल-दगा आया—मुगल फौजो ने खोर्धा पर आक्रमण किया। देश क्या है, स्वाधीनता क्या है, वह नही जानती थी। पर अपनी जन्मभूमि पर शत्रुओं का आक्रमण हो तो कौन पाइको के वीर्यजात युवक घर पर बैठे रह सकते हैं, और कौन पाइक की बहू ऐसी होगी जो उसे रोकना चाहेगी?

उसके ससुर भी भूत चढ़ने की तरह नाचने लगे थे। "अरे नामर्दो, घर पर क्या कर रहे हो? तुम सब पाइको की संतान हो या भगी की औलाद? मुगल जगन्नाथ पर भी हाथ उठाने को तुले हुए है! जगन्नाथ जाए तो ओड़िसा का और क्या रह जायगा?"

सड़को पर भेरी, तुरही, नगाड़े बजने लगे। उनके ललाटो पर प्रसादी सिंदूर का तिलक लगाकर सरदेई ने अपने पति और देवरों को भेजा था। पर वे फिर वापस नही आये। शत्रु हट गये, शांति लौट आयी, पर वे नही लौटे और उनकी राह देखती रह गई सरदेई! उस दिन उस आग बरसानेवाली धूप मे जिस घुड़सवार ने प्यास से आकुल होकर उससे पानी मांगा था, क्या वे खोर्धा के राजा थे? ओडिसा के सिरमौर! पहले तो उन्होंने अपना परिचय नही दिया, पर जब लश्करो ने औरत देख उस पर हाथ उठाया तो वे अपने को नही सभाल सके

और उन पर कूद पड़े थे। मालकुदा की उग सड़क पर राक्षसों की तरह दिखने वाले उन लश्करों की याद आते ही वह भय से रोमांचित हो उठी।...वे राजा अब कहां हैं ? किस देश मे हैं ?

सरदेई ने अपनी आभरणहीन बाह पर के क्षत चिन्ह को देखा। अस्पष्ट अंधकार मे वह चिन्ह साफ नही दिख रहा था पर स्पर्श से अनुभव कर सकती थी वह !

जगुनि तब तक लौटा नही था,

सरदेई फिर बुलाने लगी—"जगुनि...इ...अरे ओ...जगुनि...इ...इ..."

जगुनि लौट रहा था।

रात का एक पहर बीत चुका था।

दिन-भर की उत्तेजना और थकावट के कारण जगुनि साप की तरह कुंडली बांध सो गया था। चूलहे मे लकडी डाली गयी थी, उसमे से धुआ उठ रहा था। दहकते अंगारो से अंदर कुछ उजाला था। सराय के बाहर तूफानी हवा और तेज हो गयी थी। झाऊवन में जैसे प्रलयकारी तांडव हो रहा था। तालवन मे जैसे लड़ाई के नगाड़े बज रहे थे। जगुनि के सिर के पास पिंजड़े मे बद नेवला भी सो गया था। सरदेई ने जगुनि के ठिठुरते बदन पर चादर उढ़ा दी और बैठी-बैठी तूफान का गर्जन सुनती रही। सराय के किवाड तूफानी हवा मे एक अनिश्चित आतंक से काप रहे थे।

उसे लगा जैसे कोई किवाड़ पर दस्तक दे रहा है।

उसने समझा शायद हवा हो और अपने-आप बुदबुदाने लगी—"यह कलमुही रात बीतेगी भी या नही।"

किवाड पर दस्तक के साथ-साथ किसी-का स्वर भी सुनाई पड़ा—"खोलो, किवाड—कौन हो अदर !"

इस असमय, फिर तूफानी रात मे, किसी अपरिचित का कठ-स्वर सुन सरदेई का सारा शरीर भय से कांपने लगा था। चोर है या लश्कर, कौन है यह ?

बाहर से अब किवाड पर धक्के पड़ने लगे थे।

सरदेई जगुनि को जगाने के लिये हिलाने लगी और अस्फुट स्वर से पुकारने लगी—"जगुनि...जगुनि..."

जगुनि आखें मलता हुआ उठ बैठा।

जगुनि को उठते देख सरदेई का कुछ धीरज बंधा। जगुनि के बल और साहस पर सरदेई भरोसा करती आयी है।

सरदेई भयभीत स्वर में कहने लगी—"सुन तो कौन कुंडी खटखटा रहा है, शायद, चोर है या लश्कर!"

जगुनि उस अपरिचित का कंठ-स्वर और दस्तक का स्वर सुनने लगा। उसके बाद एक लुकाठा उठाकर हाथों में फरसा लिये सतर्कता से भीतर से चढ़ाई हुई कुंडी खोल दी उसने।

खुलते ही तूफान के धक्के से पछाड़े हुये से किवाड़ दीवार से टकराये। लुकाठे में से आग झरकर इर्द-गिर्द फैल गयी, पल भर के लिये उजाला बिखर गया-सा लगा।

जगुनि के सामने लांग कसे और अंगत्राण पहने हुये दो पाइक खड़े थे। कमर-पट्टी के साथ छुरी लटक रही थी। छाती पर लगे तकमों पर अंकित नीलचक्र से पता चल रहा था कि वे खोर्धा के पाइक थे। सिर के कुंचित बालों पर पगड़ी बंधी थी।...गलमुच्छों और मूछों से स्पर्धा टपक रही थी। पीठ पर ढाल झूल रही थी। हाथों में भाले थे। बरामदे के नीचे बांधे गये घोड़े टाप पटक रहे थे।

जगुनि सरदेइ के सामने जितना निरीह और असहाय है दूसरों के लिए उतना ही रूक्ष और कठोर है। उसने रूखे स्वर में पूछा—"कौन हो तुम लोग, क्या चाहते हो?"

उनमें से एक पाइक ने क्लांत कंठ से जवाब दिया—"हम खोर्धा के बक्सी के पाइक हैं। बाणपुर जा रहे हैं। एक रात के लिए इस सराय में ठहरेंगे।"

जगुनि कच्ची नींद से जगकर कुछ चिढ़ रहा था। हो सकता है उनके साथ झगड़ पड़ता भी। पर वे खोर्धा के पाइक हैं, जानने के बाद सरदेइ अंदर से धीमे स्वर में बोली—

"आने दो, जगुनि...।"

सर्दी से ठिठुरते हुये जगुनि ने जंभाई ली।... "आयें अंदर! क्या घोड़े वहीं बंधे रहेंगे, या उस झोंपड़ी में?"—कहकर जगुनि ने उन्हें सराय से सटकर बनी झोंपड़ी दिखा दी। फिर हवा से लुआठे को बचाते हुये उन्हें पास की कोठरी तक ले आया।

हवा जोर से अंदर आ रही थी। सरदेई किवाड़ों को बंद करना भूल गई थी।

'ये भी बाणपुर जा रहे हैं ? ये भी खोर्धा के पाइक हैं ? खोर्धा पर फिर विपदा टूट पड़ी है क्या ?'...वह सोचने लगी।

तूफान थमने लग गया और रात की निर्जनता बढ़ने लगी थी। पर झाऊ वन मे हवा का गरजना बंद नही हुआ था। चिलिका का जल रात्रि के अंधकार मे तट लांघकर उछल जाना चाहता था। जगुनि फिर सो गया था। पर अपरिचित सराय में पाइकों को नींद नही आ रही थी। सरदेई भी सोयी नही थी। उलझे हुये धागे की तरह बहुत सारी भावनाएं उसके मन मे जाग रही थी। और उसका अंत स्थल उस झाऊवन की तरह हाहाकार से भर गया था।

पास की कोठरी मे आपस मे बातें करते हुये पाइकों का स्वर सुनाई पड़ा। एक कह रहा था—"समझो ! राउत, अब खोर्धा का राजा गया ही समझो !" खोर्धा राजा का नाम आते ही सरदेई कान लगाकर सुनने लगी।

राउत अप्रसन्न स्वर मे बोला—"शिशुपालगढ जबसे छोड आये हैं, तबसे यह एक ही बात बारबार कह रहे हो। बात क्या है साफ-साफ क्यो नही कहते ? हम तो साथी हैं !"

उसने बताया"—तुम्हे भी पता नही है ! अरे बक्सी की जो चिट्ठी लेकर तुम महारानी के पास जा रहे हो उसमें तो सब-कुछ है। मुझसे क्या पूछते हो ?"

राउत बोला—"बताओ तो सही, क्या लिखा है उसमे ? न मैंने वह पत्र खोला है, न उसे पढा है।"

पाइक ने बताया—"कटक सूबे के नायबनाजिम के पास चिकाकोल का फौजदार नजराने की रकम भेजेगा। इसी सडक पर ही सालेरी के पास उसकी राहजनी हो जानी चाहिये सलाह देकर बक्सी ने रानी को चिट्ठी भेजी है।"

राउत बोला—"क्या बकते हो ? नजराने की रकम तो रानी के पाइक लूट कर ले जायेंगे। इसमे राजा को क्या नुक्सान पहुचेगा ?"

पाइक बोला—"कैसे समझ नही रहे हो ? नायब-नाजिम ने राजा को ताकीद कर दी है। खबरदार कर दिया है कि ये रुपये कटक सही-सलामत पहुच जायें... रास्ते मे राहजनी होने न पाये। और रास्ते ही मे कोई लूट ले तो...नायब-नाजिम किसको जिम्मेदार ठहरायेगा, तुम्हें या महारानी को ?"

"राजा को !"—कहकर राउत गंभीर हो गये।

तब पाइक उत्साहित होकर कहने लगा—"जिस दिन से गाजी मियां का सिहल-ब्रह्मपुर गांव मे खून हुआ है, नायब-नाजिम की दृष्टि में खोर्धा राजा गिर गये हैं। वह मौके की ताक में है और राजा पकड़ में आ जाये तो कच्चा चबा जायगा। मुर्शिदावाद से कुछ खबर आयी थी इसलिये तकीखां गया हुआ है। वह होता तो खोर्धा पर अब तक कुछ हो गया होता। राजा फिर पिंजड़े में बंद होकर कटक पहुंच गया होता अब तक। उस पर अगर इस रकम की राहजनी हो गयी तो समझ लो राजा के सिर पर मौत आ गयी।"

स्थूल बुद्धिवाला राउत शायद इस पर भी नही समझ रहा था। बोला—"पर इनमे बक्सीजी को क्या लाभ होगा ?"

पाइक कुछ खीझ-सा उठा शायद, बोला—"लाभ !...राज्य लाभ, और क्या लाभ होगा ? बक्सी अगर राजा बन जाये तो हमारा भी लाभ और तुम्हारा भी लाभ...इसमें सबको लाभ है !"

दीवार की उस ओर सरदेई के बदन पर जैसे किसीने अंगारे रख दिये हों। वह कुछ भी नही समझ रही थी। बस इतना ही समझ रही थी कि खोर्धा के राजा के विरुद्ध कुछ बड़ा भारी षड्यंत्र हो रहा है। फिर से लड़ाई छिड़ेगी। फिर से बहुओं के हाथों से चूड़ियां उतारी जायेंगी...फिर देश को श्मशान बनाएंगे। फिर खोर्धा के राजा को लोहे के पिंजड़े में बंद करके कटक ले जायेंगे।

सरदेई का हृदय जैसे आर्त्तनाद कर उठा था।

झाऊ वन में सायं-सायं बहती हवा के साथ ताल वन मे जैसे नगाड़े बज रहे थे।

पाइक हठात् प्रलाप करता-सा बोला—"राउत, घोड़े की जीन मे ही थैले के अंदर वह चिट्ठी रह गयी है।"

राउत तंद्राच्छन्न स्वर मे बोला—"रहने दो अब। सो जाओ। क्या डर है !"

कुछ देर बाद वे दोनो खर्राटे भरते हुये सो गये। सरदेई फिर जगुनि को हिलाने लगी। धीरे-धीरे बुलाने लगी।

जगुनि जाग गया। जम्हाई भरता हुआ बोला—"आज सोने ही नहीं दोगी क्या ?"

निर्जन रात में तूफान वैसे ही गरज रहा था। सरदेई धीरे-धीरे बोली—

"चुप करो। घोड़ो तक चलो, बताती हूं। चुप-चुप, जैसे इन पाइकों को पता न चले।"

जगुनि कुछ भी समझ न सका और सरदेई के साथ-साथ बाहर आ गया।

4

कुरलोविसे सिहल-ब्रह्मपुर गाव मे उस दिन मदिर तोड़ने का कार्य सचालन करते हुए शराघात से टट्टू पर से गिरकर गाजी सुलतान बेग की मृत्यु हो गई। उसके बाद उस भौतिक कोलाहल मे चौंककर जिस तरह पूछ उठाकर वह टट्टू घोड़ा खेत और प्रातर होता हुआ भाग निकला था, वह दृश्य अगर किसी ने देखा होता तो उसके लिए उस विभीषिकामय परिवेश मे भी हसी रोक पाना कठिन हो गया होता।

बेड़े के अदर फकीरा मिया और दो एक की लाशें पड़ी थी। वैशाखी तूफान द्वारा सब उथल-पुथल कर उड़ा लेने की तरह पल भर मे सब कुछ भौतिक माया की भाति घट गया था। उभय हिंदू दर्शक और मुसलमान मदिर तोड़ने वाले समझ ही नही सके कि क्या हुआ और कैसे हो गया। मुसलमान अपनी आत्म-रक्षा के लिए भागे हिंदू भी आतकित होकर खेतो मे, केवड़े के झाड़ो की आड मे और बास वन मे निरापद स्थानो को चले गये। और बाद मे किसी ने काले घोड़े पर बलभद्र और सफेद घोड़े पर जगन्नाथ को देखने की बात कही तो किसी ने बताया कि उसने खोर्धा के राजा हाफिज कादर को तीर चलाते हुए देखा है।

उसके बाद शाम ढलती गई और वे इस आलोचना के न टूटने वाले क्रम को और उलझाते हुए अपने गावो को लौट गये।

मदिर के पास से उनके चले जाने के बाद पास ही छिपे कुछ मदिर तोड़ने वाले रात के डकैतो की तरह निकल आये। उस समय शाम की फीकी अधियारी मे दधिवामन मदिर एक छायाचित्र-सा लग रहा था। कबूतर भी तब तक लौट आये थे। मदिर पर के कलश से सावल के आघात से नीलचक्र लुढक पड़ा था। मंदिर तोड़ने वालो मे उस ओर देखने की इच्छा तक नही थी। उन्होंने छिपते

हुए आकर मंदिर के बेढ़े के अंदर पड़ी फकीरा मियां तथा एक अन्य की लाश को आतंकित श्रद्धा और भक्ति के साथ उठाकर गाजी पीर की लाश के पास रख दिया। उसके बाद उन्होंने मंदिर के पास के एक सेमल के नीचे उस अंधकार में तीन गड्ढे खोद दिये।

दक्षिण दिशा में एक क्षीण प्रकाश का आलोक ही था। कब्र खोदने वाले खोदे जा रहे थे। खुदाई हो गई तो उन्होंने पहले गाजी मियां की लाश उठायी…कब्र में सुलाकर मिट्टी से ढक दी। उसी के दोनों ओर दूसरों को भी उसी तरह सुला कर मंदिर के टूटे पत्थरों में से तीन पत्थर लाकर गाड दिये। उन कब्रों में गाजी मियां की कब्र दूसरों से कुछ बड़ी दिख रही थी।

इन तीनों कब्रों पर अपनी शाखा-प्रशाखाओं को विस्तरित करके वह सेमल का पेड़ खड़ा था। उन शाखाओं पर अनगिनत जुगनू जगमगा रहे थे। उसी पेड़ के पास दोरडा के जंगल, कई पालिधा के पौधे, उसके बाद फैली हुई अमरबेल, उसके बाद बांस का वन और केवड़े के अनगिनत झाड़ों के बाद सपाट मैदान और खेत दूर के पहाड़ तक पसर गये थे। कब्र देने का काम खत्म होते-होते कृष्ण पक्ष की अष्टमी का चांद दूर बांस वन के ऊपर उठ आया था। गाजी मियां धर्म के लिए प्राण देकर शहीद बन गया था। फकीरा मियां और उसका साथी कोई खास आदमी न होने की वजह से शागिर्द बने और उनकी कब्रें गाजी मियां के दोनों ओर खोदी गयी थीं। एक न एक दिन वह शुभ घड़ी फिर आयेगी, जब वे दोनों गाजी मियां के साथ कब्र में से जागेंगे। उनको मुबारकबाद देने को कब्र खोदने वाले घुटनों के बल बैठ गये…हाथ पसार उन्होंने आकाश की ओर देखा, और उदास स्वर में कई बार "करामात्…करामात्…" कहकर शहीदों को सलाम किया फिर चले गये, उन सपाट मैदान और खेतों को पार करते हुए; और दूर फीकी चांदनी में कहीं खो गये !

गाजी सुल्तान बेग, पीर-ए-रौशन अली बुखार के शागिर्द थे। यही अली बुखार कालापहाड़ के साथ काफिरों के मंदिरों को तोड़कर उसी जगह मसजिद बनाने के लिए ओड़िशा आये थे। कई मंदिर और मूर्तियों को इस अली बुखार ने तोड़ा था। इतिहासकारों का कहना है कि बारबाटी पर आक्रमण करते समय किसी ने उनका सिर धड़ से अलग कर दिया था। सिर बारबाटी में पड़ा था और धड़ को लेकर घोड़ा हो जाजपुर चला गया था। इसलिए अली बुखार की कब्र

दोनों जगह बनाई गई थी। वारयाटी में जहा उनका गिर पडा था, वहां एक कब्र बनी है और एक कब्र जाजपुर के मुक्तिमडप पीठ पर भी बनी है। यहां उनका कबंध शरीर पहुचा था। काफिरो के देव-देवी और मदिरो के प्रति अली बुखार के विद्वेष के बावजूद, पता नही, इतिहास के किस परिहास की तरह उसी काफिरो के मुक्तिमडप पीठ पर उनकी आत्मा को शांति मिली थी। वही जगह हिंदुओ के द्वारा एक पवित्र स्थल के रूप मे रूपातरित हो गई थी। उस समय इन मदिर तोडने वाले पीरो की समाधियों मे मुसलमानो की अपेक्षा हिंदू ही ज्यादा सीरणी भोग चढाते और धूप जलाया करते थे।

पीर-ए-रौशन अली बुखार की तरह गाजी सुलतान बेग भी एक कट्टर मुसलमान थे। गाजी पृथुल और ठिगने कद के थे। मुह पर चेचक के दाग थे। आखें गहरी और लाल थी। नाक चपटी और चौडी थी, दोनो होठ दो टुकड़े ओऊ की तरह दिखते थे। पूरे बदन को ढकता हुआ काला चोगा। बब्दर वालों को बाधता सा सफेद डोरा जो उनके हाजी होने के प्रतीक के रूप मे था। उस पर सफेद टोपी···गले मे लाल-नीले पत्थरो की माला और सवारी के लिए एक टट्टू। वे हिजली-मेदिनीपुर से लेकर पुरी-खोर्धा तक के मुसलमान सूबेदारो और फौजदारो के किलों मे जितने आदरणीय और सम्मान के पात्र थे हिंदू मदिर-रक्षको और दुर्गपतियो के लिए उतने ही आतक के कारण थे। नायब-नाजिम तकीखा के दरबार मे उनकी बडी खातिरदारी की जाती थी। उस पर वे एक अलौकिक शक्ति के अधिकारी थे। उनका नाम लेने पर खोयी हुई गाय से लेकर चोरी चली गयी चीजों तक का पता अपने आप लग जाता था।

इसका प्रमाण खुद तकीखा को भी मिल चुका था। एक बार तकीखा की एक हीरा जड़ी अगूठी लाल बाग के गुसलखाने मे खो गई। अमीर, उमराव, मीर, बक्सी और मुतसद्दियो के लाख ढूढने पर भी वह नही मिली। जब वे ढूढते-ढूढ़ते हैरान हो गये तो किसी ने अली बुखार का नाम लिया। नाम लेते ही वह अंगूठी गुसलखाने के पानी के हौज मे मिली थी। अगूठी चुराने के जुर्म मे एक भिश्ती को सूली पर चढाया गया। उस दिन से गाजी पीर का नेक नाम चारो ओर फैल गया। तकीखा गाजी पीर को इनाम वख्शना चाहते थे। पर उन्होंने इनकार कर दिया। वे परमार्थी थे। गुरु अली बुखार की तरह रज्म, बज्म और इबादत के अलावा उन्हें और कुछ भी मजूर नही था। भद्रख से लेकर खोर्धा तक जितने

मंदिर ये सबको तोड़कर उनकी जगह मसजिदें और इमामबाड़े बनवाना चाहते थे। तब जाकर उनकी रूह को चैन मिलेगा। इसलिए गाजी मियां को दिल्ली शाहजहांबाद के निजाम-उल्-मुल्क से भी इजाजत का परवाना मिला था। उनके हुक्म के खिलाफ काम करने या किसी हिंदू को उन्हें रोकने की जुर्रत करने पर सजा-ए-मौत मिलेगी—काजियों को भी यह इत्तला दे दी गई थी।

गाजी सुलतान ने इसी परवाने के बल पर नये सिरे से कालापहाड़ी आक्रमण चलाना शुरू कर दिया था। जाजपुर विरजा मंदिर के सम्मुख स्थित स्तंभ उन्हीं के साबल के आघात से टेढ़ा हो गया था। स्तभ के शिखर पर की पक्षिराज गरुड़ की मूर्ति साबल प्रहार से खिसक गई थी। इसके अलावा और कोई क्षति नहीं हुई थी। दशाश्वमेध घाट पर की सप्तमातृका मूर्तियों को उन्होंने वैतरणी नदी में फेंक दिया था और मंदिर को तोड़कर धूल में मिला दिया था। मंदिर के पत्थरों से मसजिद बनाई गई थी। उसी तरह बड़हिह पहाड़ पर की बौद्ध-कीर्तियों को धूलिसात् करके उस पहाड़ पर भी उन्होंने एक मसजिद बनाई थी।

अंत में उनकी शनिदृष्टि सिहल-ब्रह्मपुर के दधिवामन मंदिर पर पड़ी थी और मंदिर तोड़ते समय उनकी मौत हुई थी। इस तरह के मीर मुजाहिद की लाश को मुसलमान भक्त रिवाज के मुताबिक कब्र बिना दिए काफिरों की जमीन पर कैसे छोड़ आते ? इसलिए खतरे के बावजूद वे कब्र देकर वहां से आये थे।

पर दूसरे दिन भोर में सिहल-ब्रह्मपुर गांव के तात्विक पंडित गोविंद तिहाड़ी ने, धनुष की भांति रीढ़ के नीचे कमर में छोटा-सा अंगोछा बांधे नाममात्र को लज्जा ढककर, बायें हाथ में लोटा पकड़कर और दायीं चुटकी से नास सूंघते और विभू नाम स्मरण करते हुए, प्रकृति के आकस्मिक ताड़न से मुक्त होने को सेमल के उस ओर के केवड़े के झाड़ों की ओर चलते समय अकस्मात् सेमल के नीचे तीन पत्थरों को देखा तो ठिठककर रह गये। मध्याह्न में मंदिर तोड़ते समय की भौतिक घटना के सारे दृश्य तिहाड़ी की आंखों के आगे तैरने लगे। इसी सेमल के पेड़ के नीचे गाजी मियां शराघात से घोड़े पर से लुढ़क पड़ा था। गोविंद तिहाड़ी ने आंखें मलते हुए उस ओर देखा। हो सकता है लाश को सियारों ने खींच लिया हो। पर कुछ उसके भी तो चिह्न होते !

तब जाकर गोविंद तिहाड़ी का चैतन्य उदय हुआ। तो मंदिर तोड़ने वाले दधिवामनजी के अभिशाप से यहां पत्थर बने पड़े हैं।

तिहाडी के सारे शरीर मे कपकपी-सी दौड गई। उसी उत्तेजना के फलस्वरूप उनमे से प्रकृति की ताडना ही विताडित हो गई थी। वे वही से लौट आये और गाव की सडक पर पैर धरते ही सबको सुनाते हुए चिल्लाने लगे—"अरे आओ रे—चका डोला बलिआर भुज के अभिशाप से ये मुए कैसे पत्थर बन गये हैं! म्लेच्छ सब पाषाण हो गये है!...दौडो...देख आओ आकर!"

पर तिहाडी बकते हुए गडनायक को खबर करने के लिए चबूतरे की ओर दौडते से चल रहे थे। तिहाडी की उलटी-सीधी बात से किसी ने क्या समझा, क्या पता, पर एक कहने लगा—"म्लेच्छ मदिर पर चढे थे, सो दधिवामन ने क्रोध किया है, और सेमल के नीचे आ बसे हैं। अत वहा नया मदिर बनवाया जायेगा।" एक और ने बताया—"म्लेच्छो ने फिर मदिर पर आक्रमण किया है।" और किसी ने तिहाड़ी की बातो को ठीक-ठीक समझकर बताया कि मदिर तोडने वाले म्लेच्छ सेमल के नीचे अभिशाप से पत्थर बन गये हैं। जो हो, सब तिहाडी की बात सुनने के बाद मदिर की ओर चल पडे, स्वचक्षु से सारी बातो को देख आने।

उनका गभीर गर्जन-सा स्वर सुनकर, सुबह-सुबह जिनकी आखो मे तद्रा की मिठास अब भी शेष थी—या जो सो कर उठ चुके थे सभी दरवाजा खोलकर सडक पर खडे-खडे पूरी बात जानने की चेष्टा कर रहे थे।

उस समय गोविंद तिहाडी सेमल के नीचे गाडे गये तीनो पत्थर दिखा-दिखाकर कह रहे थे—"देखो यह कैसे यहा म्लेच्छ पत्थर बने पडे है।"

सिहल-ब्रह्मपुर और उसके आसपास के गावो मे, दधिवामन की महिमा के प्रताप से किस तरह म्लेच्छ पत्थर बन गये है इस चर्चा के अलावा और किसी बात पर कई दिनो तक कोई चर्चा हुई ही नही। जगन्नाथ ने सफेद घोडे पर और बलभद्र ने काले घोडे पर आकर मदिर की रक्षा की थी यह प्रत्यक्षदर्शी विवरण इस बीच गौण हो गया था।

कई दिनो के बाद एक दिन तपती दुपहरी मे मसामपुर गाव के छोटे मिया मौलवी के साथ कुछ मुसलमान उस कब्र के पास आये। लोगो ने समझा कि फिर मदिर तोडने मुसलमान आये है और वे केवडे के झाडो की आड से या दूर कही रहकर आतकित आखो से उन्हे देखने लगे। पर आये हुए मुसलमानो के लिए मदिर की सीमा के अदर जाना तो दूर की बात रही, उन्होंने मदिर की ओर

ताका तक नही और चुपचाप कब्रों के पास आये। तीनों कब्रो पर पुताई की और लाल कपड़ों से बने चंद्रवों से उन्हें ढंक दिया। उन चंद्रवो पर सफेद कपड़े से चंद्र-बिंदु सा चिह्न अंकित किया गया था। पिपलि मे वैसा चद्रवा मिलता है जिसे हिंदू घरों में देव आस्थान पर लगाते हैं। अब मुसलमानों के द्वारा उसी तरह श्रद्धा मे ओढ़ाने की बात का तात्पर्य समझना उन छिपे हुए दर्शकों के लिए आसान नहीं था। इसके बाद उन्होंने कब्र पर धूप जलायी…अगर बत्ती का धुंआं सीधी, टेढ़ी-मेढ़ी लकीरो मे ऊपर उठने लगा। छोटे मियां मौलवी वहा घुटनों के बल बैठ गये, बांहें पसारी, फिर उठे, फिर बैठे…उनके साथ आये लोग उन्हीं की तरह कर रहे थे।…और बाद में सब शात भाव से वहा से मैदान और खेतों से होते हुए मत्रामपुर की ओर चल पड़े।

सिहल-ब्रह्मपुर गांव के जो लोग वहा केवड़े के झाड़ या बांस बन की ओट से यह सब देख रहे थे, मौलवी और उनके साथियों के चले जाने के बाद उन कब्रों के पास आये और उनको प्रणाम किया। कुछ ने पत्थरो पर सिंदूर भी लगाया। पर ये सारी बातें उनके लिए रहस्यमय ही बनी रहीं।

इसके कई दिनों बाद, जब किसी गांव से आकर एक अकेले मुसलमान ने कब्रों पर अगरबत्ती जलायी और दुआ मांगी, तब जाकर लोगों को पता चला था कि वहा का वह बड़ा-सा पत्थर गाजी साहब पीर हैं और उनसे दुआ मांगे तो खोयी हुई चीज वापस मिल जाती है। उसकी लड़की के गले से चांदी के तमगो वाला हार खलिहान मे खो गया था। गाजी पीर साहब के पास दुआ मांगने की मनौती करने पर वह खोया हार वापस मिल गया। इसलिए वह दुआ मांगने आया था।

उस दिन से वह लंबा-सा पत्थर सिंहल-ब्रह्मपुर गाव और उसके आसपास के गांवों में गाजीसा पीर के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो भी दधिवामन के दर्शन करने आता गाजीसा पीर को प्रणाम करना नहीं भूलता था।

दधिवामन मंदिर के बेड़े की प्राचीरो की अभय-शीतल छाया में गाजी साहब की कब्र के चारों ओर अनगिनत लता-पौधों पर हिंदू-मुसलमान सस्कृति के समन्वय से लाल, पीले, नीले, गुलाबी फूल खिलने लगे थे और उसी समय कटक के लालबाग किले मे अमीर, उमराव, मनसबदार, काजी, खोजा और बक्सियो में खोर्धा और पुरुषोत्तम क्षेत्र पर हमले की बात चल रही थी। गाजी साहब की

तरह का पीर पैगंबर सिंहल-ब्रह्मपुर सरीखे एक मामूली गांव में काफिरों के हाथ कत्ल हो जाये, यह उनकी सहन सीमा के बाहर की बात थी।

पर उस समय नायब-नाजिम सरफराज ने ससुर सुजाउद्दीन के हुक्म से पटना आजिमाबाद पर फौज कूच कर दी थी। बिहार सूबे में उस समय तक सिर उठाते बड़ी अफगान शक्ति ने सुजाउद्दीन के अपने अनुचर सरदार अलीवर्दी के खिलाफ बगावत की थी। सुजाउद्दीन के हुक्म से सरफराज अलीवर्दी की सहायता करने गये थे। उनकी गैरहाजिरी में मधुराज्य मोर्चा पर आक्रमण करने का वे साहस नहीं कर रहे थे। इसलिये सब में सरफराज की वापसी की उत्कट प्रतीक्षा थी।

…इसी बीच गाजी साहब पीर गाजीसा से साजासा में नामांतरित हो गये थे। यह इस तरह हुआ था—

गाजी साहब कट्टर तो मुसलमान या धर्मांतरित मुसलमान थे इसलिये कुरान शरीफ की पाक आयतों के मुताबिक शराब छूते तक नहीं थे। पर उस समय के संतों की तरह कभी कभार भांग या गांजा के सेवन के प्रति उनमें वितृष्णा नहीं थी। एक बार किसी मुसलमान की कुछ कीमती चीजें खो गईं, और गाजीसा के पास मनौती के बाद उसे वापस मिल गईं। इसलिए वह सिरनी भोग चढ़ाने *सिंहल-ब्रह्मपुर आया था। मुसलमानों के यहां आकर पूजा करते समय एक दो* हिंदू भी जुट जाते हैं।

उस दिन भी पास के हमुआ गांव के नरि पलेइ, बधु राउत आदि भक्तजन उपस्थित थे। गाजीसा को सिरनी और प्रपानक का प्रसाद चढ़ाया जाने लगा तो वे अत्यंत आशान्वित हो उठे थे। प्रपानक से गांजे तक पहुंचने में न मालूम कितनी देर हुई होती, अगर अकस्मात् यह घटना न घटी होती। एक दिन नरि पलेइ का बूढ़ा बैल पता नहीं किधर खो गया। बैल के घर न लौटने तक रसोई बंद। जब तक वो घर न लौट आए तब तक का उपवास तो करना ही होगा। पलेइ के घर के बालिग नाबालिग सब बैल को ढूंढने के लिए घर से निकल पड़े। दिन भर की तलाश के बाद भी बैल नहीं मिला। उसी संकट काल में पलेइ ने सिंहल-ब्रह्मपुर गांव के गाजी पीर को याद किया। उन्होंने मन ही मन बैल के मिल जाने पर गाजी पीर के नाम मनौती चढ़ाने का संकल्प किया। आश्चर्य, बैल एक केवड़े के झाड़ के पास चरता हुआ पाया गया। वह बैल अपनी गुहाल को लौटने से पता नहीं कैसे विमुख हो गया था जिसमें उस पर किसी तरह का पुचकार या प्रहार

काम ही नहीं कर रहा था। अत में तीन चार ने कमर कस ली कि उसे ऊपर टेक कर ले जायेंगे। शायद इस बात का पता चल गया उस बैल को, जिससे वह गर्दन हिलाकर कान फटकाता हुआ उठ खडा हुआ और धीरे-धीरे चलने लगा। उसके बाद बृहस्पतिवार को पलेइ गाजी पीर की पूजा करने आडंवर के साथ आये, ऊदबत्ती और गाजे का धुआ मिलकर एकाकार हो गया।

उसी दिन से गाजीमा का नाम धीरे-धीरे अपभ्रंश होकर गाजमा बन गया। इसके बाद वहा मनौती चढाने वाले हिंदुओं की सख्या बढती गई। सब कुछ-न-कुछ खोकर पाने लगे। और पाने के बाद उत्सव करने गाजासा के पास पहुचने लगे। पर मुसलमानों को वहां गाजा पीना पसद नही था। वे कहते थे इस कब्र से थोड़ी दूर जाकर पीओ। सेमल की जो जड़ें अजगर की तरह पसर गई हैं उन पर बैठकर पीओ। गांजा पीने से मना कौन करता है? इस तरह की महफिलों में सम्मिलित कठ मे अच्युतानंद गुसाईं का भजन "तुर्की भजे अलेफ, हिंदू भजे अलेख" गाया जाता था।

पर उस समय खोर्धा के आकाश मे चील की भांति पख पसारे उड़ने वाले महा-काल पर किसी की दृष्टि नही थी।

दल लता पहाड़ से सटकर राउतपडा समीप ही सिहलगढ ब्रह्मपुर गाव। सिहल गाव राउतपड़ा के अधीन था। खोर्धा के चारों ओर व्यूह की तरह जिन दुर्गों को बसाया गया था, राउतपड़ागढ भी उन मे एक था। जिस दिन गाजी सुलतान बेग सिहल-ब्रह्मपुर गाव मे दधिवामन मदिर तोड़ने के लिये आया था उस दिन राम चंद्रदेव दललता जंगल मे शिकार खेलने के लिये आये हुये थे। समाचार मिलते ही वे राउतपडा गढ से कुछ तीरंदाज पाइकों को लेकर आये थे और उन्होंने मदिर की रक्षा जिस तरह की थी वह सबने देखा था।

मदिर भंजकों पर आक्रमण करते समय अपने को गुप्त रखने की चेष्टा राम चद्रदेव ने अवश्य की थी। पर यह बात गुप्त नही रह सकी। उस दिन स्वय राम चद्रदेव आये थे और उन्हीं के शराघात से गाज़ी मिया और उसके साथी मारे गये थे, यह बात लोक मुख से प्रचारित होकर खोर्धा और कटक तक पहुंच गई थी। रामचंद्र देव का इस घटना के साथ कुछ भी सपर्क नहीं है, उनके कलमा पढ कर मुसलमान बनने के बाद मे उनके मन में हिंदू मदिर और देव-देवियों के प्रति

श्रद्धा ही नहीं है—इसी बात को बार-बार दुहराया था रामचंद्र देव ने। पर नायब-नाजिम का वकील सोंधुमिया उसे सही मानता नहीं था। सोंधुमिया की रामचंद्र देव के प्रति सहानुभूति थी। सारी घटना को सुनकर वह अपने सिर को हिलाते हुए असहाय कंठ से 'तोबा…तोबा' कह रहा था।

तकीखां आजिमाबाद से लौटकर जब यह सब सुनेगा तो उस पर भी क्रोध से बरस पड़ेगा—इसमें कुछ भी संदेह नहीं था।

इसी दुश्चिंता से आंदोलित होकर रामचंद्र देव और सोंधुमिया खोर्धा के पथर-गड़ महल में बैठे थे। उनके बीच शतरंज का खेल जम ही नहीं रहा था। शतरंज पर वे दोनों मुहरों को बस इधर उधर ही कर रहे थे। सोंधुमिया आशंकित और चिंतित थे। आज तकीखां के कटक पहुचने पर जब पता चलेगा कि गाजी मियां मारे गये हैं, तो जो विस्फोट होगा और उससे जो आग भड़केगी उस पर सोचते हुए वे भयभीत हो रहे थे। पर एक निश्चित और अवश्यंभावी दुर्योग का सामना करने के बाद जैसे अपने आप मन की सारी शंकाएं, सब आतंक दूर हो जाते हैं और उनके स्थान पर स्वाभाविक रूप से साहस और धैर्य आ जाता है उसी तरह धैर्यशील होकर तकीखा का सामना करने के लिए रामचंद्र देव मन ही मन प्रस्तुत हो रहे थे। उनमे आतंक का भय नही था, उत्कंठा और उत्तेजना थी।

नायब-नाजिम तकीखा पहुचते ही खोर्धा पर आक्रमण करेगा, यह बात निश्चित थी। दक्षिण से टिकाली रघुनाथपुर को खोर्धा से अलग कर दिया गया है उसी दिन से खोर्धा को कटक सूबे मे शामिल करने की अभिलाषा तकीखा के मन मे है, यह बात स्पष्ट थी। अतीत मे मानसिंह, केशवदास, मारू आदि मुगल सेना-पतियो से लेकर खना-ए-दौरा तक के अनेक फौजदार और नायब-नाजिमो ने इसके लिए व्यर्थ प्रयास किया है। पर अब ! अब तो खोर्धा के पाइको का मनोबल भी तो नही है। बारबार लड़कर वह भी टूट गया है। इस पर खोर्धा प्राय प्रति-वर्ष दुर्भिक्ष, बाढ़ आदि से प्रपीडित होता आ रहा है। और पाइको को उनकी मासिक वृत्ति तक देने के लिए खोर्धा के राजकोष मे धन नही है।

जगन्नाथ के राजसेवक के रूप मे खोर्धा राजा के प्रति अठारह रजवाडो के सामंत राजाओ के मन मे जो श्रद्धा और सम्मान था; खडायत और दुर्गपतियो की जो अटूट विश्वस्तता थी वह भी अब नही थी। वे जब से धर्मांतरित हुए हैं, तब से उस अविचलित आनुगत्यपूर्ण निविड़ संपर्क मे भी दरार पड़ गयी है। उधर

कुमारो मे भी विद्रोह की आग सुलगने लगी थी, सिंहासन के लोभ से पितृहत्या तक करने मे वे कुंठित नही थे। इसलिये खोर्धा को मुगलबंदी बनाने का वही माहेंद्र मुहूर्त था, ऐसा विचार रामचंद्र देव के मन मे उठ रहा था।

चतुर तकीखा को इन सारी बातो का पता था। फिर भी कोई स्पष्ट राजनैतिक कारणो से खोर्धा पर फौरन आक्रमण करके उसे मुगलबंदी बनाना नही चाहता था। इसके लिये हिम्मत करना भी आसान न था। यही उसके पूर्ववर्ती नायब-नाजिम सुजाखां की भी नीति थी। खोर्धा राजा को पराधीन या पराजित करना संभव हो सकता है पर खोर्धा पर विजय पाना आसान नही था।

विपक्ष की सामरिक पराजय अपनी राजनैतिक विजय नही है। अकबर के दूरदर्शी सेनापति इस बात को अच्छी तरह समझ चुके थे। इसलिये वे खोर्धा के पाइको को मुगल साम्राज्य मे विपकंटक के रूप मे स्थापित करने की बजाय ओडिसा का अफगान शक्ति के विरुद्ध रक्षाकवच के रूप मे प्रयोग करना चाहते थे। इस मे वे आशानुरूप सफल भी हुए थे। उसी दिन से खोर्धा के प्रति मानसिंह की दूरदृष्टि संपन्न वह उदार नीति ही अपनाई जाती रही है। सुजाखा भी अत्यंत विश्वस्त की तरह उसी नीति का अनुसरण करता आया है।

इसी बीच बिहार और उत्तर ओड़िसा में अफगान शक्ति जिस तरह बढ रही थी, उस के साथ अगर खोर्धा के पाइक रजवाडो के सामंत राजा मिल जाएं तो ओडिसा से मुगल सत्ता निश्चिह्न हो जायगी, यह सुनिश्चित था। इसलिए खोर्धा और जगन्नाथ के विरुद्ध कोई अपरिणामदर्शी या मदांध कदम ठीक नही होगा। मुर्शिदाबाद से सुजाखा अपने दामाद तकीखां को इस की ताकीद करते आये हैं इसीलिए रामचंद्र देव को पराजित कर और बंदी बनाकर कटक लाये जाने के बाद भी उनके साथ बंधुत्वपूर्ण और सम्मानजनक व्यवहार ही किया गया था।

रामचंद्र देव के धर्मांतरित होकर हाफिज कादर बन जाने के बाद खोर्धा से काफिरो का राजत्व लोप हो गया और अब इस्लाम साम्राज्य प्रतिष्ठित हो जाएगा, तकीखा का ऐसा धार्मिक विश्वास भी था। पर इस्लाम साम्राज्य की प्रतिष्ठा की बजाय खोर्धा राज्य की सीमा के अंदर गाजीमिया जैसे पीर पैगंबर काफिरो के शराघात से शहीद बन जायेंगे, ऐसा तकीखा ने सोचा तक नही था। इसलिये बरदाश्त करना उसकेलिए आसान नही था। इसी बहाने तकीखां खोर्धा पर आक्रमण करके कोने-कोने में प्रतिहिंसा की वर्षा कर देगा, यह बात भी कुछ

हद तक निश्चिन्त-सी हो रही थी।

लोधु मियां बोले—"सामन्तराज के गुप्तचरों को खबर मिली है कि नायब-नाजिम तकी खां बहादुर रमजान के अंत तक कटक पहुंच जायेंगे। यह खबर मुर्शिदाबाद से आयी है।"

पर रामचन्द्रदेव उस आतंक से आतंकित नहीं हो रहे थे। उन्होंने आने वाले सारे दुर्योगों का सामना करने के लिये तैयार कर लिया था। बकसी बेगु भ्रमरवर के प्रच्छन्न षड्यन्त्र से और दुर्गपतियों का रामचन्द्र देव के प्रति उतना आनुगत्य नहीं था फिर भी अनेक रजवाड़े और दुर्गपति उनके प्रति श्रद्धावान थे।

सिहन-ब्रह्मपुर गाव मे जिस दिन से गाजी मिया की मौत हुई थी, उसी दिन से उन्होने गुप्त रूप से उन राजा और दुर्गपतियों के साथ सपर्क जोड़ लिया था। उसी दिन इसलिये लोधु मिया के अनजाने मे आठगढ़ के सामत राजा हरिचदन जगद्देव खोर्धा आये हुए थे। हरिचदन जगद्देव रामचद्र देव के समधी थे। रामचद्र देव के धर्मत्यागी होने के बाद भी उनके प्रति हरिचदन जगद्देव की वही श्रद्धा और अनुगतता बनी रही थी। वास्तव मे ओड़िशा भर मे रामचद्र देव के वे ही एक विश्वसनीय व्यक्ति थे।

उनके साथ कुराढ़मल और चपागढ़ के दुर्गपतियों को भी मत्रणा के लिए गुप्त रूप से आमत्रित किया गया था। विलब या कालक्षेपण के लिए और समय नही था। इसलिये उस दिन लोधु मिया के साथ शतरज खेलने का आग्रह भी उनमे नही था। लोधु मिया कब वहा से विदा लेकर जायेगा, वे इसी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

रामचद्र देव हाथ के मोहरे को नीचे फेंककर मखमली जूतो को घसीटते हुए अदर चले गये।

उस समय नमाज का समय हो गया था।

लोधु मिया अपने गजे सिर को सहलाते हुए उठकर नमाज पढने चले गये।

लोधु मिया के चले जाने के बाद अदर महल के निभृत कक्ष मे आठगढ के सामत जगन्नाथ हरिचदन जगद्देव, कुराढमल के पीताबर मगराज और चपागढ के शत्रुघ्न दलगजन को लेकर रामचद्र देव गुप्त मत्रणा करने लगे। खोर्धा पर तकी-खा का आक्रमण ही मत्रणा का विषय था। अब की बार तकीखा खोर्धा पर आक्रमण करेगा तो जगन्नाथ को कभी अक्षत नही छोड़ेगा। इसलिये अपनी रक्षा

मा ओर्धा की रक्षा की अपेक्षा जगन्नाथ की मर्यादा की रक्षा कैसे हो यही मुख्य समस्या बनी हुई थी। जब से टिकाली रघुनाथपुर आदि चिलिका के इलाके मुगलो के अधीन हो गये हैं तबसे चिलिका जगन्नाथ के लिये निरापद स्थान नही था। बाणपुर के राजा रामचंद्र देव के श्वसुर हैं, फिर भी जब से धर्मच्युत रामचंद्र देव को त्याग कर महारानी ललिता महादेई कुमारों सहित पिता के घर मे आश्रय लेकर रहने लगी हैं, तब से बाणपुर रामचंद्र देव के लिए एक निरापद स्थान नही रह गया है।

जगन्नाथ जगद्देव काले मरमर पत्थर से तराशी गयी एक मूर्ति की तरह निश्चल बैठे इसी विषय पर सोच रहे थे। ललाट पर उलझे हुये कुंचित केशों के नीचे भौहें संकुचित हो गयी थी। जगन्नाथ जगद्देव की काया जिस तरह विशाल थी उसी तरह विचारो में भी वे चरमवादी थे। वे असहिष्णु स्वर से अपनी गलमुच्छों को सहलाते हुए बोले—"तकीखां जगन्नाथ पर आक्रमण करे तो जगन्नाथ को पुरी से दूर रखना होगा। बिल्ली के अपने बच्चों को इधर-उधर छिपाने की तरह आज पुरुषोत्तमपुरी तो कल चिलिका करते रहने से कुछ लाभ नहीं होगा। जब तक ओड़िसा मे मुगल रहेंगे तब तक जगन्नाथजी अरण्यवासी होकर रहेंगे।"

उस पर चिंतित स्वर में रामचंद्र देव बोले—"पर अब कौन सा अरण्य उनके लिये निरापद है ?"

जगद्देव ने उत्तर दिया—"उसकी चिंता आप न करें। उस समय के आने पर वे खुद स्थान दिखायेंगे।"

पर रत्नसिंहासन को छोड़ कर जगन्नाथ किस अरण्य मे रहेंगे इसकी कल्पना तक करना उनके लिए संभव नही हो रहा था। उस समय कुराढमल के पीतांबर मगराज बोले—"जगन्नाथ रत्नसिंहासन छोडकर किसी जंगल में जायें? यह आप क्या कह रहे हैं, जगद्देव जी ?"

जगद्देव बोले—"एक दिन ऐसा भी तो था जब वही महारण्य जगन्नाथ का आवास बना हुआ था। विश्वाबसु तब शबरीनारायण के रूप मे उसकी पूजा करता था। जगन्नाथ फिर एक बार शबरीनारायण बनेंगे। इसमें चिंतित होने की क्या बात है ?"

रामचद्र देव की म्लान आखें चमक उठीं। जगद्देव से सुनी अभयवाणी ने उन

की दुश्चिंताओं को लघु बना दिया था। उस विषय पर शायद और भी आलोचना हुई होती। पर उस समय प्रतिहारी ने आकर बताया कि कोई बालू गांव से आया है और "प्रभु" से मिलना चाहता है। कहता है किसी सरदेई से पत्र लेकर आया है और वह उस पत्र को आपके अलावा और किसी को नहीं देगा। कुछ पागल-सा लगता है। नाम पूछने पर जगुनि बताता है।

बालुगांव! सरदेई! रामचंद्र देव हठात् कुछ समझ न सके। सरदेई नाम ने जैसे उनकी आंखों के सामने कोहरे का पर्दा-सा झुला दिया। उसी की पृष्ठभूमि पर धीरे-धीरे उद्भासित हो उठी—चिलिका तट की वह मानकुदा नामक उजड़ी हुई बस्ती की सड़क, वह जलदात्री, आश्रयदात्री, हास्यभासित और उसकी शृंगार-मयी मूर्ति।

पर बालूगांव की यह सरदेई कौन है!

रामचंद्र देव ने जगुनि को अंदर ले आने का आदेश दिया।

कुछ समय बाद जगुनि चारों ओर निर्बोध कौतूहल और विस्मय से देखते हुए अंदर पहुंचा, भेद और माया के पिंड की तरह, कहानी और उपकथा की भांति सुने हुये खोर्धा राजा रामचंद्र देव के पास सरदेई से पत्र लेकर आने की उत्तेजना उसके चेहरे पर प्रस्फुटित थी। आते समय सरदेई ने सतर्क कर दिया था जैसे सरदेई की चिट्ठी लेकर रामचंद्र देव के पास जाने की बात कहीं भी न खुले। छाजों की तरह उसके कानों में सोने की कुंडकी, गले में धागे में पिरोई गई सोने की धानकठियों की माला, हाथों में चांदी के मोटे-मोटे कड़े, लाल धोती और नीला अंगरखा उसके बदन पर फब रहे थे और उसके चेहरे को भोला बना रहे थे।

कोई भूमिका बांधे बिना ही उसने अंगरखे में से बांस की नली निकाली और उसके अंदर यत्नपूर्वक रखी चिट्ठी को निकालते हुए पूछा—"कौन हैं खोर्धा के महाराज?"

रामचंद्र देव ने उत्कंठित स्वर से पूछा—"कहां से आये हो? किसने यह चिट्ठी भेजी है हमारे पास?"

जगुनि बोला—"अजी आप उसे जानते नहीं, मेरी सरदेई ने भेजी है! और कौन भेजेगी? सरदेई ने मना किया है। मैं यह चिट्ठी खोर्धा महाराज के सिवा और किसी को भी नहीं दूंगा। उस दिन दो घुड़सवारों के पास से उसने चुराई है!...नहीं, नहीं सरदेई क्यों चुराएगी भला,—वह मेरे साथ और मैंने ही घोड़े

के पेट के नीचे से बंधी एक चमडे की थैली मे मे यह चिट्ठी निकाली है। बाप रे बाप ! क्या तूफान था उस दिन !... बिजलिका उफन कर गिर रही थी।"

यह सारी भूमिका रामचंद्र देव को प्रहेलिका सी लग रही थी। उनकी उत्कठा धीरे-धीरे बढ रही थी। उन्होंने लगभग लपक कर जगुनि के हाथ से पत्र को खीच लिया।...

आरंभ मे लिखा था—"म्लेच्छ हाफिज कादर के आठवें अंक, तूल दि. पांच"...रामचंद्र देव की उत्कठित आखें क्रमशः कुचित और कठोर होती गयी। पत्र पढ लेने के बाद वे प्रकोष्ठ के प्राचीर पर स्थित ढालों की ओर गभीर दृष्टि मे देखते हुए शायद आत्म विस्मृत हो गये थे।

उस दिन पुरी बालिसाही प्रासाद से वेणु भ्रमरवर ने जो पत्र महारानी ललिता देवी के नाम लिखा था, यह वही पत्र था। उनके दो अश्वारोही सैनिक जिस पत्र को बाणपुर अडगगढ पहुचाने जा रहे थे और उस तूफानी रात मे जगुनि के साथ सरदेई ने जिस पत्र को चुराया था उसी मे वेणु भ्रमरवर के हस्ताक्षर, मोहर चिकाकोल से आने वाली नजराने की रकम की राहजनी आदि भयानक षड्यंत्रो के स्वरूप की कल्पना कर रामचंद्र देव विस्मित हो गये। एक दुर्भेद प्रहेलिका के सारे सूत्र जैसे पल भर में ही उनके सामने खुल गये हो।

उस पत्र मे कोई दु सवाद की आशंका करके जगद्देव ने पूछा—"ऐसा क्या लिखा है भाई इस पत्र मे, कि आप इतने गभीर और चिंतित लग रहे हैं ?"

रामचद्र देव ने पत्र को उनकी ओर बढा दिया। पत्र के समाचार जानने के लिए पीतावर मगराज और शत्रुघ्न दलगजन भी उद्‌ग्रीव होकर बैठे थे। साथ-साथ उन्हो ने भी उस पत्र को पढ़ा।

जगद्देव ने पत्र पढकर गहरी सास ली और उसे लौटाते हुए बोले—"मुझे शक था भाई कि आपका बक्सी शकुनि है। मुझे सदेह हो रहा था, अब प्रमाण भी मिल गया।"

चंपागढ के शत्रुघ्न दलगंजन बोले—"दीवान भगी भ्रमरवर का बेटा वेणु भ्रमरवर और क्या होगा ? घर का भेदी ही तो लका ढाता है ! इसमे तकीखां को दोष देना वृथा है।"

रामचद्र देव ने अट्टहास किया। बोले—"हमारे पाइको को माहवारी देने के लिए हमारे पास पैसे नही थे। फिर बालेश्वर मे फिरगियो से बंदूकें भी खरीदनी

थी···इस सवारी पर सुंदर व्यवस्था करके बख्शी ने हमारा उपकार किया है।"

तो क्या रामचंद्र देव ने इस भयानक पग का मर्म ही नहीं समझा।

जगद्देव ने विस्मित स्वर में पूछा—"पर ये रुपये आपको कैसे मिलेंगे भाई ! इससे ज्यादा ही बंदूक खरीदेगा !"

रामचंद्र देव बोले—

"जब शेर हमारे सिर पर पोटला निश्चित है तो फिर कटहल भी क्यों न खाए ? क्यों, क्या कहते हैं ?"

पर कुराडमल को मगराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके पथरीले होंठों पर मुस्कान की एक क्षीण रेखा फूट पड़ी···वह धीरे-धीरे जगन्नाथ हरिचंदन, जगद्देव और शत्रुघ्न दलगजन के होंठों तक संक्रमित हो गयी।

रामचंद्र देव उस चिंता, दुश्चिंता और उत्तेजना के बीच प्राचीर पर बालों को देखते हुए स्वप्नमग्न से सोच रहे थे—"यह सरदेई कौन है ?"

उनकी आंखों के आगे चिलिका तट की वह उजड़ी हुई बस्ती और उस जलदात्री आश्रयदात्री, आभरणहीना उस विषादमयी नारी की छवि तैर गयी। पर वह तो मुगल लश्करों के भाले के आघात से उनकी आंखों के सामने ही गिर पड़ी थी। उस आत्माहुति को उस दिन असहाय दृष्टि से रामचंद्र देव ने देखा भर था। खोर्धा के महाराजा होकर भी अपने राज्य की सीमा के अंदर एक निराश्रय नारी के, जिसने उन्हें आश्रय दिया था, प्राणों की रक्षा तक नहीं कर पाये थे।

उस ग्लानिपूर्णस्मृति से रामचंद्र देव की आंखें विषण्ण हो उठीं। जगुनि की ओर उदास दृष्टि से देखते हुए उन्होंने पूछा—"तेरी सरदेई कौन है रे !"

जगुनि कौतूहलपूर्ण दृष्टि से घर की सजावट को और चित्रित उजले चित्रों को देख रहा था। रामचंद्र देव का प्रश्न सुन अप्रसन्न कंठ से बोला—"आश्चर्य है राज्य के सब लोग बालूगाव सराय की सरदेई को जानते हैं—पर महाराज को पता नहीं !"

रामचंद्र देव फिर अपने आपसे पूछने लगे—"कौन है यह सरदेई ! कौन !"

उनकी स्मृति में चिलिका तट के झाऊवन और खास के झुरमुटों में दीर्घसास का तूफान उठ रहा था।

पंचम परिच्छेद

1

पटना-आजिमाबाद में बगावत करने वाले अफगानों को शांत करके तकीखां रमजान के अंत तक लौटते हुए रास्ते में मुर्शिदाबाद से असदजंग का खिताब तथा पंद्रह हजार के ऊपर रुपये और पांच हजार की मनसबदारी लेकर राजीखुशी कटक पहुंच गया था।

इसके बाद शावाल महीने में ईद-उल्-फितर का त्यौहार है। ईद-उल्-फितर का नया चांद हिलाल-ए-ईद के उगने से लेकर दो दिन तक कटक हवेली में उत्सव मनाने का रिवाज है। पर पूर्वतन नायब-नाजिम सुजाउद्दौला सुजाउद्दीन मुहम्मद खां के समय से यह उत्सव सात दिनों तक मनाया जाता है। इस अवसर पर मुगलबंदी के जमीदार, इजारेदार, चौधरी, खास प्रजा और अनुगत तोहफा लेकर लालबाग आते हैं और खिलात या उपढौकनों से सम्मानित होकर लौटते हैं। कुरान शरीफ के अनुसार इस उत्सव के समय नृत्य गीत आदि चपलताएं निषिद्ध थीं। पर रमजान के महीने में इद-उल-अज्ञा का रोजा और आत्म-विग्रह कट्टर इस्लाम मजहब में मना है। फिर भी कटक हवेली में दूसरे त्यौहारों से ज्यादा आडंबर के साथ यह उत्सव मनाया जाता है। इसलिए मुर्शिदाबाद में अनेक कंटकित समस्याओं को छोड़ तकीखां कटक लौट आया था।

पर तकीखां के मन में स्फूर्ति नहीं थी। सुजाखां का अपना बेटा सरफराज खां जब से अपने दादा हुजूर जाफर खां-नासिर से प्राप्त सारे बंगला-बिहार-ओडिसा के मनसबों से अपने ही पिता के षड्यंत्रों के कारण वंचित हो गया था; तब से उसकी नजर कटक नायब-नाजिमी पर पड़ी थी। सरफराज अत्यंत सरल और निर्बोध प्रकृति का आदमी था। मुर्शिदाबाद दरबार में हाजी मुहम्मद की तरह कुछ कुचक्री मुसाहिबों के बहकावे में आकर वह बंगला सीमा पर भद्रख पर हमला करने के ख्याल से ओड़िसा के अफगानों के साथ मशविरा कर रहा था।

यह खबर तकीखा को मुर्शिदाबाद ही से मिल गई थी। जलेश्वर और भद्रख से जो जानकार लोग आ रहे थे उन्हीं से इस उद्वेग भरी बात की जानकारी मिल रही थी कि वहा अफगान सिर उठाने लगे हैं। उधर जलेश्वर बदरगाह में उगनी टिकाते-टिकाते बाहें घुमाने की तरह अग्रेज भी धीरे-धीरे अपनी जगह बना रहे थे। वहा अग्रेज मुगल फौजदारों को भी आखें दिखाने लगे थे। कटक हरीजपुर बदरगाह में भी उनका अड्डा जम चुका था। बगावत करनेवाले इन्हीं जगहों में आत्मरक्षा करके मुगल प्रभुत्व के प्रति हरदम एक खतरा बने हुए थे। ओडिशा के रजवाड़ों को वे बदूक आदि हथियार बेच रहे हैं यह भी सुनने में आता था। इन सारी चिंता और दुश्चिंताओं से तकीखा का मन बोझिल रहता था।

उस पर लाल बाग में पैर धरते ही उसने सुना कि सिहल-ब्रह्मपुर गाव मे गाजी सुलतान बेग मदिर तोड़ते वक्त काफिरों के हाथों तीर से घायल होकर शहीद हो गये हैं। साथ ही खुद हाफिज कादर ने भी उन काफिरों का साथ दिया था, ऐसा महतासीब जुलफिकारखा के शिकायतनामे में बतलाया गया है।

महतासीब सैयद जुलफिकारखा बडे सैयद नही थे, फिर भी वे उलावी सैयद थे। धर्माधिकरणों की भाति कटक दरबार में जुलफिकारखा की काफी इज्जत थी।

औरगजेब के बाद दिल्ली शासन क्षेत्र में वे बहुत ही प्रभावशाली हो गये थे। उन्ही के निर्देशो से दिल्ली के बादशाह उठ-बैठ रहे थे। वास्तव मे वही दिल्ली मे बादशाहो के निर्माता थे। सैयद जुलफिकारखा उलावी सैयद थे फिर भी शाह-जहाबाद, दिल्ली और लालकिले के साथ उनका प्रभावशाली सपर्क था। गाजी सुलतान बेग जिस तरह सिहल-ब्रह्मपुर गाव मे मारे गये, वह उन्हे सारे इस्लाम के प्रति चुनौती-सी लगी।

महतासीब जुलफिकारखा अधेड उम्र के थे। इस्लाम के सदेशो का प्रचार करने के लिए उनकी तलवार की पकड ढीली नही पडती थी। मदिर के बाद मदिरो को तोडकर उनकी जगहो पर ममजिद और इमामवाडे बनाने की धार्मिक प्यास भी उनमे दिन-ब-दिन बढती जा रही थी। कटक सूबे मे कुरान शरीफ के निर्देशो का सही-सही पालन हो इसके प्रति वे सजग और सतर्क रहते थे।

महतासीब जुलफिकारखा से तकीखा तक डरता था। मुर्शिदाबाद से दिल्ली शाहजहाबाद तक हर प्रभावशाली [illegible] साथ उनका राजनैतिक सपर्क

था; उनकी धर्मनिष्ठा के साथ-साथ उनके कठोर चेहरे ने भी अपने लिए एक महत्वपूर्ण जगह बनायी थी। जुलफिकार दुबले शरीर के थे। बदन की चमड़ी सूखी-रूखी, चौड़ा, मुड़ा हुआ सिर, उभरे हुए माथे के नीचे चील जैसी लंबी नाक, केश रहित भौंहो के नीचे आखों मे शुचिता और धर्म-निष्ठा जैसे भट्टी की भांति जल रही थी।

महतासीव जुलफिकारखां तकीखा के सामने खड़े थे। एक हाथ से तसबीह फेरते हुए, दूसरे हाथ को जख्मी डैने की तरह हिलाते हुए कह रहे थे कि गाजी सुलतान बेग के कत्ल का बदला अगर नही लिया गया, खोर्धा को जलाकर राख नही बना दिया गया; खोर्धा की सूरत अगर कब्रिस्तान मे न बदली गई तो वे निजाम-उल-मुल्क से शिकायत करने से चूकेंगे नही। हाशिमखा, रसूलखां, वगैरह फौजदार और बक्सी भी उनका समर्थन कर रहे थे और जल्दी से जल्दी खोर्धे पर हमला करने को उकसा रहे थे। उनका मतलब जितना धार्मिक नही था, उतना आर्थिक था। वर्षों से हमले के नाम से लूट डकैती हो नही रही थी जिससे उनकी जमा पूजी भी सिमटती जा रही थी।

तकीखा ने सब सुना। अपना फैसला सुनाया कि इस साल भी हरसाल की तरह ईद-उल-फितर के लिए खोर्धा से हाफिज कादर आएगे, तब उन्हें कटक ही मे गिरफ्तार कर लिया जाये तो काम फतह। आजिमाबाद से लौटकर फौज थक गई है इसलिए अभी तुरत खोर्धा पर आक्रमण करना उनके लिए सभव नहीं है।

ईद-उल-फितर के लिए सिर्फ दो दिन ही रह गये थे। मुर्शिदाबाद से तकीखा जब मे लौटा है तब से मुबारकबाद देने मुगलबंदी के जमीदार, रजवाडो के सामंत राज-महाराजा, कटक सूबे के किलेदार और फौजदार यहां तक कि बालेश्वर, हरीशपुर और गजाम की फिरगी कोठियो के फिरंगी तक तोहफे लेकर आरहे हैं। लौटते समय अपनी-अपनी पदमर्यादा के अनुसार टीका, नवाबीहुदा, पगडी, जरीदार कपड़े आदि पाकर लौट रहे हैं। खोर्धा राजा हाफिज कादर आज आएगे कल आएंगे सोचकर सभी लालबाग मे प्रतीक्षारत बैठे हैं, फिर भी वे नही आ रहे हैं। बात क्या है इसका पता लगाने के लिए लोधु मिया के पास जिस खुफिया सिपाही को भेजा गया था, वह लौट आया है। बताता है कि खोर्धा मे ईद-उल-फितर मनाने की तैयारिया बड़ी धूमधाम से हो रही हैं और हाफिज कादर नायब-नाजिम

बहादुर से मिलने जल्द ही आएगे। उस समाचार के मिलते ही तकीखां और उसके पारिषद कुछ आश्वस्त हुए। पर ईद-उल-फितर जितना नजदीक आता गया हाफिज कादर के आने की सभावना उतनी ही दूर होती जा रही थी।

लालबाग के खास मजलिसखाने मे जरीदार मखमली गलीचे पर एक सिंहासन पर तकीखा बैठा था उसकी आखे अधमुदी थी। सिंहासन एक विमान की भाति दिख रहा था। सिंहासन के किनारो पर सोने की पत्तियो से जडे चार खभो पर मणिमुक्ता खचित एक गुबद स्थापित किया गया था। वह दिल्ली का मयूर सिंहासन नही था। पर दिल्ली के बादशाह मयूर सिंहासन पर उतने निश्चित आडंबर से बैठ नही सकते थे जितना चैन से तकीखा बैठा था। नायब-नाजिम के सिंहासन के दोनो ओर मखमल की कुर्सिया पड़ी थी। दरबार मे जो खास और अत्यत विश्वासपात्र थे वे ही उन पर बैठे हुए थे। सिंहासन के पीछे खडे खादिम और गुरजबदार मयूर पख के पखे झल रहे थे। सामने पड़े मखमली गलीचे पर सितार, तबला, सरोद, सारगी, तानपूरे वगैरह हरम के अदर भूली-बिसरी बादियो की तरह इधर-उधर बिखरे पडे थे। पिछली रात जलाये गये चिरागदान मे से कुछ अब भी जल रहे थे। तेल खतम हो आया था इसलिए उन चिरागो मे रोशनी टिमटिमा रही थी। दिनामार के फिरगियो से खरीदा हुआ झाड-फानूस छत पर से लटक रहा था। उसमे भी रोशनी धीमी नही पडी थी। मजलिसखाने मे पर्दे से छनकर आये मद-मद प्रकाश से इधर-उधर बिखरे हुए साज चमक रहे थे। पिछली रात की नाचने वालियो के जूडो से गिरकर फर्श पर इधर-उधर बिखरी पडी चमेली की मालाए मुरझा गयी थी। फिरगियो से खरीदी गयी शराब की लाल-नीली खाली बोतलें इधर-उधर मरे हुए सिपाहियो की तरह लुढकी पडी थी।

इन सब के बावजूद किसी के मन मे उत्सव की चचलता नही थी। खोर्धा से रामचद्र देव अगर आए होते तो उन्हे यहा बदी बनाकर खोर्धा पर आक्रमण की तैयारियो की उत्तेजना मे शायद उन्हे ईद-उल-फितर का पूरा मजा मिला होता। पर रामचद्र देव नही आए। वे आएगे या नही इसका भी पता नही चलता। जुल-फिकारखा आदि मुसाहिबो को यह बात ज्यादा चितित कर रही थी। तकीखा भी सिंहासन पर बैठे-बैठे यही चिता कर रहा था या चिता करते-करते सो गया था, इसका पता लगाना कठिन था।

सारंगगढ के कनिष्ठ थे पटिआ। अकबर के सेनापति मानसिंह के फैसले और टोडरमल के बदोबस्त के फलस्वरूप किस तरह मुकुद देव के उत्तराधिकारी खोर्धा सिंहासन से वंचित हो गये थे, और आली, सारगगढ आदि किलो को पाकर किस तरह मुह लटकाए पडे थे, वह इसके पहले ही वर्णित हो चुका है। कनिष्ठ छकड़ी भ्रमरवर को इससे सारगगढ मिला, उसी का कनिष्ठ अश पटिआ कुल मिलाकर बारह गावों ही मे सीमित रह गया। इसके अलावा मुगलबदी का साईविरी परगना भी उसी मे शामिल था। फिर भी पद्मनाभ देव "वीरश्री गजपति गौड़ेश्वर कर्णाटोत्कल वर्गेश्वर वीराधि वीरवर श्री-श्री-श्री पद्मनाभ देव" नाम से दलील, दस्तावेज और चिट्ठी-पत्रो मे अपना परिचय देते थे।

खोर्धा के प्रति उनका वात्सल्य जिस तरह प्रचड था, ज्येष्ठ अशी सारगगढ के प्रति उनमे ईर्ष्या भी उसी तरह उग्र थी। 'गढ' कहलानेवाले कटीले बासो के झाड़ो से घिरे कच्ची मिट्टी से बने अपने मकान के ऊचे बरामदे पर बैठकर जब पद्मनाभ देव खोर्धा राजवंश के प्रति अश्रव्य भाषा मे गालिया बरसाने लग जाते, या किस तरह पुरुषोत्तम देव ने अपनी युवरानी को पालकी मे बिठाकर दिल्ली भेजा था, जहांगीर के जनाना महल के लिए; उन विस्मृत बातो को अतिरजित करके दुहराने लग जाते—तब उनके पास खुशामद करने वाले और अनुगत रैयत उस बारबार कथित *कहानी को सुनकर कभी-कभार सोचते होंगे कि शायद पद्मनाभ देव ही खोर्धा राज* सिंहासन के सही उत्तराधिकारी हैं, जिन्हें वचित किया गया है। पद्मनाभ देव चीत्कार करते—"क्या है यदुवश ! निरर्थक बातें हैं ! ये क्या हम जैसे सूर्यवशी क्षत्रिय हैं ? ये भोई हैं भोई !—गजपति के गावो को देखा करते थे, उनके बही-खाते लिखा करते थे, पचाग रखते थे। जब मानसिंह ओडिसा आये, पुरी मे चदन यात्रा के समय कुछ भंगेडी पडो को लेकर भोई रमेई राउत ने रामचद्र देव बनकर उनसे खोर्धा की राजगद्दी पायी है। नहीं तो वे क्या हम जैसे सूर्यवशी क्षत्रिय हैं ? ये सब निहायत 'पाजिआ महांति' है। आली, सारगगढ़ वास्तव में गजपति के बगधर हैं।

ऐसे समय बरामदे की सीढ़ियो पर पड़े पत्थरों पर बैठे सुनने वाले उन्हें सशब्द प्रोत्साहित करते थे।

विश्वासघात से भोइयों को उत्पाटित करके खोर्धा राज सिंहासन पर अपने को प्रतिष्ठित कराने की अभिलाषा वेणु भ्रमरवर की तरह पद्मनाभ देव के मन में भी

थी। पर मुजाओं के वन में खोर्धा पर आक्रमण करके यह सब करना उनके लिए संभव नहीं था। इसलिए खोर्धा-पटिआ सीमा पर स्थित गांवों को एक के बाद एक जबरदस्ती दखल करके अपने राज्य की सीमा बढ़ाने में वे जुट पड़े थे।

इन्हीं कारणों से पद्मनाभ देव नायब-नाजिमों के प्रति विश्वस्त और अनुगत थे। पटिआ कटक और खोर्धा सीमा पर था। इसलिए भी उसे इस भौगोलिक अव-स्थिति के जरिए कूटनैतिक प्रधानता मिली थी। उन पर पांच साल का नजराना बाकी था। पटिआ के कुछ रैयतों को मारपीट करके जो कुछ भी वसूला जाता था वह 'गड़' के खर्चे के लिए कम पड़ता था। उस पर गजपति सकेतों के रूप में दो बुड्ढे हाथी, कुछ अरबी घोड़े, पालकी उठाने वाले, और कुछ खास कर्मचारियों का खर्चा भी देना पड़ता था। नजराने की रकम तो दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी। ईद-उल-फितर के समय नायब-नाजिम से मिलकर उनसे इस रकम की वसूली की मुद्दत बढ़ाने की कोशिश करना भी एक ऐसा मतलब था जिसके लिए वे मिलने आये थे।

पद्मनाभ देव तकीखां के पैरों को चूमकर पीछे हटकर झुककर कोरनिश करने के पहले ही तकीखां सिंहासन छोड़कर उठ आए और उन्हें आदर से बांहों में भरकर बोले—"आओ, आओ दोस्त आओ! कहो मिजाज कैसा है?" और तकीखां के इस तरह के बर्ताव और संभाषण ने औरों के साथ-साथ पद्मनाभ देव को भी चकित कर दिया।

फिलहाल खोर्धा राजा का मिजाज जैसा अनिश्चित लग रहा है उससे इस निर्बोध को अपनी मुट्ठी में रखने की आवश्यकता को तकीखां सही-सही समझता था।

पद्मनाभ देव के कुर्सी पर बैठते ही एक खोजा-खादिम उनके लाए उपढौकनों की सूची उच्च स्वर से पढ़ने लगा···नवाब भोग पुलाव के लिए चावल एक गाड़ी, चार बकरियां, घी एक मटकी, और अन्य सामान जिसे मारपीट करके रैयतों से छीना गया था। इस तरह की नालायक चीजों की सूची को खुदावंद नायब-नाजिम के मजलिस में पढ़ते हुए खोजा-खादिम हिचक-सा रहा था।

सूची के पढ़े जाने के बाद खादिम ने लाकर शराब का प्याला पेश किया और पद्मनाभ देव के सामने अर्पण करने की मुद्रा में खड़ा रहा। पद्मनाभ देव को मद्यगंध से क्षीण आर्तनाद-सा करते देख और 'शराब छूने तक नहीं' की आनुनासिक स्वर

की आकुलता को सुनकर खादिम शरबत और मेवा ले आया। पद्मनाभ देव एक ही सास मे शरबत पी गए और मेवा खाने लगे। इस बीच नायब-नाजिम से इशारा पाकर अदर से खादिम एक चादी की थाली मे एक थान रेशमी कपडा, बादशाही सिरोपा, और बीस नूरजहानी मुहर ले आया। उसने ये चीजें पद्मनाभ देव को भेंट की। अपनी दी हुई चीजो के बदले मे इतनी बडी रकम का उपहार मिलेगा, इसकी आशा तक पद्मनाभ देव ने की नही थी। उनकी आखे उन चीजो को देखकर चमक उठी। अपने ही हाथो से उन चीजो को समेट लेने की इच्छा से उनका चित्त व्याकुल हो उठा, हाथ चचल हो उठे।

बड़ी कठिनाई से उस इच्छा को दमित करके वे विनीत स्वर से बोले—"जहापनाह यावत् चद्रार्क कटक सूबे मे आपका ही राज हो।"

पर उस समय तकीखा सोच रहा था कि रामचद्र देव अब तक कैसे नही आए। खुले आम गद्दारी के सिवाय इसका और क्या मतलब हो सकता है? और उनका यह शक समय के साथ-साथ जड जमाता जा रहा था।

नीद से हठात् जागकर प्रलाप की तरह तकीखा ने हुकार किया—"हू!"

पारिषदो ने उनकी ओर चौककर देखा।

कोई निष्ठुर फैसला करने पर ही तकीखा इस तरह गरजता है।

तकीखा उस उत्तेजना मे पद्मनाभ देव की उपस्थिति को ही शायद भूल गया था। उसकी उगलिया यत्र की भाति इस बीच पद्मनाभ देव को विदा देने का इशारा कर चुकी थी। पद्मनाभ देव उस समय उपढौकनों की सामग्रियो को अपने साथ आये सेवको को पकडाकर तीन कदम पीछे हटकर कोरनिश कर रहे थे।

तकीखा सिहासन पर सीधा होकर बैठ गया। प्याज के छिलको की तरह रंगीन आखें खोलकर एक बार चारो ओर देखा और उठकर अंदर महल को चला गया।

यह सब आसन्न झझा के भयंकर शकुन थे।

पारिषदो ने उस उतकठित और उत्तेजनापूर्ण वातावरण मे एक-दूसरे को अर्थ-भरी दृष्टि से देखा।

लालबाग के दुर्ग के दक्षिणी भाग में रजिया बेगम अपने खास महल के अलिंद से काठजोड़ी की नीली जलराशि पर भवरियों को निहार रही थी। अलिंद के

प्रवेश पथ पर एक खोजा प्रहरी पत्थर की मूर्ति की भांति खड़ा था। मजिल के बाहर देवदार वीथिका शोभित गुलाब बाग के पत्र कुंजों से एक आहत आत्मा के क्रदन की तरह डाहुक का स्वर सुनाई पड़ रहा था। भरी गगरी से उड़ेले गए पानी की आवाज की तरह डाहुक के स्वर के थम जाने के बाद कहीं से एक कपोत आकर अपनी क्रंदन ध्वनि से उस वातावरण को मुखरित करने लगा। मजिल के कबूतरों की मीठी बोली के साथ दूर नौबतखाने मे शहनाई पर विलबित बागेश्वरी की मधुर आलाप-ध्वनि शात, शीतल हवा मे तैरती-सी आरही थी।

काठजोड़ी पर से बहकर आए मद-मद शीतल आर्द्र समीरण के मधुर स्पर्श से रजिया की सुर्मारजित आखों की आयत पखुड़िया मुंदी जा रही थी। उसी समय खोजा का स्वर मुखरित हो उठा—मुतामिन उल्-मुल्क अल्लाओदौला महम्मद तकीखा नासीर जंगखा बहादुर असदजंग !......

इस असमय रजिया मजिल की ओर क्यो आरहे हैं तकीखा, यह सोचकर निराधार आशंकाओ से रजिया का अत.स्थल काप उठा। पिछले कई दिनों से खोर्धा राजा रामचद्र देव के प्रति तकीखा को क्रोध और उन्हें बदी बनाकर खोर्धा को खास बनाने के लिए चल रही मत्रणाओं के बारे मे रजिया सुनती आ रही थी। तकीखा के इस आकस्मिक आगमन के कारण उनकी सारी शंकाए डैने फैलाकर उड़ने लगीं, देवदार के झाड़ों में चमगादड़ो के उड़ने की भाति।

तकीखां अहेतुक दर्प और मेद से फूले हुए गेंद की तरह आ रहा था और तवतत्र शिथिल कदमों से प्रागणो को पार करके अलिन्द तक पहुंच गया था। तकीखां को अचानक देख आतकित स्वर से रजिया ने उसका स्वागत किया—"पधारिए जहापनाह, खुशकिस्मत हूं कि आलीजाह ने इस बादी को बेवक्त याद किया !"

तकीखा की सतर्क दृष्टि मे आत्मरक्षा करने के प्रयास मे रजिया शयन कक्ष को चली गयी और मखमली आसन पर बैठकर पान बनाने लगी।

तकीखा रजिया के पीछे-पीछे आया और शायद चुप रहकर भी किस तरह बात शुरू करे यही सोच रहा था। कक्ष के अंदर इधर-उधर पदचारण करते हुए एक लाल पत्थर से बने स्तंभ की खूटी पर टंगे पिंजड़े मे बंद तोते को देखते हुए रुक गया।

तोता तकीखां को देख पिंजड़े के अदर डैने झाड़ने लगा। रजिया पान बनाती

हुई भर्त्सना भरे स्वर मे बोली—"बोल—बोल···ो······जहापनाह······ जहापनाह···!"

पर शायद आज वह उसकी बात मानना चाहता नही था। तकीखा वहां से उठकर एक श्वेत ममेर के आसन पर बैठ गया।

एक और अस्वस्तिकर मुहूर्त बीत गया। अचानक विस्फोट करता-सा तकीखा बोला—"ईद खत्म होने को आयी. इतने राजा महाराजा आए, पर हाफिज भैया अभी तक नही आए।"

रजिया ने सोचा अब नाटक करना ही होगा। नही तो बहुत सारे अप्रीतिकर सवालो का जवाब देना पड़ेगा। हाफिज कादर तकीखा की गैरहाजिरी मे आ-जारहे थे या नही; रजिया और उनमे पत्र व्यवहार था या नही, हाफिज कादर फिलहाल क्या कुछ कर रहे हैं, वगैरह कई सवालों का जवाब देना पड़ेगा। पर रजिया तो सोच रही थी कि हाफिज कादर के कटक छोड़कर जाने के बाद उन्हे भी शायद दिल से भुला दिया है। इसलिए इन सारे पीडा दायक प्रश्नों का उत्तर देने से अपने को बचाने की इच्छा से रजिया ने अपने मेंहदी रंगे हाथों से मुंह ढककर रोना शुरू कर दिया।

रजिया की तरह तकीखा भी एक हिंदू नारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। दोनो सुजाखा की सतानें थी। पर तकीखा जितना निष्ठुर और कठोर था रजिया उतनी ही कोमल थी। तकीखा सुन्नियो से बढ़कर धर्मांध था। उस पर दुर्धर्षिता, कूटबुद्धि और पाखड मे वह सुजाखा के अपने पुत्र सरफराजखा से भी बढ़कर था। इसलिए सुजाखा ने उसे अपने उत्तराधिकारी के रूप मे ओडिसा सूबे मे स्थापित किया था। दोनो के चरित्र के इस मौलिक प्रभेद के बावजूद तकीखा के मन मे रजिया के प्रति गहरी श्रद्धा और सहानुभूति थी। रजिया को रोती देख तकीखा ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"बस करो, रोओ नही शाहजादी, हमे मालूम है कि बदतमीज हाफिज कादर के न आने का तुम्हे भी गम है। इतना बड़ा त्यौहार और वह नही आए!"

रजिया ने देखा कि अभिनय का असर पड़ा है। उसने आसू पोंछे, और रोनी आवाज मे बोली—"मेरी बात छोड़िये जहापनाह, मैं तो बद-नसीब हू ही। आप मालिक हैं, ओड़िशा सूबे के *नायब-नाज़िम। खोर्धा के राजा आपकी खिदमत मे* हाजिर नही हुए, यह दु साहस है। हुजूर फौजदार भेजें जो उन्हे कैद कर लाए।"

तकीखा ने रजिया को अर्थभरी निगाह से देखा। यह विचारी क्या समझेगी कि ओड़िसा सूबे की राजनीति क्या है। अफगान बगावत करने को तुले हुए हैं। सरफराजखां की शनीदृष्टि भी अब कटक पर पड़ने लगी है। ओडिसा के जमीदार और रजवाड़ों के राजा-महाराजाओं की मति-गति भी अनिश्चित है। ऐसे समय अगर खोर्धा पर आक्रमण नहीं करके किसी तरह हाफिज कादर को कटक बुलाकर कैद कर लिया जाये तो···पर फौजदार के हाथों भेजी गयी खबर से अगर वह शक करे और कटक ही नहीं आए तो! नहीं आना ही स्वाभाविक लगता है। और इस समय खोर्धा पर आक्रमण करना भी असंभव है।

तकीखा बोला—"हाफिज भैया हमारे बिरादर हैं। फौजदार के हाथ, फिर ईद जैसे त्यौहार के समय उन्हें कैद करके लाना अच्छा नहीं लगता। तुम चिट्ठी लिखो शाहजादी···ऐसे लिखो कि हाफिज भैया जरूर आ जाए। त्यौहार खत्म होने को आया। उनका आना निहायत जरूरी है।"

उन दोनों की बातचीत के दौरान बराबर हाफिज कादर नाम सुनकर पिंजड़े मे तोता उछलने लगा था। इधर-उधर देखने लगा था। हाफिज कादर जब बारबाटी में थे तब यह तोता उनका अत्यंत प्रिय था। रजिया ने उसे 'खुदा हाफिज ! खुदा हाफिज !' कहना सिखाया था।

हाफिज कादर को देखते ही तोता 'खुदा हाफिज ! खुदा हाफिज' रटने लगता। अब उसने नाम सुनकर वही किया।

रजिया तोते को देखकर हंसती हुई बोली—"मेरी चिट्ठी यह तोता है। इसे देखते ही वे कहीं भी हों, कैसे भी हों बेशक चले आएंगे। आप किसी खोजे के हाथ इस तोते को खोर्धा भेज दें।"

पता नहीं वह तोता हाफिज कादर और रजिया की मोहब्बत का कैसा रहस्यमय संकेत था। पल से वह तोता अधिक संवेदनशील और शक्तिशाली है, इसमें तकीखा को शक नहीं था।

पिंजड़े के अंदर तोता एक बार तकीखा को और एक बार रजिया को सदिग्ध दृष्टि से देखकर···'खुदा हाफिज ! खुदा हाफिज' दोहराने लगा। फिर चुप हो गया। तकीखा और रजिया भी चुप थे, अपनी-अपनी चिंताओं में खोये हुए। उस समय शहनाई पर वागेश्वरी की मंद्रध्वनि और उस पर ताल की भांति

कबूतरों के स्वर के अलावा अन्य कोई शब्द सुनाई नही दे रहा था। चारो ओर गहन शांति थी···अशेष गाभीर्यपूर्ण नीरवता थी।

2

सिहल-ब्रह्मपुर गाव मे गाजी मिया पीर के मारे जाने के तुरत बाद, बाणपुर-सालेरी घाटियों मे चिकाकोल से आयी नजराने की रकम की राहजनी होने की खबर ने खोर्धा के कोने-कोने मे आतक फैला दिया था।

चिकाकोल से हाथी पर नजराने की रकम लेकर एक फौजदार कटक आ रहा था, साथ मे पचास के लगभग सैनिक थे। शाहजहाबाद दिल्ली से हर घडी रुपयों के लिए मुर्शिदाबाद खबर आ रही थी। उसी तर मुर्शिदाबाद से कटक को हर घडी ताकीद आ रही थी। ऐसे समय इतनी बडी भारी रकम की राहजनी हो जाने से बढकर और क्या खतरनाक बात हो सकती थी !

खोर्धा पर फिर मुगल हमला करेंगे, इस भय से सारा खोर्धा आतंकित था। घर-घर मे आग लगेगी, गाव के गाव उजड जाएगे, लोग अपने को बचाने के लिये जंगलो मे भागकर छिपेंगे, जिनके लिए जाना सभव नही होगा उनकी इज्जत मिट्टी मे मिल जाएगी···आदि अतीत की भयानक स्मृतियो के आधार पर खोर्धा के अधिवासी भय से कापने लगे थे। चारो ओर फिर से त्राहि-त्राहि मचने लगी थी।

पर इस आतक और आशंकाओ के बीच भी समस्त खोर्धा मे अगर कोई बेचैन नही था तो वह रामचद्र देव थे। यहा तक कि तकीखा के प्रतिनिधि लोधु मिया से लेकर उनके खलीफा गदाधर मगराज तक रामचंद्र देव पर आनेवाली विपत्ति के बारे मे सोचकर चिंतित लग रहे थे। पर स्वय रामचद्र देव के मन मे कोई चिंता नही थी।

ईद उत्सव के आमोद मे हाफिज कादर या रामचद्र देव फिरगी शराब की बोतलें खोल कर मशगूल थे। मजलिसखाने मे मखमली गलीचो पर रगीन तकियो के सहारे लेटकर रामचद्र देव सतुष्ट नजर आ रहे थे। उन्हीके सामने

लोधु मियां और गदाधर मंगराज बैठे थे। उन्ही के पास ग्रहविप्र कुशनायक बैठकर कुंडली बनाकर रामचद्र देव की जन्मपत्री पर विचार कर रहे थे। अनेक पोथियों को उलट-पुलटकर उनके कटक के लिये यात्रारंभ के शुभ मुहूर्त्त का निर्णय कर रहे थे। पर एक भी शुभ दिन या मुहूर्त्त निश्चित करना उनके लिए सभव नही हो रहा था।

तकीखा जब से मुर्शिदाबाद से लौट आए हैं तब से शुभ मुहूर्त्त का निश्चय नही हो पा रहा था इसलिए रामचद्र देव के लिए कटक जाना सभव नही हो पा रहा था। इस विषय के प्रति कम-से-कम लोधु मिया को शक नही था। योग लग्न या शुभ मुहूर्त्त के लिए उस समय मुसलमानों का जितना विश्वास था, उतना विश्वास हिंदू-सस्कार में पले रामचन्द्र देव की तरह के व्यक्तियो को भी नही था। सईद या माहेंद्र मुहूर्त्त जबतक नही आता तब तक मुगल फौजदार लड़ाई और हमला तक शुरू नही करते थे। वह माहेंद्र घड़ी नही आ रही थी, इसलिये रामचद्र देव तकीखां से मिलने नही जा रहे थे, ऐसा विश्वास अतत लोधु मिया को हो चला था। इसमें कोई चाल भी है ऐसा वे सोच ही नही सकते थे इसलिए उसी हिसाब से तकीखा को वाकियानवीसों के जरिये खबर भी भिजवायी थी।

पर क्या इतने दिनों तक वह घड़ी आ नही रही है? हो सकता है रामचंद्र देव की जन्मपत्री गलत हो या जो गणना ज्योतिषी कर रहे हैं वही त्रुटिपूर्ण हो! या वे सारी बातें लोधु मिया की आखो मे धूल झोंकने के लिए हों…ऐसा सोचते हुए एक सप्ताह तक मनाए जानेवाले ईद उत्सव के दिन जैसे-जैसे गुजरते जा जा रहे थे, तकीखा के मन मे उत्कंठा बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे शक भी बढ़ता जा रहा था।

लोधु मिया कापते हाथों से रामचंद्र देव के प्याले मे शराब भरने लगे तो उन्होंने शराबी जैसा अभिनय करके प्याले को हटा लिया और कापते, लड़खडाते स्वर में कहने लगे—"बस्-बस् रहने दें मिया साहब! आप लीजिये, मेरा मन ही नहीं करता। जब से नजराने की रकम की राहजनी हो गयी है तब से मुझे चैन ही नहो है। तकीखां हमारे बिरादर हैं, क्या सोचते होगे! आखिर यह लूट हमारे इलाके के अदर हुई है! जहापनाह, खुदावंद, कटक सूबे के मालिक नायब-नाजिम अपने बिरादर हैं इससे दु:ख ज्यादा होता है। इतना बडा त्यौहार खत्म होने को आया पर हम उन्हे मुह दिखाने लायक नही रहे।"

लोधु मिया अपने गेंद जैसे शरीर की अनेक भगिमा मे दोनायित करके रामचद्र देव के प्याले मे शराब भरने की कोशिश करने लगा। गद्दी पर लेटता-सा रहकर सात्वना देने लगा— 'आप फिक्र मत करें राजा बहादुर ! जिन्होंने यह लूट की है, अल्लाह हुजूर की मर्जी से जरूर जहन्नुम जाएगे, सौ बार जाएगे, लाख बार जाएगे।"

खलीफा गदाधर मगराज तकिये पर थप्पड मारते हुए कहने लगा— "अल्बता, अल्बता हुजूर !"

ग्रहविप्र एक ओर कुडली बनाकर गणना करते-करते भूलकर रुक गये और उन मतवालो की ओर कौतूहल भरी दृष्टि से देखने लगे। रामचद्र देव ने उन्हें सकेतपूर्ण दृष्टि से देखा और चीत्कार किया—"क्या बात है, सात दिन बीत गये पर एक भी शुभ घडी निश्चित करना आपके लिए अभी तक सभव नही हुआ।"

कुश नायक ने हाथ फेरकर बनायी हुई कुडली पोछ ली। एक-एक तालपत्री पोथी निकालकर उसके पन्ने पलटते हुए कापते स्वर मे बोले—"निकाल रहा हूं, निकाल रहा हू छामु ! यह तो मेरे हाथ की बात नही है। छामु की मेष राशि, भरणी नक्षत्र है…उस पर अभी बुध का प्रभाव है। धनु दो दिन के पहले किसी तरह भी शुभ मुहूर्त्त नही आ रहे हैं। मैं क्या कर सकता हू ! इसके लिए और भी देर लगेगी।"

चिंतित होकर कुश नायक ने फिर से कुण्डली बनायी।

लोधु मिया अपनी कोशिशो मे सफल हो गया। जब उसने देखा कि रामचद्र देव का प्याला भर गया है तब आनदित कठ से कहा—"सईद मिल जाएगा मेरे राजा…आज नही तो कल…पिओ…पिओ।"

रामचद्र देव ने दिखावे के लिए उस उत्सव अवसर के आमोद मे अपने को निमज्जित कर दिया था। पर हर पल जैसे अमगल की पदध्वनि सुनने के लिए कान लगाकर बैठे थे। इसलिए दबे कदमो मे प्रतिहारी का आना और डरते हुए मजलिस खाने के अंदर झाकना, यद्यपि लोधु मिया या गदाधर मगराज ने देखा नही, पर रामचंद्र देव ने देख लिया। वे उसी ओर आशकित दृष्टि से देखने लगे।

प्रतिहारी ने बताया—"कटक लालबाग किले से छामु से भेंट करने के लिए एक *खोजा आया* है।"

रामचंद्र देव जैसे अपने हृदय की धड़कनों को स्पष्ट सुन सके। पर उसी तरह की कोई खबर सुनने की प्रतीक्षा में वे कई दिनों से बैठे थे।

कटक से आये खोजे को अंदर ले आने का इशारे से आदेश देकर उन्होंने एक ही सांस में अपना प्याला खाली कर दिया और फिर तकिये के सहारे लेट गए, जैसे वे उन सारे व्यापारों में संपूर्ण रूप से निस्पृह, निरुद्विग्न और अनासक्त हैं।

कुछ देर बाद हाथों में पिंजड़ा लिये मुसलमानी पहनावे से सज्जित एक खोजा मजलिस खाने के अंदर आया और रामचंद्र देव के आगे कोरनिश करते हुए बोला—"शाहजादी रजिया बेगम ने हुजूर की खिदमत में इस तोते को भेजा है। खबर भेजी है कि आप कटक पधारें।"

तोता उस अपरिचित परिवेश को देख पिंजड़े के अंदर डैने फड़फड़ाते हुए कर्कश स्वर से चिल्लाने लगा। रामचंद्र देव के इशारे से खोजा ने पिंजड़े को उनके पास नीचे रख दिया। लोधु मियां और गदाधर मंगराज नशीली आखें मलते हुए शाहजादी से आये तोते को विस्मित आंखों से देख रहे थे। उस अद्भुत उढौकन का सांकेतिक अर्थ उस समय उन्होंने नहीं समझा, न ही रामचंद्र देव हठात् समझ सके।

तोते ने इधर-उधर देखा, अचानक रामचंद्र देव को देख बोलने लगा—

"खुदा हाफिज !"

उस परिचित संबोधन को सुन रामचंद्र देव की आखों के आगे बारबाटी दुर्ग के अपने बंदी-जीवन के सारे दृश्य तैर गए। इस तोते की भांति उन्हें भी एक दिन लोहे के पिंजड़े में बंद करके चिलिका तट के मालकुदा गांव से बाबाटी तक लाया गया था।

तोता बोल रहा था—"खुदा हाफिज !".

लोधु मियां प्रशंसापूर्ण स्वर से तोते की तारीफ करते हुए कह रहे थे—"शाहजादी का तोता बहुत शरीफ है, होशियार है।"

रामचंद्र देव गद्दे पर सीधे बैठ गए। लोधु मियां से बोले—"आप नायब-नाजिम बहादुर को खबर कर दें। सईद मिले न मिले हम कल ही कटक जाएंगे।"

पिंजड़े के अंदर तोता तब भी 'खुदा हाफिज—खुदा हाफिज' कर रहा था।

रजिया बेगम के उस प्रिय तोते को सहलाते हुए रामचंद्र देव ने पिंजड़े का द्वार खोल दिया। पर पिंजड़े का द्वार खुलते ही तोते ने इधर-उधर देखा और फुर्र से उड़कर बाहर चला गया।

दोनों हाथों को शून्य में हिलाते हुए ग्रोजा चिल्लाने लगा—"उड गया···उड़ गया···शाहजादी का तोता !"

लोधु मिया ने भी उसके आर्त्त स्वर के साथ स्वर मिलाकर वही दुहराया।

तब तक भीतरगढ प्रासाद के बाहर के कटीले बाग के झाडों को पार करते हुए तोता कही अदृश्य हो गया था।

रामचद्र देव निरर्थक हसी हसने लगे···जैसे शराब के नशे मे चूर हों। उनके अट्टहास की ध्वनि से भीतरगढ प्रासाद का मूर्च्छित परिवेश मुखरित हो गया। चारों ओर प्रतिध्वनि गूजने लगी।

पर दूसरे दिन न रामचद्र देव भीतरगढ प्रासाद मे थे और न कटक ही पहुंचे थे। शाहजादी के तोते की तरह वे भी उड गए थे जगलो और पहाड़ों की गोद मे।

3

लालबाग के दीवान-ए-खास मे दरबार लगा था। तकीखा के मनसद को घेरकर फौजदार, वजीर, महनासीब बैठे हुए थे। हिंदू अमीनचद आदि दूसरे पारिषद भी थे। दीवान-ए-खास के बाहर कडा पहरा था, अदर मक्खी तक का जाना असभव था।

सिहल-ब्रह्मपुर गाव मे पीर-मुजाहिद गाजी सुलतान बेग दिन-दहाड़े काफिरों के हाथ मारा जाना; चिकाकोल फौजदार पर सालेरी घाटी मे हमला करके नजराने की रकम की लूट हो जाना; उस पर तकीखा के प्रभुत्व का प्रत्याख्यान करके खोर्धा राजा का उनसे ईद के समय नही मिलना आदि सारी बातों की खबर अगर बगला-बिहार और ओडिसा के नवाब सुजाखा तक पहुच जाए तो यह निश्चित है कि ओडिसा मे तकीखा की नायब-नाजिमी पूरी हो गई। तकीखा की दुर्बलता के लिए ही ओडिसा मे मुगल-आधिपत्य विपन्न हुआ है, यह सुजाखा को बताने के लिए मुर्शिदाबाद और दिल्ली तक मे दुश्मनों की कमी नही थी।

तकीखां गुस्से में मिरगी के मरीज की तरह कांप रहा था। जब कांपने की तीव्रता बढ़ती थी तब पारिषदों में से कोई तकीखान के हाथों में शराब का प्याला पकड़ा देता था। उसी में से एक-आध घूंट भर लेने से उसकी कंपकपी कुछ थम जाती थी। बदतमीज रामचंद्र देव को कैद करके उसे क्या सजा दी जाए इसी पर वह उस समय सोच रहा था।

खोजा खबर लेकर गया है। रामचंद्र देव कब लाल बाग पहुंचेंगे, सब उसी की प्रतीक्षा करते हुए उत्कंठा से बैठे थे। न खोर्धा के राजा से और न खोजा से कोई खबर पहुंची और न उनमें से कोई कटक पहुंचा। इसी बात को लाल बाग का कोतवाल जबारखान बार-बार आकर दुहरा जाता था।

तकीखां अचानक विस्फोट की भांति चिल्लाया—"कंबख्त चिकाकोल फौजदार को बुलाओ!"

सालेरी घाटी में राहजनी से लुंठित, आहत, क्षताक्त होकर अपने साथ आए लश्करों को चिकाकोल वापस भेजकर फौजदार लाल बाग खबर पहुंचाने अकेला आया था। तब से उसे कैद कर लिया गया था। फौजदार की ही नालायकी और लापरवाही के कारण मुगलों की इज्जत की लूट हुई है, और अगर वह खुद रुपयों को हड़प करके बहाना बना रहा हो तो? साधारणत उस समय मुगल पदाधिकारियों के लिए दूसरों का विश्वास करना तो दूर की बात रही, वे अपने साये तक का विश्वास नहीं करते थे। उत्थान के लिए संग्राम के समय के सपने, आदर्शवाद और आत्म-विश्वास तक लोप हो जाते थे और उस विनाश के समय पदाधिकारियों में क्षमता, पदाधिकार और स्वार्थ का जो विकट श्वान-युद्ध छिड़ जाता था उससे किसी का अपने आप पर विश्वास करना असंभव हो जाता था।

मुगलशक्ति के पतन के समय दिल्ली से मुर्शिदाबाद, आजिमाबाद से कटक हर जगह ये लक्षण प्रकाशित हो चुके थे।

तकीखां ने फौजदार से राहजनी का शुरू से आखिर तक का पूरा हाल सुना नहीं था, न सुनने का उसमें धीरज था। फौजदार को हाथों में हथकड़ी और पैरों में साकलों से जकड़कर जब तकीखां के सामने पेश किया गया तब जूतों सहित व्यर्थ पैर पटककर गरजते हुए उसने पूछा—

"जब तुम चिकाकोल से आए, तब तुम्हारे साथ कितने लश्कर थे!"

फौजदार ने कांपते हुए बताया—"एक सौ घुड़सवार! दो हाथियों पर

खजाना लाद कर हम जंगली और पहाड़ी रास्ते से आ रहे थे। घुड़सवार हाथियों के आगे-पीछे, चल रहे थे। उन सब के पीछे मैं था।"

तकीखा ने पूछा—"उसके बाद ?"

फौजदार ने बताया—"शहंशाह मेहरबान, अल्लाहताला ही जानते हैं, हम किस तरह जल्द से जल्द लालबाग पहुंचें इसी कोशिश से रात-दिन एक करके रास्ते मे रुके बगैर आ रहे थे। हमारा डर सिर्फ छत्रद्वार घाटी के लिए था। पर हम बगैर खतरे के छत्रद्वार घाटी पार कर आए। बाणपुर पार करके सालेरी पहुंचे तब लगा शाम ढलने लगी थी। पर असल में घाटी मे कटीले बांस के घने झाडो और पहाड की आड के कारण दिन की रोशनी कम पड़ गयी थी। मैंने घुड़सवारो को हुक्म दिया कि किसी भी तरह घाटी पार करके हमें 'कुहुडीगढ' पहुंचना है, जो सरकार के खास इलाके में है। भोर नमाज के बाद अगर 'कुहुड़ी' से निकलते हैं तो आगे खोर्धा है, और दूसरे दिन हम कटक पहुंच जाएंगे।"

तकीखा मिरगी के दौरे से कांपने की भांति चिल्लाया—"ये सब क्या बक रहे हो ! हम जानना चाहते हैं, राहजनी किसने की, दुश्मनो की फौज कितनी थी !"

फौजदार ने बताया—"सालेरी घाटी में सामने के दस-बीस कदम के आगे और कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। हम उसी रास्ते पर चल रहे थे कि चारो ओर से तीर बरसने लगे और उसके साथ-साथ जहन्नुम के शैतानो की तरह 'जय जगरनात्' की गूंज से सारा जंगल भर गया। घोडो ने सवारो को कटीले झाडो मे उछाल फेंका, और इधर-उधर भाग छूटे। मैंने तलवार निकाल ली..."

फौजदार का कहना अधूरा रह गया। उसने अपने दोनो हाथोंसे घायल मुंह को ढक लिया और असहाय बच्चे की भांति रोने लगा।

तकीखा फिर चिल्लाया—"ठीक है, औरतो की तरह रोना बंद करो।"

महतासीब जुलफिकारखा कब से खोर्धा राजा के खिलाफ जहर उगलने का मौका ढूंढ रहा था। सही मौका सोचकर कह उठा—"काफिरो ने 'जय जगरनात्' चिल्लाते हुए खजाने की लूट की है। लेकिन जहांपनाह इसके लिए खोर्धा राजा के अलावा और कौन जिम्मेदार हो सकता है ! यह रकम सही सलामत कटक पहुंच जाए इसकी देख भाल करने की पूरी जिम्मेदारी खोर्धा के राजा पर देकर काफी

पहले ताकीद की गयी थी। उनके अलावा और लूट भी कौन सकता है ? हम मीर मुजाहिद की कुर्बानी को बरदाश्त कर सकते हैं पर इसे बरदाश्त करना नामुमकिन है।"

तकीखां फिर गुस्से से कांपने लगा। चिल्लाया—"इस कंबख्त हाफिज कादर की चमड़ी से चिमटी से रोआं-रोआं उखाड़ फेंकूगा और इस रकम की पाई-पाई वसूल लूंगा। उसके बाद खोर्धा खास होगा ! उसके बाद जगन्नाथ के टुकड़े-टुकड़े करके मिट्टी में मिला दूंगा।"…गुस्से से थर-थर कांपते हुए तकीखा और कुछ भी नही कह सका।

प्रतिशोध की योजना इसी से पूरी नही हो गयी। इसके बाद खोर्धा राजा को और क्या सजा दी जाएगी उस पर विचार हो रहा था कि थरथर कांपता हुआ खाली पिंजडा लेकर खोर्धा से वापस आया खोजा पहुंचा। दीवान-ए-खास के अंदर पहुंचते ही सबकी नजर उस पर टिकी रह गयी। "हाफिज कादर कहां है ? कहां तक पहुंचा है ?"—सब के कंठ से यह एक ही प्रश्न मानो एक साथ गूंज उठा।

खोजा ने कांपते स्वर में बताया—"खोर्धा राजा न मालूम किस ओर गायब हो गये खोर्धा किले में भी किसी को मालूम नहीं है।"

तकीखां गुस्से मे चिल्लाता हुआ बोला—"और शाहजादी का तोता ?"

खोजा ने बताया—"तोते को पिंजड़े का द्वार खोल कर राजा ने उड़ा दिया।"

पर शाहजादी के तोते को ही उसने उड़ाया नही है, उंगली दिखाकर तकीखां की हुकुमत की हंसी उडायी है। यह सोच कर तकीखां उठ खड़ा हुआ और गुस्से से ज्ञानशून्य होकर उसने दीवान-ए-खास के एक काले मरमर पत्थर के खंभे पर तलवार से वार किया, तलवार की चोट से खंभा झनझना उठा। खंभे से टकरा कर तलवार बीच मे से दो टुकड़े हो गयी। तकीखा ने टूटी हुई तलवार के अंश को जोर से पकड़ कर इस भांति देखा जैसे वह हाफिज कादर का कटा हुआ सिर हो।

तकीखा के गुस्से ने सब पारिषदों को स्तब्ध कर दिया। उन्होने हुक्म किया—"फौज-कूच की जाय !"

कटक हवेली मे हलचल मच गयी। खुद सरकार फौज लेकर कटक मे खोर्धा रवाना होंगे।

जिस समय तकीखा परमविक्रम अर्धचंद्रांकित पताका फहरा कर, गोलंदाज, पैदल फौज, अश्वारोही सैन्यों के साथ युद्ध यात्रा पर निकल रहे थे उस समय खोर्धा और बाकी की सीमा पर गहन अरण्यवेष्ठित दाडिमाल पर्वतो मे एक पर्वत-शिखर पर बैठे हुए पलातक रामचद्र देव पौष के अंत की आवरणहीन वन-भूमि के उदास सौंदर्य को मुग्ध दृष्टि से निहार रहे थे। इतने पक्षी, इतनी काकली, इतने आलोक इतने फूल और छाया, इतनी प्रशांति भी कहीं इस आशका प्रपीड़ित पृथ्वी पर सभव है? यह सोचकर वे अपने आप विस्मित हो रहे थे। वसत के नवीन किशलयों की सुषमा से मडित होने के पूर्व वनलक्ष्मी ने जैसे तपःक्लिष्टा अपर्णा का वेश धारण किया था। राशि-राशि सूखे पत्र पवन प्रवाह से सगीत की मृदु झकारसे वनस्थल को झकृत करते हुए तिर्यक रेखा से वृक्षो पर से भूमि पर झर रहे थे। जीवन-वृक्ष से झडने मे भी इतना आनंद है, मृत्यु भी इतनी सगीतमय हो सकती है, रिक्तता मे भी इतना ऐश्वर्य है···यह अनुभव रामचद्र देव के लिए एक आद्य अनुभव था। उनके आशका दग्ध ललाट पर दक्षिण पवन के मद-मधुर स्पर्श से आंखें तद्राच्छन्न होती जा रही थी।

···इतने पक्षी···इतनी काकली···परस्पर भिन्न···स्वतत्र···सबकी अपनी-अपनी स्वकीयता है। रामचंद्र देव जैसे खोर्धा के भविष्य औरतकीखा के आक्रमण की बात को एक पल के लिए भूल गये थे।

यह अवश्य प्रथम अवसर नही था, जब रामचद्र देव भीतरगढ़ प्रासाद को छोड़-कर वन-पर्वतो को भाग आए थे। अतीत में भी खोर्धा मे ऐसी घटना घटी हैं और बारबार इसकी पुनरावृत्ति हुई है। यह पलायन नही है, एक तरह से रण-कौशल है। शिशुपालगढ, धउलीगढ, रथीपुर गढ, आदि दुर्गों मे लडकर खोर्धा तक आते-आते मुगल फौज थक जाती है। तब तक खोर्धा और उसके चारो ओर को वेष्ठित कर रखने वाले दूसरे पाइक पीछे से उत्ताल लहरो की भाति आ जाते हैं। इस से मुगल फौज के लिए टिकना सभव नही होता है। अतीत मे मुगल बाहिनी बारबार परास्त हुई है। अबकी बार भी तकीखा की सेना उसी तरह पराजित होकर लौट जाएगी। इसमें रामचद्र देव को किंचिन्मात्र सदेह नही था। विशेषकर राहजनी से मिली रकम मे पाइको को उनका प्राप्य मिल गया है, फलतः उनकी शक्ति भी लौट आयी है और अपने स्वभाव के अनुसार वे पुन.सगठित हो गये हैं। मुगल सम्राट् अकबर की मृत्यु के बाद से अबतक खोर्धा के साथ मुगल फौज की इसी

तरह की आंख-मिचौनी चलती आ रही है। पर तकीखा के साथ प्रकाश्य शत्रुता खोर्धा की शांति के साथ-साथ जगन्नाथ को भी विपन्न कर सकती है। जगन्नाथ फिर से चिलिका आएंगे, फिर उन्हें आत्मरक्षा के लिए जंगलों में भटकना पड़ेगा··· यह विचार ही रामचंद्र देव के मन में दुश्चिंताओं का कारण बना हुआ था।

परंतु इसे भी कुछ देर के लिए रामचंद्र देव ने भुला दिया था।

कच्छप की पीठ की भांति लता-गुल्महीन पहाड़; उसके पीछे गहन दुर्गम कंटीले वास के झाड़ों के बीच कहीं-कहीं तेंदु, शाल, महानीम आदि बड़े-बड़े वृक्ष निमूली और सिहली लता से वेष्टित होकर भैरव साधकों की भांति प्रतीत हो रहे हैं। पहाड़ के पाददेश पर खड़े रहकर शिखर को देखने की चेष्टा करने में वह दिखाई नहीं पड़ता। उस पहाड़ को घेरकर पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशाओं में दाडमाल पर्वतमाला की शैलश्रेणी विराजित है। दक्षिण दिशा में मणिनाग पर्वत है और पश्चिम दिशा में स्थित खांडपड़ा पर्वतमाला एक-दूसरे के साथ परस्पर आलिंगनबद्ध होकर एक शैलावर्त्त की सृष्टि हुई है। दूर से यह शैलश्रेणी किसी अनिंदय सुषमा-शालिनी नीलवसना की अलसायी अंगलता और पीनोन्नत स्तनों की भांति प्रतीयमान होती है। परंतु उस पहाड पर से वह भयंकर और वनाकीर्ण लग रही है। पहाड़ को अर्धचंद्राकार वेष्टित करके रणनदी की एक शाखा दक्षिण दिशा की ओर बहती हुई जाकर महानदी के साथ मिली है। शैल दंतुरित नदीगर्भ को विदीर्ण करके जगह-जगह जल प्रपातों की सृष्टि हुई है और उसी में से पौष का क्षीण स्रोत नाचता हुआ बह गया है। इसने प्राकृतिक परिखा की तरह पहाड़ को एक दिशा से संरक्षित रखा है।

दो सौ वर्ष पहले पुरुषोत्तम क्षेत्र में शून्यवादी बौद्ध संयासियों पर हुए अकथनीय निर्यातन से जो अपने प्राणों की रक्षा कर पाए थे उन्होंने बाकी के इसी तरह के पहाड़ों पर आकर अपने साधन-भजन के पीठों की निर्विघ्न स्थापना की थी। इन पहाड़ों में जितनी गुफाएं हैं, वे ही उस समय उनकी आत्मरक्षा के आश्रयस्थल बने थे। इसलिए यह पहाड़ लोगों में शून्यगिरि के नाम से विदित है। लोक-विश्वास है कि घोर कलियुग के आनेपर शून्यदेही जगन्नाथ नीलकंदर तजकर इसी शून्यगिरि पर आ विराजेंगे। किसी निरंजन दास की मालिका पोथियों में ये सारी बातें लिखी हुई हैं, लोग बताते हैं।

सच भी तो है, जगन्नाथ आकर कुछ समय के लिए इसी शून्यगिरि पर विराजे थे। यह खोर्धा राजा पुरुषोत्तम देव के शासनकाल की घटना है। कटक की ओर से जब मुगल फौजदार मकरामखा ने खोर्धा पर हमला किया तब पुरी से जगन्नाथ के पलायन पथ को रोकने के लिए उसने निश्चित पथ पर सतर्क प्रहरियों की व्यवस्था करवायी थी। उसी से पुरुषोत्तम देव विग्रहो को छिपाकर इसी पहाड़ पर ले आए थे। अब भी उस पहाड़ की एक गुफा में जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के लिए वेदिका की भांति तीन पत्थर पड़े हैं। इसलिए प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा के दिन दूर-दूर से भक्त-जन उस दुर्गम गिरि-अरण्य पथ को पार करके आते हैं और उन शून्य वेदिकाओं की पूजा करते हैं। उस दिन शून्यगिरि का पाद देश लोकारण्य हो जाता है;—रणनदी की शिला-दन्तुरित शय्या पर मेला लगता है। राजा पुरुषोत्तम देव ने वहां श्रीजगन्नाथ जी के प्रमुख पहरेदार के रूप में अन्य सेवको के साथ अनेक दिनों तक अवस्थान किया था। मकरामखा ने उसी बीच खोर्धा पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया था। फिर वह बाणपुर की ओर बढ़ने लगा था। तब पुरुषोत्तम देव ने पीछे से आक्रमण किया और मकरामखा को परास्त कर दिया था। तब से वहां कभी भी जगन्नाथ लाये नहीं गये हैं, फिर भी खोर्धा के अनेक राजाओ ने मुगलों के आक्रमण के समय वहा आकर आत्मरक्षा की है।

रामचद्र देव ने भी तकीखा के आसन्न आक्रमण की आशका से कुछ सेनापति और सरदारो के साथ यहा आकर आश्रय लिया था; क्योंकि सामरिक दृष्टि से यह स्थान पूर्ण रूप से निरापद था। यही नही रजवाड़ों के राजाओ के साथ उस जगह से सपर्क स्थापित कर पाना अपेक्षाकृत आसान था।

रामचद्र देव अन्यमनस्क-भाव से पदचारण करते हुए उस शून्य गुहा के समीप आ गये थे। गुफा के दक्षिण मुखी होने के कारण मध्याह्न के आलोक से उसका अभ्यंतर आलोकित हो गया था। गुफा के सामने स्थित एक सघन पनस वृक्ष के पत्तो से छनकर आए पौष मध्याह्न के सूर्यालोक ने भूमि पर छाया-आलोक की विचित्र अल्पना बना रखी थी। गुफा के अंदर विग्रहो की वेदिकाओ पर गत-वर्ष के चढ़ाए हुए पूजा नैवेद्यो के रूप में पुण्यार्थियो द्वारा चित्रित अल्पनाओं के रहते हुए भी वेदिकाए शून्य लग रही थी। अतीत के अनेक सूखे पत्र-पुष्प वहा बिखरे पडे थे।

पल-भर मे जैसे वह शून्य परिवेश एक अचिंतनीय, अवर्णनीय पूर्णता में

ऐश्वर्यमय लगने लगा। उसी को देख आवेश से रामचंद्र देव के नयनो की क्लांत पखुड़िया मुंद गयीं और उन्होंने अंतस्थल मे एक अभिनव पुलक का अनुभव किया।

हठात् रामचंद्र देव ने स्मरण किया कि वे धर्मांतरित हुए है। वे धर्मच्युत हैं। जगन्नाथ के रत्नसिंहासन के पदतल से निर्वासित हुए हैं।

इसलिए प्रबल उत्कंठा के रहते भी उन्होंने गुफा के अदर प्रवेश नही किया और आखें मुंदे उस पणश वृक्ष के नीचे खडे रहे। उस समय उनके हृदय मे कोई प्रार्थना नही थी। मन मे प्राप्ति की कोई अभिलाषा नही थी। मुद्रित नयनो के अधकार-मय वलयों मे वे देख रहे थे कि उनका हृदय-सिंहासन भी रिक्त है; शून्य पड़ा है। वह सिंहासन संभवत: इस जीवन मे और पूर्ण नही होगा।

चारो ओर अकल्पनीय शून्यता छायी हुई है। ऊपर निर्मेघ आकाश पर भी शून्यता भरी हुई थी, तिलार्ध परिमित अंश भी शेष नही था। पौष के पत्र विरल वृक्षों से वही शून्यता राशि-राशि पत्तो के रूप मे झर रही थी।

न मालूम कब तक वे उसी तरह आत्मविस्मृत-से खड़े रहते। कटीले बास के झाड़ो मे से सूखे पत्तों पर पड़े मनुष्य पदशब्द से उनका निमग्न भाव टूट गया। अपने आप उनका हाथ कमर पर झूल रही तलवार पर चला गया और वह शब्द जिस ओर से आ रहा था उसी ओर दबे कदमों से वे धीरे-धीरे बढ़ने लगे।

मलिपड़ागढ़ के नरसिंह विशोई उर्द्धश्वास हो ऊपर आ रहे थे। रामचंद्र देव को देखते ही कहने लगे—"तकीखा के लश्कर शिशुपालगढ़ पर अधिकार करके अब धउलीगढ़ की ओर बढने लगे हैं। बक्सी वेणु भ्रमरवर कही लापता हो गए हैं। पाइको ने भी विद्रोह की घोषणा की है।

रामचन्द्र देव के चेहरे पर की कोमल रेखाएं एकाएक कठोर बन गयी। मांस पेशिया कठोर बन गयी। उन्होंने रूखे स्वर मे पूछा—"शिशुपालगढ़ मे क्या बक्सी ने तकीखान का प्रतिरोध नहीं किया?"

पौष की शीतल हवा मे भी फूट आये पसीने को बायें हाथ से पोछते हुए विशोई ने विपण्ण कंठ से बताया—"बक्सी और उनके पाइकों ने विद्रोह की घोषणा की है, छामु!" इसके बाद विस्तार से विशोई ने सब कुछ बताया।

पहले तकीखां के लश्कर शिशुपालगढ़ की सीमा पर भी पैर धरने का साहस नहीं कर रहे थे। अतीत मे अनेक बड़े-बड़े पराक्रमी फौजदार भी शिशुपालगढ़ के पाइको के सामने झुके हैं। काला पहाड़ इसी शिशुपालगढ़ के कारण ही लिंगराज

मदिर को छू नही सका था। इसलिए तकीखा के लश्कर अत्यंत आतंकित होकर शिशुपालगढ की ओर धीरे-धीरे बढ रहे थे। घटीले बास के जगल मे से शिशुपालगढ के मिट्टी से बने प्राचीर शिखर के अलावा और कुछ दिखाई नही दे रहा था। परन्तु प्राचीर पर एक भी तीरदाज, गोलदाज या बंदूक धारी पाइक नही था। सामना अगर किया होता तो अवरोध करने वालो की शक्ति की कल्पना करके तकीखा भी भयभीत हुआ होता, पर वहा उसे रोकने के लिए एक बिल्ली का बच्चा तक नही था। बास के झाड़ों की वेस्टनी मे शिशुपालगढ के प्राचीर जैसे तकीखा के हुकार का परिहास कर रहे थे अविचलित मौन से। गगुआ के जल मे बास के जगल की मौन छाया एक क्षीणतम तरग मे भी आंदोलित नही हो रही थी।

ऐसी परिस्थिति मे सब फौजदार अबारण आतक से किंकर्तव्यविमूढ हो गए थे। उनमे गढ की ओर बढने का साहस तक नही था। उस समय तकीखा ने अपने गोलदाजो को गोले चलाने का आदेश दिया। ऊटों से खीचकर लायी गयी गाडियो पर रखी तोपो से अधाधुध गोले बरसाने लगे। फिर भी शिशुपालगढ मे जीवन की कोई सूचना नही मिल रही थी। न ही वहा प्रतिरोध के उद्यम का कोई आभास था।

लश्कर जब गगुआ की जल परिखा को पार करते हुए आ रहे थे तब भी तीरंदाजो के अचूक तीरो की वर्षा नही हुई। शिशुपालगढ का सिंहद्वार खुला था। लश्कर 'अल्लाह हो अकबर' की ध्वनि के साथ गढ़ के अदर बन्याजल की तरह प्रवेश कर गये। बास के जगल मे से आग बढकर गढ के कई मकानो मे लग गयी थी। धुआ और बास की गाठो के फटने के शब्द के अलावा गढ के अदर और कोई शब्द नही था। काफी समय पहले बक्सी वेणु भ्रमरबर पाइको को लेकर गढ़ छोड़कर चले गये थे।

बिशोई ने बताया—"धउलीगढ भी गया समझें। उसके बाद रथीपुर। रथीपुर के बाद खोर्धा तो समीप ही है।"

रामचंद्र देव *स्वगतोक्ति की भांति स्वप्नाविष्ट स्वर से कहने लगे—"उसके* बाद खोर्धा अधिकार करके तकीखा पिपलि होते हुए पुरी की ओर बढ़ेगा।"

रामचंद्र देव ने सपने मे भी नही सोचा था कि बक्सी वेणु भ्रमरबर इस तरह *प्रतिरोध किए बिना शिशुपालगढ़ छोड़कर भाग निकलेंगे।* रामचद्र देव की

योजना थी; बक्सी अगर मर जाए तो भी लाभ है जीत जाए तो भी लाभ है। क्योंकि बचे तो संधि की शर्त के रूप में तकीखा बक्सी का कटा हुआ सर ही मागता और मर जाने पर एक अकृतज्ञ विश्वासघाती की अनुचित लालसा से खोर्धा को मुक्ति मिल जाती। उसके बाद धउलीगढ़! वहा से रथीपुर। इसी तरह प्रत्येक घाटी में प्रबल प्रतिरोध का सामना करते हुए बढ रहे तकीखां के पीछे से रामचद्र देव आक्रमण करते।

पर बक्सी की धूर्तता के कारण ये सारी योजनाएं रेत के महलों की तरह पल भर में ढह गयी। पर ऐसा होगा, इसकी आशंका रामचद्र देव के मन में कदाचित् नही थी।

रामचद्र देव बोले—"अब और यहा प्रतीक्षा करना निरर्थक है। खोर्धा चलना होगा। जो होगा वही हो जाएगा।"

पहाड के समीपवर्ती एक पलाश वृक्ष से रामचंद्र देव ने अपने घोड़े को बांध रखा था। वे उसी ओर अविचलित कदमों से बढने लगे।

शिशुपालगढ़ से दो क्रोश की दूरी पर दक्षिण पश्चिम दिशा मे सरदेई पुर गाव पडता है। जगन्नाथ सड़क के किनारे दया नदी के तट पर स्थित होने के कारण यह जगन्नाथ-यात्रियों का एक प्रधान आश्रय केन्द्र था। साल भर यहा की सरायों मे यात्रियो की भीड़ बनी रहती थी। गाव की सड़क पर टट्टू-घोडे, पालकियां और झालर वाली बैलगाड़िया चलती दिखाई देती थी। पर उस समय वह जनाकीर्ण गाव पूर्ण रूप से निर्जन और परित्यक्त-सा पड़ा था। गाव के निवासी अपने प्राण और मान की रक्षा करने के लिए गाव को गहन नीरवता के बीच छोड़कर चले गये थे। गाव की सड़क पर गायें और अन्य पशुओ के अलावा और कोई नही था। गाय-बछडे भी न जाने कैसे अशरीरी आतंक से आतंकित होकर घास को सूघकर चले जाते थे, मुंह लगाते ही नही थे। वे मिट्टी सूंघते हुए मौन छाया की तरह इधर-उधर भटक रहे थे। जिन गाय-बछड़ो को गुहाल में से मुक्त नही किया गया था उनके आतुरतापूर्ण रम्भाने के अलावा और कुछ सुनाई नही पडता था। उस मूर्छित, निर्वेदग्रस्त, परित्यक्त परिवेश पर पौष का शीतल पवन जैसे नैराश्य की अंतिम तूलिका चला रहा था।

सरदेई पुर गांव पार कर जाने पर धउली गाव पड़ता है। दया नदी की निर्दय वन्या, निष्ठुर तूफान, और दारिद्रय के गदाघात से टूटकर वहां के कुछ घर मिट्टी

मदिर को छू नही सका था। इसलिए तकीखा के लश्कर अत्यत आतंकित होकर शिशुपालगढ की ओर धीरे-धीरे वढ रहे थे। कटीले वास के जगल में से शिशुपालगढ के मिट्टी से बने प्राचीर शिखर के अलावा और कुछ दिखाई नही दे रहा था। परन्तु प्राचीर पर एक भी तीरदाज, गोलदाज या बंदूक धारी पाइक नही था। सामना अगर किया होता तो अवरोध करने वालो की शक्ति की कल्पना करके तकीखा भी भयभीत हुआ होता, पर वहा उसे रोकने के लिए एक बिल्ली का बच्चा तक नही था। वास के झाड़ों की वेस्टनी मे शिशुपालगढ के प्राचीर जैसे तकीखा के हुकार का परिहास कर रहे थे अविचलित मौन से। गगुआ के जल मे वास के जगल की मौन छाया एक क्षीणतम तरग में भी आदोलित नही हो रही थी।

ऐसी परिस्थिति मे सब फौजदार अकारण आतक से किंकर्त्तव्यविमूढ हो गए थे। उनमे गढ की ओर वढने का साहस तक नही था। उस समय तकीखा ने अपने गोलदाजो को गोले चलाने का आदेश दिया। ऊटो से खीचकर लायी गयी गाडियो पर रखी तोपो से अधाधुध गोले वरसाने लगे। फिर भी शिशुपालगढ़ मे जीवन की कोई सूचना नही मिल रही थी। न ही वहा प्रतिरोध के उद्यम का कोई आभास था।

लश्कर जब गगुआ की जल परिखा को पार करते हुए आ रहे थे तब भी तीरदाजो के अचूक तीरो की वर्षा नही हुई। शिशुपालगढ का सिंहद्वार खुला था। लश्कर 'अल्लाह हो अकवर' की ध्वनि के साथ गढ के अदर वन्याजल की तरह प्रवेश कर गये। वास के जगल मे से आग बढकर गढ के कई मकानो मे लग गयी थी। धुआ और वास की गाठो के फटने के शब्द के अलावा गढ के अंदर और कोई शब्द नही था। काफी समय पहले बक्सी वेणु भ्रमरवर पाइको को लेकर गढ छोडकर चले गये थे।

विशोई ने बताया—"धउलीगढ भी गया समझें। उसके वाद रथीपुर। रथीपुर के वाद खोर्धा तो समीप ही है।"

रामचद्र देव स्वगतोक्ति की भाति स्वप्नाविष्ट स्वर से कहने लगे—"उसके वाद खोर्धा अधिकार करके तकीखा पिपलि होते हुए पुरी की ओर बढेगा।"

रामचद्र देव ने सपने मे भी नही सोचा था कि बक्सी वेणु भ्रमरवर इस तरह प्रतिरोध किए बिना शिशुपालगढ छोड़कर भाग निकलेगे। रामचद्र देव की

योजना थी; वक्सी अगर मर जाए तो भी लाभ है जीत जाए तो भी लाभ है। क्योकि बचे तो संधि की शर्त के रूप मे तकीखां वक्सी का कटा हुआ सर ही मागता और मर जाने पर एक अकृतज्ञ विश्वासघाती की अनुचित लालसा से खोर्धा को मुक्ति मिल जाती। उसके बाद धउलीगढ ! वहा से रथीपुर। इसी तरह प्रत्येक घाटी मे प्रबल प्रतिरोध का सामना करते हुए बढ रहे तकीखां के पीछे से रामचंद्र देव आक्रमण करते।

पर बक्सी की धूर्त्तता के कारण ये सारी योजनाएं रेत के महलों की तरह पल भर मे ढह गयी। पर ऐसा होगा, इसकी आशंका रामचंद्र देव के मन में कदाचित् नही थी।

रामचंद्र देव बोले—"अब और यहा प्रतीक्षा करना निरर्थक है। खोर्धा चलना होगा। जो होगा वही हो जाएगा।"

पहाड़ के समीपवर्ती एक पलाश वृक्ष से रामचंद्र देव ने अपने घोड़े को बांध रखा था। वे उसी ओर अविचलित कदमो से बढ़ने लगे।

शिशुपालगढ से दो क्रोश की दूरी पर दक्षिण पश्चिम दिशा में सरदेई पुर गांव पडता है। जगन्नाथ सडक के किनारे दया नदी के तट पर स्थित होने के कारण यह जगन्नाथ-यात्रियों का एक प्रधान आश्रय केन्द्र था। साल भर यहां की सरायों मे यात्रियो की भीड़ बनी रहती थी। गांव की सड़क पर टट्टू-घोड़े, पालकियां और झालर वाली बैलगाड़िया चलती दिखाई देती थीं। पर उस समय वह जनाकीर्ण गाव पूर्ण रूप से निर्जन और परित्यक्त-सा पड़ा था। गाव के निवासी अपने प्राण और मान की रक्षा करने के लिए गाव को गहन नीरवता के बीच छोड़कर चले गये थे। गाव की सड़क पर गायें और अन्य पशुओं के अलावा और कोई नहीं था। गाय-बछडे भी न जाने कैसे अशरीरी आतंक से आतंकित होकर घास को सूंघकर चले जाते थे, मुंह लगाते ही नही थे। वे मिट्टी सूंघते हुए मौन छाया की तरह इधर-उधर भटक रहे थे। जिन गाय-बछड़ों को गुहाल में से मुक्त नहीं किया गया था उनके आतुरतापूर्ण रम्भाने के अलावा और कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। उस मूर्च्छित, निर्वेदग्रस्त, परित्यक्त परिवेश पर पौष का शीतल पवन जैसे नैराश्य की अंतिम तूलिका चला रहा था।

सरदेई पुर गाव पार कर जाने पर धउली गाव पड़ता है। दया नदी की निर्मम बन्या, निष्ठुर तूफान, और दारिद्र्य के पदाघात से टूटकर वहां के कुछ घर मिट्टी

में मिल जाने के पहले जैसे-तैसे सडे-गले एकआध बास के खम्भे के सहारे लटक कर रह गये थे। वर्षा से घरो के बरामदो की जगह-जगह मिट्टी धस गई थी। उस पर नयी मिट्टी की पुताई तक करना संभव नही हुआ था। समय नही था। मिट्टी, गोबर कौन-सी दुर्लभ चीजें हैं? पर उसके लिए किसी मे रुचि या इच्छा नही थी। इसलिए यह गाव भी मुगल लश्करो के भय से सारदेई पुर की तरह सूनापड़ा था। धउली पहाड के नीचे है धउली गाव। वह पहाड भी गुल्महीन पत्थर प्रातर-सा है। पर इसके पाददेश मे बास और बेंत का गहन जगल है। उसी के बीच मे से धउली गिरि पर धवलेश्वर मदिर तक एक पगडडी लहराते साप की भाति पड़ी हुई है।

धउली गिरि के दक्षिण मे अश्वत्थामा पहाड है। दोनो पहाड़ो के बीच गहन अरण्य है। अश्वत्थामा पहाड पर सम्राट अशोक के अनेक शिलालेख है। पर उन्हे लोग किसी महापुरुष की आगत-भविष्य लिपिया कहते है। कलियुग के अत मे लोग पत्थर की उस भाषा को पढ़ेंगे और समझेंगे। उसके बाद सतयुग आएगा। सब उस सतयुग पर आश लगाए बैठे है…यह तो कलयुग है…घोर कलियुग।

खोर्धा की सीमा पर धउलीगढ था इसलिए उसका सामरिक महत्त्व था। भोई रामचद्र देव के काल मे खोर्धा को घेरकर जिन दुर्गों का निर्माण हुआ था। उनमे से धउलीगढ भी एक था। पक्की ईंटो से इस दुर्ग का निर्माण हुआ था। इसलिए उसके स्थापत्य मे कोई उल्लेखनीय विशेषता नही थी। पाच सौ घुडसवार और लगभग दो हजार लश्कर वहा रहते थे। गढ के दुर्गपाल थे नवधन सामत राय। बक्सी के बहकावे मे आकर शिशुपालगढ की तरह इस गढ को भी शून्य करके नवधन के साथ-साथ अन्य सब सैनिक भी चले गये थे।

हा, धउली गिरि और अश्वत्थामा पहाड के बीच की सकीर्ण उपत्यका गहन अरण्यपूर्ण थी जिसके बीचोबीच धउलीगढ की इष्टदेवी महिषमर्दिनी दुर्गा का एक प्राचीन मदिर था। खोर्धा के सभी राजा विष्णु के उपासक थे फिर भी वे प्रतिवर्ष रजसक्रांति और दशहरे के समय वहाँ पूजा करने आते थे। समय-समय पर देवी को नरबलि भी चढ़ाई जाती थी, ऐसा अहेतुक भय भी लोगों मे था। इसलिए सरदेई पुर गाव के पूजक और सेवक के अलावा अन्य कोई भी भयसे उस मदिर की ओर नही जाता था। बेंत और ऊचे बास के झाड़ो से घिरे होने से हठात् उस मदिर पर किसी की दृष्टि भी नही पड़ती थी।

तकीखां शिशुपालगढ में लंका-दहन कांड समाप्त करके जिस समय लश्करों को लेकर धउलीगड की ओर बढ़ रहा था, उस समय वक्सी वेणुभ्रमरवर उसी मदिर में आत्मगोपन करके अभीष्ट सिद्धि के लिए पूजा कर रहे थे। एक नरमुंड के अस्थिपात्र मे दीया जला रहा था जिसके क्षीण प्रकाश से देवी अत्यन्त भयंकर लग रही थी।

वेदिका के नीचे स्थित यूपकाष्ट क्षीण दीपालोक से रक्तलोलुप दिखाई पड़ता था। अतीत मे अगणित वलियो के रक्त से वह यूप रक्ताभ दिख रहा था। कुशासन पर बैठे देवी-पूजक तांत्रिक गोविंद ब्रह्मचारी मन्त्र पाठ करते हुए आहुति दे रहे थे। गोविंद ब्रह्मचारी वृद्ध थे। चेहरे पर की स्वाभाविक पाशुलता पर यज्ञ शिखा के प्रखर प्रकाश ने उनके मुख-मडल को विवर्ण बना दिया था। उनके मुख-मडल पर शिरा-प्रशिराओ की अत्यधिक स्पष्टता और उभरी हुई हड्डियो के कारण मुख-मडल एक खप्पर का भ्रम पैदा कर रहा था। शुष्कचर्मावृत शीर्ण वक्ष पर रुद्राक्ष की माला गले से नाभि तक लटकी थी। उनके दक्षिण मे एक कुशासन पर वक्सी वेणुभ्रमरवर बैठे हुए थे, और मंत्र जाप कर रहे थे। दीप के आलोक से उनके मुंडित मस्तक, ललाट और मोटी-मोटी भौंहो से उनका मुख-मडल भी निष्प्राण-सा लग रहा था। वे निश्चल बैठे हुए थे। बीजमन्त्र का जाप करते समय उनके पृथुल अधरों के कंपन से ही जीवन की सूचना मिल रही थी।

मदिर के अभ्यतर प्रदेश मे अचानक एक छाया पडी तो धीरे-धीरे वक्सी ने आंखें खोलीं और गर्भगृह के नीचे द्वार की ओर देखा। वहां कृष्ण नरीद्र और उनके पीछे नवघन सामतराय खडे थे। उन्हे देखकर आसन त्याग करके उद्विग्न चित्त से वक्सी बाहर चले आये, और शकित स्वर मे उनके आने का कारण पूछा।

कृष्ण नरीद्र ने बताया कि रथीपुर गढ़ के पाइक भी मिल गये हैं। वहा भी तकीखा का प्रतिरोध करने कोई नही आएगा। भीतरगढ प्रासाद छोड़कर राजा भी कही चले गये हैं। यह समाचार लेकर नवघन सामतराय आए हैं।

वक्सी ने उल्लसित कंठ से प्रश्न किया—"तो राजा के भीतरगढ छोडकर चले जाने का संवाद सत्य है? खोर्धा मे भी पाइक मिल गए हैं क्या?"

नवघन ने उत्तर दिया—"मैं जगली पगडंडी पर खोर्धा से आ रहा हू। भीतरगढ प्रासाद में राजा नहीं हैं। खोर्धा की सड़को पर कौवे उड़ रहे हैं।"

वक्सी ने उत्तेजित कठ से 'जय मा भवानी' का नारा लगाया और बताया—"यही सुनहरी मौका है। खोर्धा सिहासन शून्य पड़ा है। अगर हम अब जाकर खोर्धा सिहासन को अपने अधिकार मे ले लेते हैं तो तकीखा के पहुचते ही उसके साथ किसी भी शर्त पर सधि कर लेंगे। उसके बाद खोर्धा का सिहासन अपनी मुट्ठी मे आ जाएगा। राजा अगर तकीखाँ के हाथो मारे नही जा रहे हैं तो सिहासन से तो गए ही।

कृष्ण नरींद्र और नवघन ने सोचा कि प्रस्ताव बुरा नही है। यहा इस जगल मे छिपे रहने के बजाय भीतरगढ महल मे तकीखा के स्वागत की तैयारिया करना कूटनीति और राजनीति की दृष्टि से अधिक लाभप्रद होगा।

कृष्ण नरींद्र बोले—"तब और देर करने से क्या लाभ ! तकीखा के लश्कर अब सरदेई पुर तक पहुच गए होगे। हमे अभी यहा से खोर्धा की ओर बढना होगा। इसके बाद फिर मौका मिले न मिले।"

कृष्ण नरींद्र की बात खत्म भी नही हो पायी थी कि खप्पर पर जल रहे दीये की लौ के गर्भ तक प्रसारित हो जाने के कारण अत्यधिक उत्ताप के फलस्वरूप खप्पर के फट जाने के कारण भयकर ध्वनि हुई। पूजा मे अवश्य ही कोई विघ्न उपस्थित हुआ है—गोविंद ब्रह्मचारी ने सोचा। पर उन्होने प्रकाशित नही किया। उस खप्पर के भग्नावशेष मे एक और दीया जलाकर उन्होंने फिर से मत्र-पाठ करना आरभ कर दिया। खप्पर के फटने का शब्द सुनकर वक्सी अदर आ गए, उनके पीछे-पीछे कृष्ण नरींद्र और नवघन भी अदर आ गये।

उसी समय देवी के मुकुट पर से चपा फूल नीचे गिर पडा जिसे नवघन ने उठा लिया और मस्तक पर लगाया। बोले—"देवी प्रसन्न हुई हैं, नही तो यह फूल ही नही गिरता। बक्सी सामत को अब खोर्धा सिहासन मिला ही समझें। यह निश्चित है।"

बक्सी ने देवी को साष्टाग प्रणाम किया और मनौती मानी कि अभीष्ट सिद्धि होने पर वे देवी के चरणो मे नरबलि चढाएगे।

गोविंद ब्रह्मचारी ने आखें खोलीं, एक बार देवी को और एक बार बक्सी को देखा। फिर मत्रोच्चारण करते हुए आहुति देने लगे।

बक्सी और अन्य लोग देवी को फिर से साष्टाग प्रणाम करके बाहर चले आए।

वे जब खोर्धा के भीतरगढ़ महल तक पहुंचे तब गढ संपूर्ण रूप से परित्यक्त-सा लग रहा था। तकीखा उस समय धउलीगढ पर अधिकार करके रथीपुर में डेरा डाले हुए था। खोर्धा की सड़कें जनशून्य थी। मुगल दंगे के भय से लोग खंडपड़ा, नयागढ, रणपुर आदि के जंगलो मे चले गए थे।

तकीखां खोर्धा पर अधिकार कर ले तो खोर्धा के पिंड पर ही अधिकार होगा, आत्मा पर नही। अतीत मे ऐसी घटना वारंवार घटी है। अब भी उसी की पुनरावृत्ति ही होगी। खोर्धा के निवासी वसी परिस्थितियों के अभ्यस्त हो गए थे।

बक्सी आदि दुर्ग जय करने के विक्रम के साथ भीतरगढ़ के सिंहद्वार के सामने घोड़ों पर से उतर पड़े। सिंहद्वार के काष्ठद्वार पर आघात करते ही वह भीतर से खुल गया।

गरजते हुए बक्सी के अंदर पहुंचते ही किसी नेपथ्य से रामचंद्र देव उन पर क्षुधित व्याघ्र की भाति कूद पड़े और गंभीर कंठ से आदेश दिया—"इन्हे बंदी बनाकर अंधेरी कोठरी में कैद करो।"

तब तक चीटियों की भांति रामचद्र देव के पाइको ने आकर उन सब को घेर लिया था।

धउलीगढ के जीर्ण प्राचीरों को अकारण दर्प से धूल में मिलाकर तकीखां रथीपुर मे गर्व से बैठा हुआ था। रथीपुर मे पांच हजार अश्वारोही और दस हजार पाइक रहते थे। खोर्धा का भीतरगढ महल राजाओ का आवासस्थल था। पर रथीपुर खोर्धा का मुख्य राजनैतिक और सामरिक केन्द्र था। वहा खोर्धा राजा के साथ अंतिम लडाई लड़ी जाएगी इसलिए तकीखा तैयार होकर आ गया था।

पर गुप्तचरो से पता चला कि खोर्धा राजा के पाइक शिशुपालगढ और धउली गढ की भाति रथीपुर भी छोड़कर चले गये हैं। गढ मे कौवे उड़ रहे हैं। पर इस समाचार को सुनकर हठात् तकीखा को विश्वास नही हुआ। जिस खोर्धा के पाइकों ने मानसिंह के समय से अब तक से डेढ सौ वर्षो में मुगलो के साथ वारंवार लड़कर दात खट्टे कर दिए थे, ये अब प्रतिरोध किये विना दुर्ग के बाद दुर्ग छोड़ कर चले जाएगे यह तकीखा ने सपने मे भी सोचा नही था।

इसलिए रथीपुर के समीप पहुंचने के बाद सम्मुख आक्रमण की आशंका से वह आगे नही बढ रहा था। वह आम के एक बगीचे में छावनी डालकर एक दिन बिता चुका था। फिर भी रथीपुर गढ से प्रतिरोध की कोई सूचना नही मिल रही थी।

रथीपुर गढ के बाह्य प्राचीर फिर भी स्पर्धित आस्फालन के रूप मे अविचलित अभिमान के साथ खड़े थे। तकीखां के आदेश से गोलदाज लश्करो ने प्राचीर तक को बारूद से सजाया था, फिर भी प्रतिरोध की कोई सूचना नही मिल रही थी। गढ तो शून्य और परित्यक्त होकर पडा था, प्रतिरोध कौन करता?

प्रमत्त शक्ति के क्रुद्ध आस्फालन के सामने आक्रांत के अविचलित मौन से बढ-कर विरक्तिजनक और धैर्यच्युतिकर और कुछ भी नही होता। रथीपुर गढ के निर्वाक प्राचीरो पर जैसे मुगल-द्रोही हाफिज कादर की स्पर्धित मूर्त्ति स्पष्ट नजर आ रही थी। तकीखा ने गढ के बाहर की दीवारो को तोपो से उडा देने का आदेश दिया।

तोपें गरजने लगी। गढ के उत्तरी प्राचीर धूल मे मिल गये। धूल और बारूद के धुए से कुछ समय के लिए गढ ही अदृश्य हो गया। तब जाकर तकीखा को विश्वास हुआ कि गढ वास्तव मे शून्य पडा है और उसने अपनी सेना सहित गढ में प्रवेश किया।

'राजा भीतरगढ महल छोडकर चले गए है। महल जनशून्य पड़ा है।' यह सवाद लेकर तकीखा के प्रतिनिधि लोधुमिया पहुंचे। उन्होंने सलाह दी कि अब परिश्रम करके खोर्धा जाना बेकार है। इससे खोर्धा की ओर बढने के बजाय वही रुककर हाफिज कादर को मृत या जीवित लाने के लिए तकीखा ने अपने फौजदार और सैनिको को चारो ओर भेज दिया था। पर कही भी हाफिज कादर का पता नही चल रहा था। गाव के गाव जनशून्य पडे थे…दुर्ग के दुर्ग परित्यक्त थे। निर्जन रात्रि मे दिग्भ्रात हो भटकने की तरह वे इधर-उधर निरर्थक भटककर रथीपुर लौट आए थे।

ऐसे समय एक दिन जब निष्फल क्रोध से तकीखां का हृदय कांप रहा था, तब एक लश्कर ने आकर बताया कि खुद हाफिज कादर जहापनाह से मिलने आए हैं। तकीखां के सभी पारिषदो और फौजदारो की स्तिमित, क्लात आखें हठात् एक उत्तेजना से स्पदित हो उठी। हाफिज कादर को अब क्या सजा मिलेगी यही

देखने-सुनने के लिए सब उत्कंठित होकर बैठे थे। पर उस खबर को सुनते ही तकीखां पहले अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सके।

उस समय रामचंद्र देव या हाफिजशराव के नशे में चूर होकर तकीखां के संमुख डगमगाते कदमो से आकर बिना किसी भूमिका के उसको अपनी बाहों में भरकर चिल्लाने लगे—

"मैं मुजरिम हूं। अपराधी हूं। मुझे कभी भी माफ न करें जहांपनाह ! मेरे बिरादर बड़े भैया, जहांपनाह के आगे मैंने काफी गुस्ताखी की है। आप मुझे शूली पर चढ़ा दें। हां, मुझे शूली पर चढ़ा दें।"

बात क्या हुई तकीखा कुछ समझ ही नहीं आ रहा था। रामचद्र देव उसी तरह प्रलाप कर रहे थे—"हाय रजिया बेगम्, शूली पर चढ़ने के पहले तुमसे भी आखिरी मुलाकात नहीं हो पाई।"

रामचंद्र देव ने तकीखां को छिपी दृष्टि से देखा। देखा कि उनके नाटकीय ढग ने तकीखां पर असर दिखाया है और उसे विभ्रांत किया है। उन्होने और भी ऊंचे स्वर में प्रलाप करना शुरू कर दिया—"और देर क्यों जहांपनाह, मैं वही हाफिज कादर हूं, आपका छोटा भाई; आपके सामने हाजिर हूं। आप अपने हाथों से मेरी गर्दन उड़ा दें। मैंने बेअदबी दिखाई है। मैं मुजरिम हूं।"

तकीखा किंकर्तव्यविमूढ होकर रामचद्र देव को एक आसन पर बिठाकर बोले —"होश मे आओ हाफिज कादर !"

रामचंद्र देव ने देखा उनकी दवा ने सही काम कर दिखलाया है। वे फिर मतवालेपन का नाटक करते हुए अपनी छाती पर हाथ पटकने लगे। कहने लगे··· "न होश मे हूं, न बेहोशी है। जब तक जहापनाह का एक भी दुश्मन जिंदा है तब तक हाफिज कादर होश मे नही रह सकता।"

तकीखां ने चीत्कार किया—"हाफिज कादर, यही तो मुसीबत है कि तुम ही मेरे दुश्मन हो। सिहल-ब्रह्मपुर गांव मे पीर-मुजाहिद गाजी सुलतान बेग का खून किसने किया है !"

रामचंद्र देव ने फिर से छाती पर हाथ पटका और बोले···"इंशा अल्लाह, पीर मुजाहिद गाजी सुलतान बेग की कुर्बानी से जन्नत मे एक और शहीद की गिनती बढ़ी, पर जहन्नुम का एक भी शैतान घटा नही।"

इस तरह के अस्पष्ट और अनिर्दिष्ट उत्तर मे तकीखां कुछ नही समझा। इस-

लिए और क्या, किस तरह पूछना है यह सोच न पाने के कारण रुष्ट कंठ से उसने पूछा—

"चिकाकोल फौजदार से खजाने की लूट का जिम्मेदार कौन है? अगर इस खून और राहजनी मे तुम्हारा हाथ नही होता तो तुम ईद के दिन कटक जरूर पहुंचते। क्यो छिपे रहे?"

रामचंद्र देव को जैसे इसी सुयोग की प्रतीक्षा थी। राहजनी का इल्जाम सुनते ही उन्होंने नाटकीय भगिमा मे अपने कुर्ते की जेब से बक्सी बैणुभ्रमरवर द्वारा ललिता देवी के नाम लिखित पत्र निकाल लिया और उसे तकीखा के मुंह के आगे हिलाते हुए कहने लगे—"खुदाबद, जहापनाह, आप दीन दुनिया के मालिक हैं। नजराने की रकम की लूट के लिए आप मुझे शूली पर चढाएं। पर जिस बदतमीज दुश्मन ने राहजनी की है, उस लुटेरे को भी कड़ी सजा मिलनी चाहिए। इस चिट्ठी मे सारी बात का सबूत है। रकम किसने लूटी, कौन दुश्मन है और कौन दोस्त···सब इस चिट्ठी मे है।"

इस भूमिका के बाद रामचद्र देव तकीखा के सामने पत्र को इस तरह हिला रहे थे कि वह और अधिक उतावला होता जा रहा था। रामचंद्र देव के हाथो से उसने लपककर पत्र छीन लिया।

चिट्ठी ओड़िआ मे लिखी गई थी इसलिए उसे पढकर समझना तकीखा के लिए कठिन था। जागीरदार मुशी अमीन चंद ने ओड़िसा मे रहकर ओडिआ भाषा और लिपि सीख ली थी। इसलिए तकीखा के दरबार मे उन्हे खोजा मुशी का पद मिला था। तकीखा अमीनचद की ओर चिट्ठी बढाते हुए बोले—"इस चिट्ठी मे क्या लिखा है, पढकर सुनाओ मुशी।"

अमीनचद रुक-रुककर एक-एक हरफ को पहचानते हुए चिट्ठी पढ रहे थे। "तब भागीरथी कुमार को सिंहासनासीन करके तकीखा के साथ सधि की जाएगी···"

चिट्ठी मे किसी सामान्य लश्कर या प्रजा की तरह अति तुच्छ और असम्मानित ढग से तकीखा का नाम लिया था। उसमे खान बहादुर असदजंग आदि पल्लवित प्रशस्तिया नही थी। यही सुनकर तकीखा गुस्से मे लाल हो गया और पैर पटकने लगा। अमीन चद पढ रहे थे—"वैसा अगर नही होगा तो खोर्धा से म्लेच्छ शासन का लोप होना असभव है।"

रामचंद्र देव सिर नवाकर तकीखा को कोरनिश करते हुए बोले—"जहांपनाह आप इस से समझ लें कि किसने खोर्धा पर से म्लेच्छ शासन हटाने के लिए तलवार उठाई है। पीर पैगंबर गाजी सुलतान बेग का खून किसने किया है। किसने नजराने की रकम की लूट की है। जहांपनाह के दोस्त कौन हैं और दुश्मन कौन हैं!"

तकीखां ने आसन पर से उठकर रामचंद्र देव को बांहों में भर लिया और उच्छ्वसित स्वर से बोला—"मुझे माफ करो बिरादर। मैंने बिना समझे तुम्हें कैद करने का हुक्म दे दिया था। अल्लाह ताला ही जानते हैं, कि मैं तुम्हें किस कदर दिल से चाहता हूं। तुम्हारी मनसूबेदारी पाच हजार से दस करने के लिए मैंने मुर्शिदाबाद मे नबाब साहब को कहा है। सही वक्त पर तुम्हें यार जंग का खिताब भी मिल जाएगा। पर बक्सी कहां है ? वक्सी के साथ जिन्होंने हाथ मिलाया है वे कहा हैं ?"

रामचंद्र देव ने बताया—' उन्होंने पाइकों को आपके खिलाफ बहकाया था। तब मैंने उन्हे कैद कर लिया और पाइको को ताकीद कर दिया है कि खोर्धा की मिट्टी इस्लाम के खून से कलंकित न होने पाये। मैं जब तक जिंदा हूं खोर्धा में क्या मुसलमान के खिलाफ मुसलमान तलवार उठाएगा ?"

दरबार मे बैठे सब पारिषदों ने एक साथ उनकी तारीफ की—"शाबास, क्या बात कही है आपने !"

रामचंद्र देव अपनी निर्दोषता का अभिनय करते हुए बोले—"इसलिए खोर्धा का प्रत्येक दुर्ग खाली पड़ा है। भीतरगढ़ मे भी आपका प्रतिरोध करने के लिए कोई नही है।" रामचंद्र देव के अभिनय से तकीखां का सारा संदेह दूर हो गया।

तकीखां विस्फोट के रूप मे फूट पड़ा—"बक्सी और दूसरे गद्दारों के कटे हुए सिर पेश करो फौरन। जब तक उनके सिर न देख लू यहां से छावनी ही नही उठेगी।"

तकीखा का हुक्म लेकर उसके कुछ विश्वस्त फौजदारों के साथ रामचंद्र देव रथीपुर गढ़ से खोर्धा की ओर चल पड़े।

यथा समय बक्सी वेणु भ्रमरवर, दीवान कृष्ण नरेंद्र और अन्य सरदारों के कटे हुए सिर एक बोरे मे भरकर तकीखा के हुजूर मे पेश किये गये। तकीखां ने समझा

कि अब मुगल प्रभुत्व निष्कंटक हो गया। रामचंद्र देव इसलिए अश्वस्त हुए कि जो कोटरगत आखें खोर्धा के आकाश मे धूमकेतु की भाति चमक रही थी और रामचद्र देव के प्रत्येक मुहूर्त्त को उत्कठित कर रही थी वे चिरकाल के लिए मुद गयी।

उसके बाद बाणपुर की ओर फौज बढाने की तैयारिया होने लगी। बाणपुर विद्रोहियों का एक और केंद्रस्थल था इसीलिए वहा के राजा सामंत जगन्नाथ मानसिंह को सजा देने की इच्छा थी तकीखा मे। पर रामचद्र देव ने बताया कि बाणपुर उनका बायें हाथ का खेल है। इसके लिए जहापनाह क्यों तकलीफ उठाएंगे। इस आश्वासन से फौजदार हाशिमखा को बाणपुर भेजकर तकीखा रथीपुर गढ से छावनी उठाकर कटक वापस चला आया।

खोर्धा ने फिर से स्वस्ति की सास ली।

षष्ठ परिच्छेद

1

लोक-वाणी के सहस्र मुख होते हैं। इसके साथ ही धुलिआ यात्रियों के पल्लवित प्रचार से यह आश्चर्यजनक बात देश के कोने-कोने में प्रचारित हो गयी थी कि जगन्नाथ अब श्रीमंदिर में नहीं हैं। नहीं हैं तो कहां चले गये ? कोई बता रहा था कि वे खोर्धा के जंगलों में हैं, तो कोई बता रहा था वे रूठ कर बड़दांड पर बैठ गये हैं। इसी तरह की अनेक बातें प्रचलित थीं। पर किसी ने यह सब अपनी आंखों से देखा नहीं था। परंतु जगन्नाथ अपने रत्नसिंहासन पर से त्रिभुवन की महत्ता को छोड़कर क्यों और किधर जाएंगे ? राज्य से मुगल-दंगे का भय भी जा चुका। खोर्धा राजा और नवाब में मेल हो गया है। मुगल-पठान अब घुटनों के बल सिर नवाए हुए हैं, इस समय जगन्नाथ श्रीमंदिर छोड़कर क्यों जाने लगे ! इसका एक तात्विक उत्तर यह भी सुनाई पड़ता था—"अरे भक्त के पुकारने पर रत्नसिंहासन पर बलियार भुज जगन्नाथ कैसे स्थिर रह पाएंगे ?" इस पर 'हरिबोल, बोल, हरिबोल' की उच्छ्‌वसित ध्वनि से सारे विचार और वितर्क नीरव हो जाते हैं।

यह रामचंद्र देव के नौवें अंक के मेष महीने की घटना है।

कुसुन साहू अपने बैलों के साथ प्रतिवर्ष तलहट्टी अंचलों में कांस्य, पीतल आदि के अनेक प्रकार के बर्तनों को लेकर वाणिज्य के लिए आते हैं। मिथुन महीने में रथयात्रा के समय उन बैलों पर मूंग,उड़द, चावल, नमक लादकर वापस चले जाते हैं। वही कुसुन साहू बता रहे थे कि जगन्नाथ श्रीमंदिर में नहीं हैं। अब साहू के मुंह से कौन सुनता है ! पर वही बात एक नहीं हजार मुंह से पल्लवित होकर कोने-कोने में प्रचारित हो गयी है।

इसलिए यात्रियों के गुमाश्ता कठमेकाप, पालिआ गोविंद महापात्र को लेकर जिस दिन मुगलबंदी के घोयामुलक के मंगल पुर गांव में सिर पर पगड़ी

बांधकर निर्माल्य अन्नप्रसाद बांटते हुए, जगन्नाथ के भजन गाते हुए घूम आए तो सही वृत्तांत जानने के लिए गांव के बीचों-बीच महापुरुष वटवृक्ष के नीचे भागवत घर के चारों ओर लोगों की काफी भीड़ जमा हो गयी।

मंगलपुर बार-बार आनेवाली बाढ़ों का अंचल है। चारों ओर नदियां, नाले एक-दूसरे से बंधे हुए-से हैं। बीच के जंगल, ताड़वन, नारियल और आम के बगीचे और बांस के झाड़ों के बीच कहीं-कहीं खेत नजर आते हैं। वहां पवन में बगूले भंवर उठाकर नाच रहे हैं। अब खेतों में हल चलने चाहिए। पर पुरुषोत्तम क्षेत्रपुरी से यात्री गुमाश्ताओं के मंगलपुर गांव में पदार्पण के समाचार से आस-पास के गांव के लोग भी मंगलपुर चले आ रहे हैं।

गांव के बीचों-बीच महापुरुष वटवृक्ष है। महापुरुष भजहरि दास ने वर्षों पहले इस वटवृक्ष के नीचे जीवित समाधि ली थी। महापुरुष की समाधि के रूप में परिष्कृत परिच्छन्न, गोबर की पुताई की हुई एक मिट्टी की वेदिका है। उस पर दो मानव आंखों के विशाल चित्र बनाए गये हैं। वेदिका के नीचे महापुरुष के खड़ाऊं को स्थापित किया गया है। लोग कहते हैं कि इसी खड़ाऊं को पहनकर, महापुरुष भजहरि दास अपनी महिमा के बल से त्रिभुवन यात्रा कर आते थे। लोग बताते हैं कि जिस दिन महा भजहरि दास ने समाधि ली, उन्हें किसी ने उस दिन पुरी मंदिर के बाइस पावच्छों पर, तो किसी ने पिपलि बाजार में घूमते हुए देखा था। किसी ने बालिअंता में तो किसी ने बारबाटी कटक में उन्हें देखा था। इस तरह की बातें लोगों से सुनने को मिलती हैं। पर मंगलपुर गांव के बुजुर्ग बताते हैं कि भजहरि दास समाधि लेने के सात दिन पहले इस वृक्ष के नीचे योगासन लगाकर बैठ गये थे। लोगों की आंखों को वही दिखाई दे रहा था। पर वास्तव में उस समय वे त्रिभुवन यात्रा कर रहे थे। इसलिए भजहरि दास की समाधि वेदिका से वहां रखे गये धूप-वर्षा खाए खड़ाऊं ही लोगों के लिए अधिक रहस्यमय थे। धीरे-धीरे समाधि के समीप ही एक भागवत घर का निर्माण हुआ था। असमय या भागवत-श्रवण के लिए आनेवाले अतिथियों को ठहराने के लिए, या गांव के कुछ मामलों का फैसला करने के लिए पंचों की बैठक, इजारेदार, अमीन या मालगुजारी वसूलने वाला कोई हिंदू कर्मचारी आए तो उन्हें ठहराने के लिए उस घर की आवश्यकता थी। अब वहीं आए हुए यात्री गुमाश्ता डेरा डाले हुए थे।

भागवत घर के बरामदे में एक चटाई बिछाकर उस पर कंठमेकाप और उनसे कुछ हटकर गोविंद महापात्र बैठे थे। उनके सिर पर पगड़ियां बंधी थीं। बदन पर गैरिक मिरजई कुर्ता और कंधों पर नामावली चद्दर। मंगल पुर और आस-पास के गावों से आए बुजुर्ग मुखियों ने उन्हें घेर लिया था। उनमें से कोई दोनों हाथ जोड़कर आंखों को गांजा या भक्ति में अर्धनिमीलित करके गुमाश्ताओं का वचनामृत पान कर रहा था, तो कोई वैसे ही ध्यानावस्थित-सा था। चिलम घूमता हुआ बार-बार कंठमेकाप के हाथों को लौट आता था, खोये बैल की भांति। बरामदे के नीचे आबाल-वृद्ध-वनिता सिर उठाए गुमाश्ताओं से कुछ सुनने को उद्‌ग्रीव बैठे हुए थे। भागवत घर की रंधनशाला में जो दो-एक व्यक्ति गुमाश्ताओं के लिए प्रसाद पका रहे थे और जो अकारण रंधनशाला की ओर जाकर उसे-इसे निरर्थक बुला रहे थे, वे भी पसीना पोंछकर बीच-बीच में एकाध क्षण रुककर कंठमेकाप की बातों को सुन जाते थे।

गत वर्ष पुरी की सड़कें प्रांतर-सी लग रही थीं। मुगल-दंगे के भय से पंचकोशी यात्रियों के सिवा दूर से आया हुआ एक भी यात्री दिखाई नहीं पड़ता था। पंडे हाथ बांधे बैठ गये थे। देव स्नान पूर्णिमा से लेकर श्री गुंडिचा यात्रा तक अनेक पर्व त्यौहार आएंगे। यात्री अगर आ जाएं तो पिछले वर्षों की क्षति-पूर्ति हो जाए।…सबने यही आशा लगा रखी थी। राज्य में मुगल-दंगा नहीं है। जगन्नाथ पतित पावन हुए हैं। यात्री गुमाश्तों के द्वारा इस वृत्तांत का वर्णन जिस भांति हो रहा था, उससे अब यात्री पुरी जाने के लिए अधीर हो रहे थे।

कंठमेकाप ने पूरे दम से कश खींचा। फिर आध्यात्मिक गांभीर्य के साथ धीरे-धीरे अर्धनिमीलित आंखों से देखते हुए और धूंआ निकालते हुए कहना आरंभ कर दिया—"तुम्हारे लिए झूठ…हमारे लिए सच…बात वैसी ही तो है। अब घोर कलियुग आ गया है। जिससे चकाडोला हाथ-पैर बांधे केवल आंखें खोलकर बैठे हैं। वही जगन्नाथ और बलराम दोनों भाई भक्तों की मानरक्षा के लिए सफेद-काले घोड़ों पर सवार होकर काँची अभियान को नहीं निकल पड़े थे क्या?"

'हरिबोल', 'बोल, हरिबोल' और हुलहुलि नाद से महापुरुष वट-वृक्ष के नीचे का जनपूर्ण परिवेश प्रकंपित हो उठा।

चिलम से एक कश और लेकर पानिआ गोविंद महापात्र कहने लगे—"अरे

भाई दूर की बात क्यों कह रहे हो ! दिव्य सिंह महाराज ने कवि दीनकृष्णदास को कारावास दिया। दास कह रहे थे कि कृष्ण के अलावा और किसी के नाम से वे कविता नहीं बनाएंगे इसमें राजा ने उन्हें बंदी बनाया। उस समय दास की प्रार्थना सुनकर जगन्नाथ प्रतिदिन बंदीशाला को नहीं जाते थे क्या ? राजा एक दिन बंदीशाला में प्रभु की रचना मात्रा देखकर दासजी को कारा मुक्त करके अपूर्व सम्मान के साथ ले गये; यह बात तो सबको ज्ञात है !"

तब तक गोविंद महापात्र के पास चिलम लौट आयी थी। उन्हें विश्रान्ति देने को मगलपुर गाव के मुखिया हरि भतपथी कहने लगे—"सबसे मुख्य है भक्ति। शास्त्रों मे लिखा है जिसका मन जितना बड़ा होता है उसके प्रभु भी उतने ही बड़े होते हैं।"

कंठमेकाप उसके बाद कहने लगे, "यह तो जानी हुई बात है। कि परमेश्वर के पोडपिठा से एक केश निकला। राजा बोले—हां, अरे सूपकार, इतना बड़ा अपराध किया है तूने ! अमृत भोजन में बाल गिराया है ?...कौन है ! इसे बंदीशाला में डाल दो। सूपकार बंदी बनाए गये। उसके बाद बलियार भुज ने राजा को स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि तू मेरे सूपकार को मुक्त कर दे नहीं तो मैं तेरे चढ़ाए नैवेद्यों का स्पर्श तक नहीं करूंगा। ठाकुर भोजन त्याग करके उपवासी रहने लगे। तब और क्या होता, राजा खुद बंदीशाला को जाकर सूपकार से मिले। बोले—मेरा अपराध क्षमा करें। मैं महापातकी हूं। और अपने हाथों से उन्हें मुक्त करके ले आए। उस दिन से परमेश्वर के लिए 'बाल भोग' की व्यवस्था हुई।"

मेकाप की बातें सुनते ही बरामदे के नीचे जितने लोग बैठे हुए थे वे एक साथ बोल उठे—"हरिबोल !"

औरतें आड में रहकर सुन रही थी। उन्होंने भी हुलहुलि ध्वनि की।

कठमेकाप गभीर आध्यात्मिक भाव से ऊपर देखते हुए धीरे-धीरे धुआ निकाल रहे थे।

मेकाप की बायी ओर मगलपुर गाव के प्रभावशाली वित्तवान रैयत पहली-विश्वाल बैठे थे। पहली विश्वाल साठ पार कर गये थे फिर भी शरीर गठीला था। हर साल वे रथ-यात्रा के समय पुरी चलने का विचार करते है। मात्र उस

समय मुगल-दंगा हो, या अपने निजी संसार के किसी दंगे के कारण ऐसी एक अनहोनी हो जाती कि उनके लिए पुरी श्रीक्षेत्र चलना असंभव हो जाता। जीवन में यही एक अभाव उनके मन को अशांत किये था। इसलिए यात्री गुमाश्ताओं के आने का समाचार सुनते ही जगन्नाथ के बारे में जानने के लिए वे अवश्य आ जाते थे। आज भी वे उसी तरह भागवत घर को आए थे, जगन्नाथ का वृत्तान्त सुनने के लिए। पर वे ऊंचा सुनते थे। इसलिए गुमाश्ता जब अत्यधिक भक्ति भाव से ऊंचे स्वर से कुछ कहते तब वे कुछ सुन लेते थे और कुछ समझें या न समझें दोनों हाथ जोड़कर ललाट पर लगाकर प्रणाम करते थे। उसके बाद निष्प्रभ आंखों से गुमाश्ता की ओर देखते हुए निश्चल मूर्ति की भांति बैठ जाते। उनका सिर उलटायी गयी हुंडी की भांति दिखाई दे रहा था, जिसके किनारों पर कुंचित सफेद केश थे। उनमे से एक गुच्छे में चोटी बांधी गयी थी। कानों में पहने हुए वजनदार बालों के कारण कान काफी नीचे झूल आये थे। चेहरे पर उम्र की अनेक रेखाएं पड़ गयी थीं। प्रभुता के प्रतीक के रूप में उनके हाथों में चांदी के दो कंगन थे। ललाट पर कोई तिलक नहीं था। गले में तीन काठ की कंठी मालाएं थी। गले में चंदन का एक छोटा-सा तिलक था। गले में अंगोछी को गलवस्त्र की तरह डालकर वे गुमाश्तों की ओर अपलक आंखों से देख रहे थे।

बिश्वाल वित्तवान थे। खेती के साथ-साथ कुछ वाणिज्य-व्यवसाय था। साहूकारी भी करते थे। पुरी आने से अवश्य ही दक्षिणा के रूप में उनसे यथेष्ट मिलता। मेकाप ने बिश्वाल की ओर देखकर पूछा—"इस वर्ष रथयात्रा के समय आओगे तो दादा! शास्त्रों में है, कलियुग का यह शरीर जल पर चंद्रमा की छाया की तरह है। आज है तो कल नहीं। उसके पहले एक बार चकाडोला को देख आओ तो मोक्ष ही मिल गया समझो। इधर से इस वर्ष अनेक जाएंगे। तुम भी दादी और बालगोपालों को लेकर आना।"

बिश्वाल अच्छी तरह सुन नहीं सके। मेकाप की ओर देखकर मुसकरा कर रह गये। पास बैठे एक ने बताया कि वे कुछ ऊंचा सुनते हैं। जोर से नहीं कहेंगे तो इन्हें सुनाई नहीं देगा। आप जोर से कहें।

ऊंचे स्वर मे पूर्व कथित बात को दोहराने के साथ-साथ मेकाप ने एक श्लोक सुनाया—

'अहो तत्क्षेत्र माहात्म्यं
गर्दभोऽपि चतुर्भुजः
यत्र प्रवेश मात्रेण
न कस्यापि पुनर्भवः

बोले—"श्रीक्षेत्र का माहात्म्य ऐसा है कि यहा मनुष्य तो मनुष्य गर्दभ तक चतुर्भुज बन जाते हैं।"

मेकाप की बातें सुन विश्वाल ने फिर हाथ जोड लिये और ललाट पर लगाकर अनेकानेक प्रणाम किये। उसके बाद दंतहीन मुह को हिलाते हुए कहने लगे—"चकाडोला जब तक स्वय नही खीच लेते तब तक जानेवाली बात मिथ्या है। जाऊंगा, जाऊंगा सोचकर इस धरती पर से धीरे-धीरे जाने की तैयारियां करने लगा हूं।"

मेकाप ने बताया—"इस वर्ष रथयात्रा के लिए अनेक यात्री आएगे। श्वेतद्वीप, मगद्वीप, नेपाल, काश्मीर, राढ़, गौड़, अवती, अंग, बंग, काशी, वृंदावन, कड्ला, महाराष्ट्र देश, बिहार, द्वारका, मथुरा…दूर-दूर से यात्री आएगें। फिर जगन्नाथ तो पतितपावन बने हैं।"

जगन्नाथ पतितपावन बने हैं सुनकर फिर से 'हरिबोल' की ध्वनि से वह स्थल प्रकपित हो उठा।

हरिबोल ध्वनि के थमते ही सबने याद किया कि जगन्नाथ श्रीमंदिर छोड गये हैं। अइठु दास ने पूछा—

"परमेशर मदिर में नही हैं, ऐसा सुना है।"

पालिआ गोविंद महापात्र भक्ति से आखें मूदकर थैली के अदर हाथ डालकर माला फेर रहे थे और अइठु दास की बात सुनकर आखें खोलकर आकाश से गिर पडे हों इस प्रकार बोले—"यह सब तलहट्टी लोगो की बात है। कुछ भी समझते नही हैं और अट-संट कह देते हैं। वह मदिर श्रीवत्स शाला मदिर है। परमेश्वर उस मदिर को छोड जाएं तो यह पृथ्वी और रहेगी क्या ? कलियुग के अत मे परमेश्वर रत्नवेदिका छोड़कर जाएंगे। कितनी बड़ी बात कह डाली 'ब्रेइपो' ने !"

अइठु दास अपराधी की तरह अप्रतिभ स्वर मे बोले—"कानो से सुनी हुई

बात है। कुमुन साहू उस दिन साआतरापुर हाट में हमारी नखिआमां के जेठ को बता रहा था। कितनी बडी बात कह डाली साहू ने।"

परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए गला साफ करके मेकाप कहने लगे— "जगन्नाथ पतितपावन बनकर गुमटी मे विराजमान हुए हैं। मंदिर छोड़कर कैसे जाएगे!"

अनेक स्वर से एक साथ प्रश्न उठा—

"जगन्नाथ फिर पतितपावन कैसे हुए?"

मेकाप ने बताया—"एक दिन परमेश्वर सान परीछा विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र को स्वप्न मे दर्शन देकर कहा कि मेरा परम भक्त खोर्धा का राजा यवन हो गया है। इसलिए अगर वह मेरे रत्नसिंहासन के पास नही आ सकता तो मैं भी और रत्नसिंहासन पर नही बैठ सकूंगा। राजा जहा से मेरा दर्शन कर सकता है मैं वही रहूंगा।"

सबने एक साथ पूछा—"तब ?"

मेकाप ने दोनों आखें अर्धनिमीलित करके वृत्तांत कहना आरंभ कर दिया— "तुम झूठ मान सकते हो पर हमारे लिये सच है। उस दिन चैत्र शुक्ल की दशमी तिथि थी। रात एक प्रहर बाकी थी कि मंदिर का द्वार खुला। शंख, नहवत, वीणा, शिगा, तूरी, घंटा, मृदंग आदि के स्वर सुनाई पड़े। भीतर दो महापात्र दीप लेकर आए और जय-विजय द्वार के अर्गलो की परीक्षा करने लगे। उसे खोला। सान परीछा के पीछे-पीछे अन्य सेवको ने भी 'मणिमा-मणिमा' पुकारते हुए प्रवेश किया। मुख्य द्वार तक जाते हुए दीप के मलिन आलोक मे सान परीछा ने देखा कि जय-विजय द्वार से मुख्यद्वार तक मुरझाए दवना और नागेश्वर फूल अल्पना की भांति बिखरे पड़े थे।

कैसी आश्चर्य चकित करनेवाली बात हुई। सान परीछा सोचकर पलभर के लिये स्तब्ध रह गये।

गत रात्रि के 'पहड़' के समय तो वे मदिर में उपस्थित थे। पहड़ के पहले मदिर का शोधन कार्य भी हुआ था। अब यह फूलो की पंखुड़ियां कहां से आयी?

उत्कंठित श्रोताओं ने फिर से एक साथ पूछा—"कैसे ?"

मेकाप तब तक बायें पैर की पिंडली पर दायें पैर की पिंडली टिकाकर आसन लगाये बैठे थे। पैरो मे पीड़ा होने लगी तो उन्होंने आसन बदला और कहना

ब वही जगन्नाथ भक्त के मान की रक्षा करने के लिए त्रिभुवन का सर्वोच्च न अपना रत्नसिंहासन तज कर सिंहद्वार की गुमटी में आकर यात्रियों की 'लि पर आसीन हुए हैं। भक्ति के सिंहद्वार पर स्वयं प्रभु भक्त बन कर ाजमान हुए हैं ! यही बात उनके चेतन और अवचेतन मन को आवेग के न से एकीभूत कर रही थी।

हरिबोल की हर्षध्वनि के प्रशमित हो जाने के बाद, बरामदे में बैठे-बैठे पान- ा लेकर पान बनाते हुए नाथ मिश्र ने सदिग्ध कठसे पूछा—"राजा तो जाति कर पठान बन गये हैं। वे किस तरह के राजसेवक हैं ? बक्सी वेणु भ्रमरवर मारे गये। राजा के लिये जगन्नाथ क्यों पतितपावन बने हैं ?"

नाथ मिश्र के इस सदेह ने विश्वासी भक्तो के मनको भी सदिग्ध जिज्ञासा से : दिया। उन्होने पूछा—"वह कैसे ?"

मेकाप ने बताया—"इसीलिये तो बलीयार भुज ने बताया कि मैं पतितपावन ा। नहीं तो मेरे परम सेवक को कौन पवित्र बनाएगा ? उसे मुक्ति किस से ागी ?'

उसके बाद नाथ मिश्र और क्या पूछें यह सोच नहीं पाए।

पर जिस खोर्धा राजा रामचंद्र देव के लिये स्वयं जगन्नाथ ने पतितपावन का फहरायी है, वे प्रभु के कितने बड़े भक्त नहीं है ? सब समवेत स्वर से नाद करने लगे···"जय जगन्नाथ की जय—जय खोर्धा राजा रामचंद्र देव जय।"

केवड़े के जगलो, बास के झाडो और नदी-नालो से घिरे तलहटी के मगलपुर । मे जगन्नाथ के पतितपावन रूप धारण करके सिंहद्वार की गुमटी पर आ ने के कारण जिस तरह रामचंद्र देव का जय-जयकार हो रहा था; उसी तरह ड़िसा के कोने-कोने मे रामचंद्र देव की जयध्वनि का उच्छ्वसित निनाद रित था। उसीसे जनसाधारण मे भी धीरे-धीरे उनके प्रति नूतन आनुगत्य जागरण होने लगा था।

जिसके प्रति जगन्नाथ का अनुग्रह होता है उसके वश-कुल निर्विशेष से ओड़िसा हासन उसी का होता है। ओड़िसा का सिंहासन, स्पर्द्धा, क्षमता, और अहंकार : नहीं, जगन्नाथ की सेवा और अनुग्रह भाजनता पर 'प्रतिष्ठित है। उसी से र्धा राजा रामचंद्र देव, धर्म तज कर मुसलमान बन गये हैं' यह प्रचार होते ही

उनके प्रति उनके पाइक, दुर्गनायक और जनसाधारण की अनुगतता धीरे-धीरे घटती जा रही थी। नायब-नाजिम तकीखां भी कटक में आश्वस्त होकर बैठे थे। यह जानकर कि रामचंद्र देव ओड़िसा के जनसाधारण से धीरे-धीरे विच्छिन्न होते जा रहे हैं। साथ-साथ खोर्धा सिंहासन के अभिलाषी वैरियों में भी आशाएं बंध रही थी पर जगन्नाथ के हठात् रामचंद्र देव के लिए सिंहद्वार पर आकर पतित-पावन के रूप में विराजित होने के दिन से रामचंद्र देव की प्रतिष्ठा धीरे-धीरे पुनरुज्जीवित होती जा रही थी। खोर्धा और मुगलबदी में इसी आश्चर्यजनक घटना के कारण साधारण जनता रामचंद्र देव के प्रति आकृष्ट होती जा रही थी।

2

अक्षय-तृतीया चली गयी है। स्नान पूर्णिमा के बाद से बाणपुर नीलाद्री-प्रसाद गढ़ में पुरुषोत्तम पुरी क्षेत्र की तरह जगन्नाथ की अणसर विधिका आरंभ हो जाता है। उसके बाद आषाढ़ शुक्ल-द्वितीया से रथयात्रा। साधारणतः अक्षय-तृतीया से लेकर श्रीगुंडिचा-बाहुड़ा यात्रा तक नीलाद्री-प्रसाद गढ़ उत्सव-मुखरित रहता है। बाणपुर के राजाओं के शाक्त होने पर भी नीलाद्री-प्रसाद गढ़ में रथयात्रा पारंपरिक विधि से समारोह के साथ मनाई जाती है। पर इस वर्ष फौजदार हाशिमखां की बाणपुर में तैयारियों के कारण नीलाद्री-प्रसाद गढ़ भी चक्रवात से आहत हो परित्यक्त सा लग रहा है।

मुगलदंगा शीघ्र होने वाला है इस भय से घर के दरवाजे पर ताला डाल कर, तथा जिनके घरों में किवाड़ नहीं हैं उनमें कुछ भी सटाकर बंद करके लोग जंगलों में चले गये हैं। सौ-सवासौ वर्षों से इसी दृश्य की आवृति यहां बारंबार होती आयी है। राजा जगन्नाथ प्रसाद मानसिंह ने भी नीलाद्री-प्रसाद गढ़ छोड़कर भालेरी की किसी गुफा में एक दुर्भेद्य दुर्ग को पलायन करके आश्रय लिया है। खोर्धा की महा-रानी ललिता महादेई भी अपने सेवक-सेविकाओं सहित वीरजाई-विलास गढ़ को चली गयी हैं। मानसिंह की कल्पना थी कि मुगल फौजदार हाशिमखां अगर भालेरी के उस दुर्भेद्य दुर्ग को तोड़ने का दुःसाहस करेगा तो अतीत में जिस तरह

मुगल फौजदार बाणपुर के कंध पाइको के पहाड़ी आक्रमण से तितर-बितर होते रहे हैं उसी तरह इस बार भी होंगे।

यह इतिहास भी हाशिमखां को अज्ञात नही था। इसलिए वह नीलाद्री-प्रसाद गढ़ मे कुछ दिन के लिए छावनी डालकर और कुछ लूट-पाट करके, राजा गोविंद मानसिंह के समय बने श्री जगन्नाथ मंदिर को तोड़कर तथा अपनी एक लश्कर वाहिनी को छोड़कर दक्षिण के बकाड़ की ओर लौट गया था। पर मुगल-दंगे की आशका बनी हुई थी। इसलिए लोग नीलाद्री-प्रसाद के अपने घरो को वापस नही लौटे थे, या राजा भी आए नही थे।

नीलाद्री-प्रसाद गढ़ की सड़कें सूनी पड़ी थी। जैसे विपत्ति का अत ही नही था। पिछली रात तूफान और चक्रवात आया था। उसी तूफान से सड़को के पुराने करज, इमली, आम और शाल के जितने पेड़ थे लगभग सब उखड़े पड़े थे। सड़क के दोनो ओर घरो के छाजन गिरे पड़े थे। वर्षाजल से धोयी दीवारो की मिट्टी स्तूपो मे जम गयी थी। जगन्नाथ मदिर का नीलचक्र टूटकर पास के मिट्टी के ढेर पर गिर पड़ा था।

सुबह तूफान और बादल नही थे। एक वर्षा से धुला हुआ आकाश और धरती शात और निर्मल लग रही थी। भयंकर रात्रि के दुर्योगों से किसी तरह बचकर मानो धरती नवोदित सूर्य और शांत आकाश को प्रणाम कर रही थी।

गढ़ की सड़को पर कुछ मुगल लश्कर घोड़ो पर बर्छे हिलाते हुए लापरवाही से घूम रहे थे। खोर्धा की महारानी ललिता महादेई और युवराज भागरथी कुमार को कैद करने का हुक्म देकर हाशिमखा वहा से गया था। क्योंकि खोर्धा के राजा रामचद्र देव और उन्ही के जरिये मुगल राजशक्ति के विरुद्ध फिर से षड्यत्र होने लगा था और उसमें ललिता महादेई तथा भागीरथी कुमार का हाथ था यह बात बक्सी वेणु भ्रमरवर के द्वारा ललिता महादेई के नाम लिखी गयी चिट्ठी से स्पष्ट हो गयी थी। पर काफी तलाश के बावजूद लश्करो को रानी या युवराज का कोई पता नही मिल रहा था।

जब हाशिमखां के लश्कर बाणपुर के पर्वत-जगलों मे ललिता महादेई की खोज कर रहे थे तब भालेरी के पाददेश में स्थित वीरजाई-प्रसाद गढ़ के वीरजाई मदिर में महारानी क्षुधिता बाघिन की तरह बगलामुखी मंत्र जप रही थी।

ललिता महादेई महाराज गोविंद मानसिंह की कन्या थी, पर वे ब्राह्मणी के

गर्भ से जनमी थी। बाणपुर राजवंश की परंपरा और विधि के अनुसार राजा एक ब्राह्मण कन्या से विवाह करते हैं। बाणपुर राज्य के प्रतिष्ठाता युवराज किसी राज्य से विताड़ित होकर पलातक के रूप में एक समय आश्रय की तलाश करते हुए इधर-उधर भटक रहे थे; उस समय कंध अध्युषित वीरजाई-प्रसाद में कंधों के 'दिगाल' या राजा, देवी पूजक बलभद्र रणा ने उन्हें आश्रय दिया था। बलभद्र रणा के आश्रित बनकर रहते समय युवराज भी धीरे-धीरे वीरजाई के पूजक और साधक बन गये। पर उनकी दृष्टि देवी के पाद पद्मों से अधिक वीरजाई राज-सिंहासन पर निबद्ध थी।

कंधों के नियमानुसार प्रतिवर्ष पौष पूर्णिमा के दिन वीरजाई को नरबलि चढाने की प्रथा थी। धरती या 'धड़ापानु' को प्रतिवर्ष नरबलि का समर्पण न करने से वह और उपजाएगी नहीं, देश में अकाल पड़ेगा, महामारी फैलेगी आदि की धारणायें में उन कंधो मे बनी हुई थी ? जिस धरित्री माता की करुणा से वसुंधरा शस्यवती होती है, अरण्य छायाघन होते हैं, झरनों मे शीतल जल प्रवाहित होता है; प्रतिवर्ष उस धरती माता को मनुष्य अपनी कृतज्ञता के श्रेष्ठ अर्घ्य के रूप मे मनुष्य-जीवन की बलि चढ़ाता है। मृत्यु मे से जैसे महाजीवन का पल्लव अंकुरित हो उठता है। इसी धारणा से प्रतिवर्ष कृषिकार्यों का आरंभ करने के पहले इस नर मेध यज्ञ का आयोजन किया जाता था। कंधों के राजा के रूप मे बलभद्र रणा का वीरजाई मंदिर मे नरबलि या मेरिआबलि चढ़ाने का काम एक मात्र राजकर्म या राष्ट्र दायित्व था। अन्य वर्षों की भांति उस साल भी बलभद्र रणा पौष पूर्णिमा के दिन मेरिआबलि चढाने के लिए माल अंचल से एक अनाथ बालक को पकड़ कर ले आये थे और मंदिर में बांधकर रखा था। विधि के अनुसार मेरिआबलि के लिए लाये गये मनुष्य की पूजा वे देवताओं की पूजा की भांति नाना उपचारों से करते हैं। पौष पूर्णिमा के सात दिन पहले से कंध गांवों मे नृत्य, मृगया, मद्य और मैथुन से युक्त त्यौहार-सा मनाया जाता है। उसी समय मौका पाकर युवराज यदुराज मानसिंह उस बालक को खोलकर गोपन रूप से बाणपुर की सीमा पार कर छोड़ आये थे। सुबह जब मेरिआबलि चढ़ाने के लिए मर्दल बजाते और नाचते हुए कंधों का जुलूस आया, तब मंदिर में बलि के लिए लाये गये बालक का कहीं पता नहीं था।

मेरिआ कहीं अंतर्धान हो गया, यह देख कंधों के मर्दल, तूरी, सिर पर बांधे

रहता है, कंधों में ऐसा विश्वास था। इसलिए मेरिआ बलभद्र के शरीर पर से मांस काट लेने के लिये यूप के चारो ओर उन्मत्त कधों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। टुकड़े-टुकड़े करके मांस काट लेने के बाद मेरिआ के पिंड में केवल अस्थि-पंजर ही अवशेष रह जाते हैं। उसे मर्दल बजाते हुए नृत्यरत जनता समारोह के साथ मिट्टी में गाड देती है।

मेरिआ वाद्य के साथ नाचते हुए कधो को बलभद्र के शरीर पर से सारा मास काट लेने मे पलभर की भी देर नही लगी। अपने शरीर के एक रक्ताक्त अस्थि-पंजर बनने तक भी उनका मुखमंडल अक्षत ही था। यह भी विधि है। मेरिआ बलि मे मुंह पर कोई आघात नही किया जाता। बलभद्र रणा के मुख-मंडल पर क्षमा-सुंदर मुस्कान की एक क्षीण रेखा फूट पड़ी थी।

बलभद्र रणा को इसी तरह चतुर षड्यंत्र का शिकार बनाकर कंधों के दिगाल-आसन से हटाने के बाद यदुराज वहां एक गढ का निर्माण कराके कधों के राजा बन गये। पर हितैषी, आश्रयदाता बधु बलभद्र रणा के कवंध पर निर्मित उस गढ़ मे अनेक व्यतिक्रम होने लगे। इसलिये ब्राह्मणोंकी सलाह से बंकाड़ को अपना गढ़ उठा लिया। बाद में नीलाद्री प्रासाद आ गये। जहां बीरजाई का आस्थान था और जहा पर बलभद्र मेरिआ बनाए गये थे उसी जगह बाणपुर के प्रथम गढ वीरजा-विलास का निर्माण हुआ था जो धीरे-धीरे कालजीर्ण होकर एक भग्न-स्तूप के रूप मे पड़ा था।

बलभद्र रणा ने मृत्यु के पहले अभिशाप दिया था कि यदुराज का वंश लोप हो जाएगा। उसी अभिशाप के प्रतिमोक्ष के रूप में वंश रक्षा के उद्देश्य से ब्राह्मणों के परामर्श के अनुसार यदुराज ने एक ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह किया था। उसी दिन से बाणपुर राज्य के राजाओं के ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह की विधि अनुमृ त होती आ रही है।

बाणपुर के राजा ब्राह्मण कन्याओं का पाणिग्रहण करते थे इसलिये अन्य क्षत्रिय राजा बाणपुर की राजकन्यओं को वधू के रूप में ग्रहण करने मे कुंठित होते थे। यह भी सुना जाता था कि बाणपुर का राजा जात का माली था जिसने अपने भाई की हत्या करके गद्दी छीन ली थी और राजा बन बैठा था। तैलंग मुकुंद देव के समय जब कालापहाड़ ने ओडिसा पर आक्रमण किया था तब यदुराज ने अपने कंध पाइकों को लेकर मुकुंद देव की सहायता की थी जिससे उन्हें मानसिंह

हरिचंदन की पदवी मिली थी। ये क्षत्रिय नही थे। इसी कारण कई बार बाणपुर के राजा अपनी कन्याओं को क्षत्रिय राज परिवारों मे विवाहित कराने में असमर्थ होकर उन्हें अनूढ़ा चिर-कुमारियों के रूप मे घर मे ही रख लेते थे।

गोविंद मानसिंह हरिचंदन की कन्या ललिता महादेई भी वैसी चिरकुमारी रह जाती। पर उनके रूप लावण्य की प्रशंसा लोक मुख से सुनकर खोर्धा के राजा गोपीनाथ देव ने अपने से छोटे भाई केशवराय के साथ उनका 'मंगल कृत्य' कराने का प्रस्ताव भेजा।

बलभद्र रणा के अभिशाप से हो अथवा स्वाभाविक कारण से हो, बाणपुर का एक भी राजा दीर्घायु नही होता था। पर गोविंद मानसिंह हरिचंदन ने बलभद्र रणा के अभिशाप और दैवीकूट को तुच्छ प्रतिपादित कर अस्सी वर्ष तक राज किया था। यह बात तब की है जब उनकी उम्र सत्तर वर्ष की थी। उनका पृथुल शरीर वयस के भार से झुक गया था। लेकिन ललाट रेखांकित हुआ नही था और वयस के रेखा-जाल से मुखमंडल कुंचित नही हुआ था। आस्कंधलंबित कुंचित केश और गलमुच्छें पक कर सफेद हो गयी थीं। फिर भी प्रशस्त ललाट और मोटी भौंहो के नीचे उनकी आंखो मे दुर्दांत यौवन की आग्नेय दीप्ति थी। रेखा विहीन ललाट पर सिंदूर तिलक अग्नि शिखा की भांति देदीप्यमान था। गले मे रुद्राक्ष की माला केशाच्छन्न प्रशस्त वक्ष पर की कठिन मांसपेशियों को जैसे रेखांकित कर रही थी।

खोर्धाराजा गोपीनाथ देव के छोटे भाई केशवराय के साथ अपनी कन्या का विवाह प्रस्ताव सुनकर गोविंद मानसिंह क्रोध से हत ज्ञान हो गये। अख्यात, अज्ञात, किसी केशवराय के लिये प्रेरित प्रस्ताव मे अपने प्रति अपमान का भाव स्पष्ट अनुभव किया था गोविंद मानसिंह ने। उन्होंने खोर्धा से आए ब्राह्मण पंडित के हाथो से श्रीफल को खींच लिया और नीचे पटक कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तत्पश्चात् चीखकर बोले—"आप ब्राह्मण हैं, इसलिये अवध्य हैं, नही तो इसी मुहूर्त्त आपकी बलि चढ़ाई गयी होती!"

इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये केशवराय ने खोर्धा के पाइको को लेकर बाणपुर-यात्रा की। गोविंद मानसिंह भी शत्रु के आक्रमण को रोकने के लिये बुढुडिगड़ के चंडेश्वर महादेव के पास छावनी डालकर प्रतीक्षा कर रहे थे।

उस समय एक दिन सुबह गोविंद मानसिंह हरिचंदन ने देखा कि उनकी शय्या

के निकट एक तलवार गड़ी है और उसमें एक चिट्ठी भी बंधी हुई है। उस पत्र में लिखा था—"मैं तुम्हारी हत्या करने आया था। पर गंभीर निद्रा में तुम्हारी अचेतन असहायता देख लौट गया। कुमारी कन्या को घर में रखना किसी प्रस्फुटित कली को कोहरे में जला डालने की भांति है। आशा करता हूं इस पाप-कर्म से विरत होगे।"

पत्र में पत्र लेखक का नाम नहीं था। पर गोविंद मानसिंह समझ गये कि पत्र लेखक स्वयं केशवराय ही हैं। उन्होंने अपनी सेना हटा ली। यथा समय केशवराय के साथ ललिता महादेई का मंगल कृत्य संपन्न हो गया। जिस दिन ललिता महादेई ने शुभ शंखध्वनि के साथ खोर्धा भीतरगढ़ प्रासाद की ओर यात्रा की उस दिन वे सोच रही थीं जैसे अनंत युग की वंदिनी कोई राजकन्या किसी अपरिचित राजकुमार के साथ परीकथा के देश को उड़ी जा रही है। ललिता महादेई का सर्वांग रोमांचित हो रहा था। पित्रालय छोड़कर जाने की पीड़ा से नहीं, सामने की अंतहीन यात्रा की उत्तेजना के कारण। उनके आयत नयनों में अश्रु-जल का प्लावन था।

केशवराय गोपीनाथ देव के बाद रामचंद्र देव के नाम से परिचित हुए और खोर्धा सिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

पर खोर्धा महारानी के रूप में ललिता महादेई के मोहभंग मे देर नही लगी। रामचंद्र देव के बारवाटी कटक में यवनी रजिया के साथ विवाह और धर्मत्याग करके पतित हो जाने के बाद ललिता महादेई ने छिन्नमस्ता रुद्राणी की भांति अपने हाथों से शखा, चूड़िया, कंगन आदि आभूषणो को उतारकर, सीमत से सिंदूर पोंछ कर वैधव्य की घोषणा की और अपने पित्रालय को चली आयी।

ईर्ष्या का दूसरा नाम नारी है!

यवनी की करुणा पर महारानी ललिता महादेई जीवित रहेंगी, इसकी कल्पना मात्र उन्हे वज्रपात की पीडा से अधिक आहत कर रही थी। अतः ललिता महादेई की जिन आनत कमनीय आंखों में कभी रोमाचकर आनंदाश्रु थे उन्ही आंखों मे अब प्रतिहिंसा की आग जल रही थी, और उनके कनक-गौर स्निग्ध तनु ने ईर्ष्या के प्रवाह से तपते ताम्र का वर्ण धारण कर लिया था।

रामचंद्र देव को तंत्र के बल से मूक, स्तंभित और बातुल बनाने के लिये

ललिता महादेई व्रतचारिणी की भांति योरजाई मूर्ति के सम्मुख कुशासन पर बैठी प्रत्यह दस हजार बगलामुखी बीज मंत्र का जाप कर रही थी···रामचंद्र देवस्य बुद्धि नाशय नाशय, जिह्वा किलय किलय ह्रीं फट् स्वाहा।"

पर आज रुद्राक्ष माला फेरकर मंत्र जप करते समय ललिता महादेई के ध्यान-नेत्र में वैरीजिह्वा-मुद्‌गरधारिणी बगला देवी के स्थान पर नाना चिंता और दुश्चिताएं उद्भासित हो रही थी। साथ ही रामचंद्र देव की दो विपण्ण आंखें भी वे देख रही थी। पुरी से समाचार लेकर बाणपुर आए चर ने बताया है कि जगन्नाथ ने पतितपावन का रूप धारण करके महाराज रामचंद्र देव को दर्शन दिये हैं। इसलिये चारो ओर महाराज रामचंद्र देव की जय-जयकार हो रही है। एकादशी की रात्रि मे श्रीमंदिर शिखर पर जब महाप्रदीप उठाया जाता है तब रामचंद्र देव के धर्मच्युत होने के बाद से भाटों ने उनके नाम से पुकारना बंद कर दिया था और केवल हरिबोल ध्वनि ही करते थे। पर अब फिर कहने लगे हैं—"महाप्रभु, खोर्धा महाराज रामचंद्र देव को शंख मे रखकर चक्र की ओट रखो हे महाप्रभु!···हरिबोल···!"

रामचंद्र देव ओडिसा की साधारण जनता, सामंत तथा दुर्गपतियो के आनुगत्य प्राप्त होकर पुनः प्रतिष्ठित होते जा रहे हैं, यह संवाद ललिता महादेई के लिये कोई दुःसंवाद नही था। उनकी दुश्चिंताओ का कारण तो यह था कि महाराज रामचंद्र देव इस वर्ष रथयात्रा के समय रथो पर छेरापहरा करेंगे और अन्य राजविधियां करेंगे, जिसके लिये मुक्ति मंडप के सभापंडित और ब्रह्मचारियो ने अनुमति दी है। रथारूढ जगन्नाथ मे स्पृश्य-अस्पृश्य का विचार नही है और फिर वे रामचंद्र देव की भक्ति से प्रसन्न हुए हैं, अतः रामचंद्र देव के धर्म त्यागी होने पर भी उन्हें राजसेवा के अधिकारो से कैसे वंचित किया जा सकता है? कोई भी स्मार्त्त-पंडित इस प्रश्न का समाधान नही कर पाया है। यह भी सुनाई देता था कि रामचंद्र देव प्रायश्चित के रूप मे उभयमुखी-रामचंद्र पुर शासन दान करके फिर से हिंदू बने हैं। अगर यह बात सत्य है, तो भागीरथी कुमार के सिंहासन लाभ की आशा केवल कल्पना मात्र होकर रह जाएगी।

बक्सी वेणु भ्रमरवर अगर जीवित होते तो कब से रामचंद्र देव को गद्दीच्युत कर चुके होते। महारानी ललिता महादेई ने जिस दिन अपने अंगो के आभूषण उतार कर वैधव्य की घोषणा की थी, उस दिन उन्होने बक्सी को वचन दिया था

कि वे रामचंद्र देव के छिन्न मस्तक को देखते ही अपने हाथों से अर्घ्यथाली लेकर बक्सी की वंदना करेंगी ।

ललिता महादेई ने अपने ललाट पर आनत सर्पिल कुंतल राशि को बायें हाथ से संयत करके बीरजाई देवी की ओर प्रार्थनापूर्ण नेत्रों से देखा। पर देवी के सिंदूर-कस्तूरी व चर्चित मुखमंडल पर प्रसन्नता का कोई आभास नहीं था।

ललिता महादेई आसन पर रुद्राक्षमाला रखकर अस्थिर चित्त से बाहर चली आयीं।

इस वर्ष रथयात्रा के समय जैसे भागीरथी कुमार छेरा पहरा आदि राजकार्यों का संपादन कर पाएंगे, उसकी समुचित व्यवस्था ललिता महादेई बड़ परीछा गौरी राजगुरु के जरिए कर चुकी थीं। खोर्धा सिंहासन पर अधिकार सिद्ध करने के लिये यह आद्य और प्रधान पदक्षेप है। रामचंद्र देव के बदले अगर भागीरथी कुमार छेरा पहरा करते तो खोर्धा का प्रकृत राजा कौन है, यह लोगों के सामने मीमांसित हो जाता; पर बात ही कुछ और हो गयी है। ऐसी परिस्थिति में भागीरथी कुमार का पाइकों के साथ पुरी जाना उचित होगा यह दृढ़ निश्चय ललिता देवी कर चुकी थीं।

भागीरथी कुमार में सिंहासन के प्रति अदम्य मोह था। फिर भी उसके लिए उनमें मानसिक दृढ़ता या कुछ साधना की प्रवृत्ति नहीं थी। ललिता महादेई की भांति भागीरथी कुमार शीर्ण, सुंदर और बलिष्ठ वपु के थे। पर उनकी आखें रामचंद्र देव की तरह कोमल, उदास और विषण्ण लगती थीं। वे आखें उनके चेहरे के साथ बेतुकी लगती थीं। ललिता महादेई उन्हें जितनी कठोर शृंखलाओं में रखना चाहती थीं, भागीरथी कुमार उतने नृत्य, संगीत, आखेट आदि विलास-विनोद में समय बिताते थे।

•

मंदिर के बाहर सब ओर निर्जन और परित्यक्त था। नीचे गुल्माकीर्ण उपत्यका के वनशीर्ष पर महाद्रुमों की अलसायी छाया बिछी पड़ी थी। पक्षी रौद्रताप से नीरव थे। किसी वृक्षशाखा पर एक कपोत का करुण विलाप और अन्य किसी शाखा से एक और कपोत के क्लांत प्रत्युत्तर के अलावा कोई और स्वर सुनाई नहीं देता था। मंदिर में कामानंद ब्रह्मचारी आनुनासिक स्वर से मंत्रोच्चारण कर रहे थे। वह स्वर उस मध्याह्न की निर्जन नि.सगता को और भी गभीर बना रहा था।

भागीरथी कुमार के संधान में ललिता महादेई जीर्ण प्रांगण, अट्टालिकाओं के भग्नस्तूप और पश्चिम ओर के अवशेष प्रासादों को पार करती हुई नागेश्वर वन परिवृत्त शुष्क पुष्करिणी के समीपवर्ती मंडप तक आयी। पश्चिम प्रस्त पार करते ही उन्होंने पखावज की ध्वनि सुनी, जो मध्याह्न की नीरवता को भंग कर रही थी।

ललिता महादेई ने जो अनुमान किया था वह सत्य था। भागीरथी कुमार मंडप में लापरवाही से बैठे हुए पखावज वादन कर रहे थे। नर्तकी की वेष-भूषा में मंडित एक 'गोटिपुअ' बायें पैर पर श्रोणी भार टिकाए, यावक-रंजित अन्य पैर को नृत्य की भंगिमा में आगे बढ़ा कर नृत्य-मुद्रा की रचना कर रहा था। दूसरा गोटिपुअ सुवेशित होकर समीप ही खड़ा था और घुंघरू बंधे पैर को 'ता धिमि-धिमि ता दत् ता धी ता तो किटितक' के लयबद्ध तालों पर नचा रहा था।

भागीरथी कुमार तन्मय हो पखावज बजा रहे थे।

एक पुष्पित नागेश्वर की छाया में खड़ी होकर ललिता महादेई यह सब देख रही थी। जिस नागेश्वर वृक्ष के नीचे वे पाषाण प्रतिमा की भांति खड़ी थी और भागीरथी कुमार के उस निर्लज्ज नृत्य विलास को देख रही थी, उसी की एक अनुच्च शाखा पर एक काला नाग फन पसारे नागेश्वर के सौरभ से मूर्च्छित-सा सोया था। काले नाग के उस शाखा से अन्य शाखा पर जाने की चेष्टा में सरकते समय पत्तों से उत्पन्न ध्वनि से ललिता महादेई ने हठात् नेत्र उठाया और उस सांप को देखकर चीत्कार किया—

"कुमार···!"

नागेश्वर के नीचे से लगभग दौड़ती हुई वे मंडप पर आ गयी थी।

उस समय और वैसी अवस्था में भागीरथी कुमार माता ललिता महादेई को देखेंगे इसकी कल्पना तक उन्होंने नहीं की थी।

भागीरथी कुमार अपराधी की भांति नतमस्तक खड़े हो गये। उन्हें कोई कैफियत देनी नहीं थी, न ललिता महादेई उनसे उसकी आशा रखती थी। पर भागीरथी कुमार के मौन में संयम, शासन और अनधिकार प्रवेश के विरुद्ध एक संकोचहीन आस्फालन फूट रहा था। मस्तक पर से असंयत केश की कुंडली बायीं आंख पर झुक आयी थी। ऐसी परिस्थिति और दृश्य उन दोनों के लिए नूतन या आकस्मिक नहीं था, यह दोनों समझ रहे थे।

आज ललिता महादेई के स्वर में अस्वाभाविक और असाधारण गांभीर्य था। बारंबार दीर्घश्वास लेती हुई ललिता महादेई कहती गयी—

"कुमार ! मुझे पता है कि तुम्हारी धमनियों में खोर्धा का विषाक्त रक्त प्रवाहित हो रहा है। यह सत्य है, पर साथ-साथ उसमे ब्राह्मणी का संयम और साधना भी है। यह क्या उसी का परिचय है ?"

ठीक उसी प्रश्न को अतीत में शताधिक बार भागीरथी कुमार ने सुना होगा। ललिता महादेई भी इस प्रश्न का कोई उत्तर चाहती नही थी। हंस के अपने शरीर पर से जलकणों को झाड़ने की भांति जननी की सारी भर्त्सनाएं कंधो को नचाते हुए भागीरथी कुमार निरद्विग्न मौन के साथ नतमस्तक होकर सुनते जा रहे थे।

पर अन्य दिनोंकी तरह आज यहां उस रस भग की परिसमाप्ति नही हुई। ललिता महादेई बोली—"खोर्धा राजा इस वर्ष खुद छेरा पहरा करेंगे। इसके लिए पुरी मेआयोजन हो रहे हैं। तुम आज इसी समय चंपागढ़ चले जाओ। वहा से पाइकों को लेकर अधारीगढ़ होते हुए चिलिका के रास्ते से पुरी जाना। पर, खबरदार, खोर्धा के किसी व्यक्ति को भी इस बात का पता नहीं चले। पुरी पहुंचने के बाद गोविंद वाजपेयी जैसा कहेंगे तुम्हें वही करना होगा, समझे ! वैसा अगर नही हुआ तो खोर्धा का राज सिंहासन स्वप्न बन जाएगा !"

ललिता महादेई वहा से तेज कदमो से बीरजाई मदिर को लौट आयी, मानो नागेश्वर शाखा पर का वह कालानाग उनके पीछे-पीछे दौड़ता आ रहा हो। ललिता महादेई का सर्वांग अकारण भय और रोमाच से सिहर रहा था।

सप्तम परिच्छेद

1

कटक लालबाग मे दीवान-ए-खास के महफिल खाने मे तकीखा गुप्त सलाह मशविरे मे बैठा था। मशविरा निश्चय ही अत्यत गुप्त था। मोतबर व्यक्तियो से भरी महफिल के बाहर, किले के सदर दरवाजे पर, नौबत-चौकी के पास सतरियो की सख्या दोगुनी करदी गयी थी। यह सारी व्यवस्था करने वाले सिपहसालार को उस मशविरे का मजमून तक मालूम नही था। उसने सिर्फ किलेदार की सलाह से जोरदार पहरा बैठाया था। खुद वजीरखा बहादुर मुस्तफा अलीखा से वैसा हुक्म मिला था। किलेदार या सिपहसालार को उस मशविरे मे शामिल नही किया गया था। उनका प्रवेश तक निषिद्ध था। पर नायब-नाजिम की मुलाकात को आए जमीदार, इजारेदार, दुआ मागने वाले और बेकार दरबारी अपनी विशेषता जताने के लिए बाहर इधर-उधर भटक रहे थे। कभी-कभार महफिल के बाहर टगे दरवाजो के नीले पर्दों के पास से गुजर कर आह भरते और इत्र से भीगे रूमालो से मुह और मेहदी से रगी दाढ़ी पोछ कर बाहर चले आते थे।

महफिल खाने मे तकीखा मसनद पर बायी कोहनी रख अपनी मासल हथेली पर मुह टिकाए बैठे-बैठे खर्राटे भर रहा था। मोतबर व्यक्तियो में से वहा उनके तीनो वजीर, मुस्तफा अलीखा, फौजदार दीन महम्मद और तकीखा के अत्यत विश्वस्त हिंदू जागीरदार अमीन चद अपनी-अपनी जगह चुपचाप बैठे थे और एक-दूसरे को देख रहे थे। शायद सही समस्या क्या है यही सोच रहे थे।

किस मशविरे के लिए उन्हे आने का परवाना मिला था, किस लिए खास आदमी भेजकर माहागा परगने से जागीरदार अमीन चद को बुलाया गया था, उनमे से एक को भी पता नही था। वे सब तकीखा की नींद के टूटने की प्रतीक्षा मे बैठे हुए थे और पत्थर के बुतो की भाति एक दूसरे को देख रहे थे। जब तकीखा के खर्राटो की आवाज धीमी पड़ती थी या बड़ी-बड़ी मूछें हिल जाती थी, या

जब वह बाघ के पंजेनुमा अपनी हथेली से नीद ही में मुंह पोंछने लग जाता था तब मयूर-पंख झलने वाले खादिम खिदमतगार तो बेशक बेचैन जान पड़ते थे, पर साथ-साथ बैठे हुए मोतबर व्यक्ति अपने-अपने आसनो मे कमर सीधी करके बैठ जाते थे।

अमीन चद को भी अचानक बुलाये जाने का मतलब मालूम नही था। अनिश्चित अमंगल की आशका से वे मन-ही-मन विष्णुसहस्र नाम जप रहे थे।

अमीन चंद अपनी उत्कंठा को दबा नही पा रहे थे। उन्होंने अपनी हथेली से मुह ढंक लिया और अस्पष्ट स्वर से वजीर से पूछा—"खुदावद, क्या बता सकते हैं कि इस खिदमतगार को अचानक क्यो याद किया गया ?"

वजीर तो अपने आप से वही सवाल कर रहे थे, वे क्या जवाब देते ! पर उन्होंने गाभीर्य रखते हुए, अधमुदी आखें खोल कर अमीन चंद की ओर इस कदर देखा, जिससे अमीन चद समझ गये कि बात बेशक जरूरी है।

जिन गिने-चुने हिंदुओं को अतीत मे सुजाखां की सुदृष्टि के कारण काफी इनाम मिले थे और जो जागीर वगैरह पाकर ओड़िसा मे रह रहे थे उनमे अमीन चंद अग्रगण्य थे। अमीन चंद उत्तरभारत के निवासी थे। वे एक पहलवान थे। तलवार चलाने में उनके मुकाबले का मुगल लश्करों मे भी कोई नही था। इसी योग्यता के कारण वे तकीखा के साथ मुर्शिदाबाद से आये थे। उस समय दुर्दांत खंडायतों को काबू में लाने के लिए निष्कर वृत्तिभोगी खडायत चउपाढ़ियों को निकाल कर उनके स्थान पर मुगल-अनुरक्त जागीरदारो को स्थापित किया जा रहा था। अमीन चंद को उसी से विरुपा के दक्षिण तटवर्ती माहागा परगना के सुविस्तीर्ण इलाके की जागीरदारी मिली थी। उन्होंने अनेक लड़ाइयों मे तकीखा के बायें हाथ-सा काम किया था। इसके अलावा, कटक के उन रण-कुशल खंडायतों को बाध्य और अनुगत बनाने मे वे अधिक सफल भी हुए थे। पर अब अचानक तकीखा के हुजूर मे खास आदमी के जरिए बुलाए जाने के कारण उनके मन में पाप-चिंताएं जाग रही थी। वे बेचैनी महसूस कर रहे थे।

पर उस समय ओड़िसा सूबे की राजनैतिक परिस्थिति सकटजनक नहीं थी। इस बीच हाफ़िज कादर भी कई बार कटक आकर तकीखां से मुलाकात करके अपनी अनुगतता और संप्रीति का प्रमाण दे चुके हैं। निरर्थक धर्मांधता के वशीभूत होकर जगन्नाथ को ध्वंस करने की इच्छा भी तकीखा में नहीं थी। वस्तुतः

जगन्नाथ जैसे आकुमारी हिमाचल हिंदू जनता के मोक्षदाता थे वैसे ही ओड़िसा मे मुगल राजस्व के भी एक निर्भरयोग्य अवलबन थे। सुजाखा के समय यात्रियो से जजिया के रूप मे सालाना पाच लाख की आमदनी होती थी। इस आमदनी की रकम को तकीखा ने सात लाख तक पहुंचाया है। यह तो सरकारी हिसाब है। इसके अलावा जगन्नाथ सडक पर चौकियो मे बैठे कर्मचारी अपना हिस्सा वसूल किये बगैर यात्रियो को छोड़ते नही थे। पिछले साल खोर्धा और कटक के बीच लड़ाई छिड़ गई थी जिसके कारण यात्रियो की सख्या काफी घट गयी थी। उसी से जजिया की रकम भी काफी घट गयी थी। इसके लिए तकीखा को मुर्शिदावाद से ताकीद तक सुननी पड़ी थी। अत. मुगल राजस्व के प्रधान सूत्र जगन्नाथ को नष्ट-भ्रष्ट किये बगैर तकीखा किस तरह अपने जगन्नाथ-विद्वेष को चरितार्थ कर सकेगा यही सोच रहा था।

दूसरे मुगल नायब-नाजिमो की तरह तकीखा ने भी सुना था कि जगन्नाथ का पिंड अनमोल इद्रनीलमणि से गठित है। वस्तुतः अतीत मे आगगा-गोदावरी विस्तृत सुविशाल उत्कल साम्राज्य की सारी सपदा जगन्नाथ को समर्पित होती थी। इसलिए शाहजहाबाद दिल्ली के बादशाहो तथा मुर्शिदावाद के नवाब और दक्षिण के निजाम-उल्-मुल्क से भी बढकर जगन्नाथ वैभवशाली थे।

इसी सपत्ति को लूटने के लिए काला पहाड़ से लेकर आज तक कई हमले हो चुके हैं। अतीत में जाहागीर के समय हिंदू फौजदार केशव दास ने मदिर बद करके वहा से कुछ स्वर्ण और रत्नो को हड़प लिया था। हाशिमखा, मकरामखा, एकरामखां आदि फौजदारो ने भी हमले पर हमले करके काफी कुछ लूट की थी। फिर भी मदिर मे जो कुछ था उससे बगबिहार-ओड़िसा मनसब को एक साथ खरीदा जा सकता था। उसी संपदा की लूट के अलावा तकीखा मे और कोई दूसरी अभिलाषा नही थी।

पर अतीत की अभिज्ञता से तकीखा को पता था कि मदिर पर हमला करके और देवताओं का खून करके उस मतलब को पूरा करना असभव है। अगर उस तरीके को छोड़कर छल और चालाकी से कुछ किया जा सकता है तो उससे बढ़-कर इनामदारी की बात और कुछ हो ही नही सकती। सिर्फ इसी मतलब से तकीखा ने रामचद्र देव को हाफिज कादर बनाया था। वह खोर्धाराजा हाफिज कादर को अपने काबू मे रखकर, किसी तरह जगन्नाथ की दौलत हड़पना चाहता

था। यह एक तीर से दो चिड़ियों को मारने वाली बात थी। रामचंद्र देव धर्मत्याग के बाद अठारह रजवाड़ों के सामंत राजाओं और दुर्गपतियों तथा जमींदारों के आनुगत्य को खोदेंगे तथा ओड़िसा के जन-साधारण की उनके प्रति सदिच्छा और सहानुभूति नहीं रहेगी। इससे खोर्धा राजशक्ति की कमर टूट जाएगी और वह नायब-नाजिम की अनुचर बन जाएगी, यह भी सुनिश्चित था।

पर ऐसे समय स्वयं जगन्नाथ ने पतितपावन बनकर तकीखा की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया था।

सोये हुए तकीखा यही सोच रहा था या सोचते सो गया था, पता नही चल रहा था। पता नही और कितनी देर इस तरह चिंता या मंत्रणा चली होती अगर कही से एक मक्खी उड़कर न आती और कही जगह न पाकर तकीखां की नाक पर बार-बार न बैठती। उस जगह के लिए मक्खी की भी आसक्ति क्यो थी, पता नही। पीछे खड़ा पखा झलने वाला खादिम मक्खी को जितना भगा रहा था और अपनी हथेली रगड़ कर तकीखा उसे जितना उड़ा रहा था, उतना ही वह बार-बार नाक पर उसी जगह बैठ जाती थी।

पर उस समय अमीन चंद विष्णुसहस्रनाम जपने में व्यस्त थे। फौजदार की आखें भी मुदी आ रही थीं। वजीर मुस्तफा अलीखां सिर्फ मुस्करा रहे थे, उस मक्खी के उठने-बैठने को देखकर। उनका रेखांकित, गंभीर मुखमंडल पल भर के लिए कौतुक से कोमल और उज्ज्वल हो उठा था।

तकीखां अचानक पैर पटक कर उठ बैठा और चिल्लाने लगा—"कंबख्त, लाना मेरी तलवार!"

तकीखा ने जिस तरह तलवार मांगी थी उससे अमीन चंद तो अमीन चंद, स्वयं वजीर और फौजदार भी घबरा गये। ख़ादिम खिदमतगारों के अचानक जोर-जोर से पंखे चलाने के कारण वह मक्खी उड़ गयी और वजीर के बांयें गाल पर बैठ गयी।

तकीखा उसी दृश्य को देखकर ठहाके भरने लगा।

उसी तरह मसनद के सहारे बैठे-बैठे तकीखां ने जम्हाई ली और, दो बार इंशा-अल्लाह, इंशाअल्लाह, का उच्चारण किया।

हुक्का-बरदार ने लाकर सोने के पत्ते से जड़ा हुक्का पेश किया। तकीखा

आंखें मूद कर हुक्का गुडगुड़ाने लगा। अवरी तंबाकू की सुगंध से महफिलखाना आमोदित हो उठा।

तकीखा आखें खोल कर चिल्लाया—"सिवान-नवीस को पेश करो।"

सुनकर दो खादिम सिवान-नवीस को बुलाने चले गये।

सिवान-नवीस करामत अलीखा महफिल खाने के बाहर बैठ कर अदर चल रहे मशविरे का अदाज लगा रहा था।

नायब-नाजिम को राज्य की सारी गुप्त खबर बताना सिवान-नवीसो का काम है। दिल्ली, शाहजहाबाद, मुर्शिदाबाद, आजिमाबाद, हर जगह सिवान-नवीसों को मुकर्रर किया गया है। सूबे भर मे ऐसी कोई घटना नही घटती जो सिवान-नवीसो को न मालूम हो। फिर भी बाहर बैठे-बैठे भीतर किस बात पर मशविरा हो रहा था अदाज नही लगा सकने के कारण करामतअलीखा बेचैनी महसूस कर रहा था।

कब हुजूर से बुलावा आए, वह इसी का इतजार कर रहा था। अब हुजूर से तलब आते ही करामत अलीखा अपनी पदवी का बोझ सभालते-सभालते पक गयी आबक्ष लबी दाढ़ी को सहलाते हुए मन-ही-मन तोबा-तोबा कहने लगा, और चुस्त पायजामे के अंदर टिड्डी के पैर की तरह दिख रही अपने पैर की पिंडलियो को सहला कर डगमगाती चाल से लबी तोंद पर हाथ फेरते हुए अदर दाखिल हो गया।

नायब-नाजिम बहादुर को सलाम फरमाने के बाद उसे बैठ जाने के लिए तकीखा ने हुक्के की नली से इशारा किया। करामतअलीखा सावधानी से शेरवानी का छोर सभालते हुए गद्दीदार कुर्सी पर बैठ गया।

तकीखा ने हुक्के की नली को फेंक कर मसनद पर बैठने का ढग बदलते हुए हुक्म किया—"खबर पेश करो।"

उसके बाद फिर कोहनी और हथेली पर सर टिका लिया। आखें अपने आप मुद गयी और वह पलभर मे खर्राटे भरने लगा।

पर उससे करामतअलीखा निरुत्साहित नही हुआ और ओडिसा के सारे समाचार बताने लगा—"हुजूर नायब-नाजिम, दीन दुनिया के मालिक और मुर्शिदाबाद तख्त के गरीब-नवाज सुजानखा का मैंने नमक खाया है। मेरा सब कुछ आप ही की मेहरबानी से है।"

तकीखां तब तक पूरी तौर से खर्राटे भरने लगा था। करामतअलीखां कहता जा रहा था—

"उड़ीसा सूबे के कौने-कौने में कुछ वैसा नहीं हो रहा है जिसका पता इस बंदे को नही है।"

तकीखा के खर्राटे अचानक बंद हो गये। वह उठकर सीधा बैठ गया और करामतअलीखा को आखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। उसी से करामतअलीखां की सारी भूमिका बंद हो गयी। तकीखां ने कर्कश स्वर मे पूछा—

"हम खबर पूछ रहे हैं।"

करामतअली संभल गया और कहने लगा—"अठारह रजवाडो के राजा फिर खोर्धा आने लगे हैं। इस वर्ष रथयात्रा पर सब शामिल होंगे इसलिए आज से तैयारियां करने लगे हैं। खोर्धा राजा जब से मुसलमान बने हैं तबसे वे छेरा पहरा कर नही सकते थे।"

तकीखा ने छेरा पहरा शब्द का अर्थ नही समझा तो अमीन चंद ने उसे समझाया—रथयात्रा में रथ पर जब जगन्नाथ आ जाते हैं तब खोर्धा का राजा राज सेवक के रूप मे सोने की झाड़ू ले रथ के चारो ओर झाडू लगाता है। उसी काम को छेरा पहरा कहते हैं।

तकीखा अपमानजनक परिहास से अपने पृथुल शरीर को हिलाकर बोला—"तो वह भंगी है, बादशाह कैसे हुआ ?"

करामतअलीखां अपनी दाढ़ी सहलाते हुए बोला—"नही तो और क्या हुआ !"

पर अमीन चंद ने विस्मित स्वर में पूछा—"इसके लिए पंडो से अनुमति कैसे मिली ?"

सिवान-नवीस ने बताया—"मुझे खबर मिली है कि काफिरो के मौलवियों ने मुक्तिमंडप सभा में मिलकर यही इसाफ किया है। खुद जगन्नाथ पतितपावन बने हैं, खोर्धा के बादशाह हाफिज कादर पर मेहरबानी करके। इससे काफिरों के मौलवियों ने रथयात्रा में यह काम करने के लिए हाफिज कादर को इजाजत दी है। इसके अलावा रथयात्रा के दिन उन काफिरों के देवता को मेहतर-भंगी तक छूए तो भी कोई बात नही होती है। इस लिए खोर्धा राजा को इससे क्यों मना करेंगे !"

वजीर अपनी मेंहदी-रंगी दाढ़ी को सहलाते हुए उसी में से नया तरीका सोच रहे थे। जगन्नाथ पतितपावन बने हैं। यह बात यानी गुमाश्तों के जरिये ओडिशा के कोने-कोने में प्रचारित हो गयी है। जिससे खोर्धा राजा के प्रति फिर से जनता के मन में श्रद्धा जागी है। इस बात का वजीर को पहले से पता था। पर जगन्नाथ सचमुच पतितपावन बने हैं या इसमें भी कोई चाल है, यह वही जानना चाहता था। पर सिवान-नवीस की प्रगल्भता में यह सब कुछ नही था।

पलभर में दीवान-ए-खास की सारी उत्तेजना स्तब्ध रह गयी। तकीखा ने मसनद पर लेटे-लेटे अपना फैसला सुनाया—"रथ यात्रा के समय कोई झगड़ा करना ठीक नही होगा। रथ यात्रा के खत्म होते ही अमीनचद को पुरी का नायब बनाया जाएगा और मदिर पर से खोर्धा राजा के सारे हक छीन लिए जाएगे। अमीन चद के हुक्म से मंदिर की सेवा-पूजा होगी।"

वजीर ने सर हिलाते हुए बताया—"पर अकबर बादशाह के जमाने से जगन्नाथ मदिर की बादशाही सनद मे खोर्धा राजा का हक जाहिर किया गया है। अमीन चद को प्रजा खोर्धा राजा मानने को तैयार नही हुई तो?"

वजीर के इस सवाल से मिरगी के मरीज की भाति तकीखा गुस्से से कापने लगा—"खोर्धा राजा हमारा हुक्म नही माने तो फिर खोर्धा पर हमले होगे, राजा को कैद किया जायगा।"

वजीर ने फिर शकित कठ से कहा—"खोर्धा राजा मे क्या हिम्मत है कि वह आपका हुक्म नही माने। पर अगर मदिर के पडे नही माने तो?"

तकीखा मसनद पर जोर से थप्पड़ मारकर चिल्लाया—"तो हम मदिर ही को मिट्टी मे मिला देंगे।"

वजीर मुस्तफा अलीखा ने स्वर बदला और तकीखा का समर्थन करते हुए बोला—"हुजूर, वहा अगर एक मसजिद बनाई जाए तो और भी नेकनामी होगी। पर सालाना जजिया से जो सात-आठ लाख की आमदनी हो रही है अगर वह बद हो गई तो मुश्किल हो जायगी।"

तकीखा अपने चर्बीदार चेहरे को कुंचित करके होठो को चबाते हुए बोला—"जगन्नाथ के पास जितने हीरे जवाहरात हैं उससे शाहजहाबाद तक खरीदा जा सकता है। परवाह क्या है?"

लालबाग किले में मत्रणा सभा के समाप्त होने के बाद, वजीर और सिवान-

नवीस को लालबाग में छोड़ कर और चिंतित मन से घोड़े पर सवार होकर राजपथ पर चलते समय अमीन चंद के ललाट से पसीना टपक रहा था। जगन्नाथ मंदिर उनकी मुट्ठी में आ जाएगा, इससे अनेक संभावनाओं में वे जिस तरह हर्षोत्फुल्ल हो रहे थे, उसी तरह आशंका और द्विधा से भी उनका मन आदोलित हो रहा था।

शहर की बड़ी सड़क पर चीटियों की भांति लोग पुरी की ओर जा रहे थे। काठ जोड़ी नदीघाट के गड़िमुंड मुहाने से वे फिर जगन्नाथ सड़क पर आ जाएंगे। इसी मौके से वे कटक शहर को भी देख लेंगे। भिन्न-भिन्न प्रांतो से आए यात्रियों के विचित्र पहनावे, विचित्र भाषाएं और विचित्र यान-वाहनों का सप्तरंगी स्रोत सड़क पर बह रहा था। हर सड़क से लोग एक ही ओर बढ़ रहे थे…वह पुरुषोत्तम क्षेत्र का बड़ दांड था। नीलगिरि पर सुदर्शन चक्र मुडित शिखर को दूर से देखकर नतमस्तक हो प्रणाम करने को हर आंखें प्यासी थीं। परंतु अभी उसके लिए देर थी। जगन्नाथ सड़क की धूल में लोटने को तन व्याकुल है। अनेक कंठों में उद्वेलित हो आए भजनो के स्वर मुगल लश्कर और हवलदारों की कठोर आंखों के आगे हठात् नीरव हो गये थे। काठ जोड़ी पार कर जाने के बाद जगन्नाथ सड़क फिर से मुखरित हो उठेगी। पश्चिमी यात्रियों के 'भले विराजो जी' संगीत, गौड़ीय वैष्णवों के 'जगन्नाथ स्वामी नयन पथगामी भवतुमे' भजन और मृदंगनाद के साथ ओड़िया यात्रियों के जणाणो के मिश्र रूप से महासंगीत की सृष्टि होगी। दुस्तर पथ के अरण्य, पर्वत, डकैत, जजिया, इजारेदारों के जुल्म, लुंठन, क्लांति, व्याधि क्षुधा, यन्त्रणा और मृत्यु आदि को तुच्छ मानकर अपराजेय मनुष्य-आत्मा की अप्रतिरोध जययात्रा आगे बढ़ जाएगी।

अब यात्री कटक शहर में से होकर जा रहे थे। इसलिये उनमें शंकित नीरवता थी। वे काठ जोड़ी की ओर बढ़ रहे थे। अमीन चंद उन्ही के साथ घोड़े पर खुश कदम से चल रहे थे।

महफिल खाने से वजीर, सिवान-नवीस, अमीन चंद, आदि के चले जाने के बाद पर्दे की आड़ में अचानक तकीखा ने रजिया बेगम को देखा—

"कहो बहन…"

रजिया ने चेहरे पर से बुर्के को हटा लिया। अपनी चंचल हिरनी की भांति आंखों से तकीखा को देखती हुई कहने लगी—"मैंने गाजी पीर के पास मनौती

मानी थी कि हुजूर जहापनाह के खोर्घा जंग से सलामत वापस आजाने से दुआ मागने जाऊगी, अब आप उसी का इंतजाम कर दें। कल रात मैंने गाजी पीर को सपने मे देखा है।"

निर्भय होकर जो दूसरों पर जुल्म ढाने से हिचकते नही हैं। वे भी किसी से डरते हैं। वह उनका विवेक होता है। पीर, दरवेश, खुदा, भगवान आदि के नाम से वही विवेक कई रूप बदलता है। इसी कारण शायद पीर और दरवेशो के प्रति तकीखा में श्रद्धा से डर अधिक था।

तकीखा अपनी लबी तोद पर हाथ फेरते हुए बोला—"बेशक, बेशक"

इस अभयवाणी को सुनकर बुर्के मे रजिया बेगम की हसती हुई कजरारी आखें और मुस्कराते अधर छिप गये। वे पर्दा हटा कर जनाना महल की ओर बढ गयी।

तकीखा फिर खर्राटे भरने लगा !

अष्टम परिच्छेद

1

कुरुलोविशो सिहल-ब्रह्मपुर के दधिवामन जीउ के मदिर मे स्नान पूर्णिमा से अणसर विधि आरंभ हो गयी थी। स्नान पूर्णिमा से आषाढ अमावस्या तक अणसर नियमों के अनुसार सारी विधिया पालित होती हैं।

उस समय पता नही किस तरह सिहल-ब्रह्मपुर गांव को खबर पहुंची थी कि दिल्ली से अमुरा पातिशाह लश्कर फौज लेकर श्री जीउ के मदिर के स्थान पर मसजिद बनाने आ रहा है। जिस नाथ मुदुली ने यह खबर पहुंचायी थी उसने अपनी मौसी के घर शिशुपालगढ के कुशुकुटा गाव से लौटकर बताया था। कुशुकुंटा गाव मे काठ जोडी के दक्षिण तट के दलेईबाग गांव से मेहमान आए थे। कटक में जीरा भूंजा जाये तो उन तक सुगध पहुचती है उन्होंने बताया था। पर बाद मे रथीपुर से दलेई खुंटिआ ने आकर बताया था कि अमुरा पातिशाह नही खुद तकीखा नायब-नाजिम मसजिद बनाने आ रहा है।

खबर सुनकर फिर लोग किवाड़ बंद कर जगलो को भागने लगे थे। साहस रखने वाले बास के झाड़ो और केवडे के जगलों मे छिपकर नेवलो की भाति दिल्ली से अमुरा पातिशाह या कटक से नायब-नाजिम तकीखा, कौन आरहा है यह देखने के लिए सतर्क बने रहे।

उस दिन अणसर पचमी थी।

श्रीजीउ पर तिल, तैल, चुआ, कर्पूर सुगध द्रव्य नैवेद्य समर्पित होंगे।

गाव के बाहर एक सेमल के पेड़ पर चढ़कर जो आक्रमणकारियों की प्रतीक्षा कर रहा था, वह दूर से सपाट प्रातर को पार करते हुए एक दल को आते देखकर पेड पर मे उतर पड़ा और बास की झाड़ियों में छिपे गाववालों को खबर दे आया।...."सुनो हो...सुनो...अमुरा पातिशा पहुंच गया।" वह सब कुछ जानता है ऐसा रोब दिखाते हुए बता रहा था कि वह कभी भी तकीखा नही हो सकता

क्योंकि उसे मालूम है कि तकीखां के पास इतने घोड़े नहीं हैं जितने आ रहे हैं।

अंत में जब आगे-पीछे घोड़ों पर अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित लश्करों से घिरी हुई एक पालकी पहुंची और धीरे-धीरे गजेइसा पीर की समाधि की ओर बढ़ने लगी तो लोगों में शक नहीं रहा कि 'अमुरा पातिशा' पहुंच गये। अगर नायब-नाजिम होता तो घोड़े पर आया होता। वे सारे दृश्य को आशंकित आंखों से देख रहे थे।

पर मखमली पर्दे के हटाये जाने के बाद जब उसमें से बुर्के में ढंकी रजिया बेगम एक अशरीरी छाया की भांति निकली और गजेइसा पीर के सामने ऊद-बत्ती जलाकर दुआ मांगने बैठ गयी तो लोगों की समझ में कुछ नहीं आया। विस्मय से सब एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

दुआ के बाद रजिया बेगम उठ खड़ी हुई और पालकी में बैठकर जिस रास्ते से आयी थी उसी रास्ते से लौट गयी। साथ आए लश्कर घुड़सवार भी दूर क्षितिज पर धीरे-धीरे अदृश्य हो गये। लोग आश्वस्त हुए। दल-बांधकर निकल पड़े। उन्होंने गजेइसा की समाधि को घेर लिया। जली हुई ऊदबत्तियों की राख समाधि पर पड़ी थी, पर सुगंध से अब भी वह जगह भरी हुई थी।

अंत में एक पठान से सारी बात का भेद मालूम हुआ। खोर्धा की यवनी महा-रानी रजिया बेगम गजेइसा पीर की समाधि पर मनौती चढ़ाने आयी थी। उनकी एक हीरा जड़ी अंगूठी गुसलखाने में खो गयी थी। उन्हें वह अंगूठी गजे-इसा पीर की महिमा के प्रभाव से मिल गयी है। इसीलिए वह आयी थी।

वहां खड़े सब गजेइसा पीर के नाम की जय-जयकार करने लगे।

2

रजिया बेगम कटक वापस लौट रही थी। रथीपुर तक पहुंची नहीं थी कि आकाश काले बादलों से घिर गया और तूफान पागल दरवेशों की भांति जटाएं खोल आकाश पर नाचने लगा। बाध्य होकर रजिया बेगम को रथीपुरगढ़ में रुक

जाना पड़ा। खोर्धा से पुरी जाते समय महाराज रामचंद्र देव वहीं आकर पहले से रुके हुए थे। उनका मिलन अत्यंत अप्रत्याशित था इसलिए मधुर हो उठा। तूफान में दो नीड़ खोये पक्षियों की तरह रामचंद्र देव और रजिया बेगम रात भर के लिए रथीपुरगढ़ में ठहर गये।

गवाक्ष से म्लान चंद्रमा को देखती हुई मखमली बिछौने मे घुटनों पर गाल टिकाए रजिया बैठी थी। रजिया की रहस्यमयी लग रही बड़ी-बड़ी आंखों को एकाग्र दृष्टि से देखते हुए रामचंद्र देव भी बैठे हुए थे। रथ पर एक बार जगन्नाथ को देखने की प्रार्थना कर रही थी रजिया बेगम। पर वे जानती थी कि इसके लिए कोई उपाय नहीं था। तकीखां ने कड़ी ताकीद की थी जिससे गजेड़्ा पीर के पास मनौती चढ़ाकर सीधी कटक वापस चलने को रजिया बाध्य थी। रामचंद्र देव भी जानते थे कि रथयात्रा के अवसर पर जब वे अपनी दृढ़ प्रतिष्ठा का उद्धार करने की चेष्टा मे रहेंगे तब पुरी मे रजिया बेगम के रहने वाली बात भी विषमय प्रतिक्रिया की सृष्टि कर सकती है।

रजिया ने उन्ही विनिद्र मुहूर्त्तों में रामचद्र देव को सतर्क कर दिया। बताया कि रथयात्रा के बाद अमीन चंद को जगन्नाथ मंदिर अख्तियार करने के लिए तकीखां से हुक्म मिला है। इसके लिये पिपिली मे मुगल लश्करों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। अमीन चंद भी रथयात्रा देखने के बहाने फौज के साथ पुरी पहुंचेगा। वह रवाना हो चुका है।

रजिया से यह दु:संवाद सुनकर रामचंद्र देव ने सोचा, शायद जो तूफान और बादल आकाश पर से कुछ देर पहले छंट गये थे उन्ही के कारण अब उनके स्वप्नाहत मनका आकाश अंधकाराच्छन्न हो रहा है।

•

सुबह आकाश स्वच्छ हो गया था। रौद्रदग्ध, कंकरीली गैरिक मिट्टी पिछली रात्रि की वर्षा से स्निग्ध और उज्वल लग रही थी। रजिया अपने साथ आए लश्कर घुड़सवारों के साथ पालकी में कटक लौटने लगी। रामचंद्र देव भी घोड़े पर पुरी की ओर चल पड़े। सुबह की धूप में कोहरे से ढकी छायाएं जिस तरह धीरे-धीरे दूर वनशीर्ष पर खो जाती हैं, उसी भांति गंगुआ नदी के मोड़ पर रजिया बेगम की पालकी दृष्टिपथ से ओझल होती गयी। अंतिम अश्वारोही की पगड़ी तक छिप गयी।

रामचद्र देव ने गहरी सास ली, लगाम सभाली और पुरी की सड़क पर घोडा दौड़ाकर चल पड़े ।

सुबह की वर्षा भीगी हवा से अगरु और इत्र की सहमी-सी महक···प्रेममयी, रहस्यमयी रजिया का पुलकित, सम्मोहित करनेवाला स्पर्श, शरीर या मन किस पर लग गया था, रामचद्र देव के लिये सोच पाना कठिन था। उस समय भाव-प्रवणता के लिए अवकाश नही था। केवल चिंतापूर्ण दृष्टि से रामचंद्र देव आसन्न संकट की प्रतीक्षा कर रहे थे।

उस वर्ष मुगल-दगा नही हुआ था और जगन्नाथ ने पतितपावन रूप धारण किया था, इसीलिये दूर-दूर से यात्री पुरी आ रहे थे। दडवती यात्री, पथचारी, घोडे, ऊट, बैलगाडी और सवारियो पर चलनेवाले यात्री उस जनस्रोत की बाढ़ मे तिनकों की भाति बहते चले जा रहे थे। "जगन्नाथ स्वामी नयनपथगामी भव-तुमे" भजन, "भले विराजो जी जगन्नाथ पुरी मे" छत्तीस गढ़ी गीतो के साथ "चकाडोला आजि थका लागिलाणि" आदि आडिसी जणाण अनेक भाषाओं और अनेक रागिनियो मे प्रतिध्वनित हो रहे थे। महाशून्य की आकाश-वेदिका पर सप्याहीन प्राणो की व्याकुल प्रार्थनाए आरती की शिखा की भाति उठकर उसी महाशून्यता मे लीन होती जारही थी।

सडक के नीचे केवडे के झाडो से सटी पगडडी पर पैदल चलनेवाले यात्री थे। पश्चिमी यात्रियो की बैलगाडी या घुडसवारो के घोड़ो के नीचे कुचले जाने के डर से उन्होने कतार बाध रखी थी। चलते-चलते कइयो के पैर सूज गये थे। कइयो के पैरो में छाले पड़ गये थे। क्षतो पर उन्होने कपड़े लपेट रखे थे और फिर भी चल रहे थे। जो चलते-चलते थकावट के कारण पेडो के नीचे सो गये थे, गतरात्रि की वर्षा से भीगकर मरोडे गये कागज के टुकडो की तरह लग रहे थे। विसूचिका की यत्रणा से पानी के लिए उनमे से कुछ की चीत्कार भी सुनाई पडती थी। ज्वर से आत्मरक्षा के अतिम प्रयास के रूप मे कही-कही कराहने का स्वर भी सुनाई पड रहा था। साथी छोडकर चले गये थे। अपरिचित धरती, अपरिचित उदासीन मनुष्य, धूप जले आकाश की चीलें···इस अदग्ध धरती पर अतिम शय्या करने से भी तो पथ श्रम सार्थक हो जाता है। पर पूर्व दुष्कृतियो के कारण वह भी संभव नही है। तीर्थ यात्रा के उस पथ की धूल भी यथेष्ट है। यह सोचकर वर्षा-भीगी धरती को हाथो मे सहलाकर ललाट पर लगाने के बाद धीरे-धीरे मृत्यु शीतल

हाय ललाट पर से भूमि पर गिर जाते; फिर भी इससे जो बच जाते, जीवंत श्मशान की उस शवशय्या पर से उठकर क्लांत शरीर को घसीटते हुए दुर्बल कदमों से आगे बढ़ रहे थे।

"जगन्नाथ, तुम्हारी जय हो। एक कालरात्रि बीत गयी।" वेदना, विषाद, अवसाद की मृत्युजयी आशा और विश्वास की ऐसी विचित्र शोभायात्रा का दर्शन रामचंद्र देव ने जीवन में कभी नहीं किया था।

मनुष्य तो संकट की आशंका से भागा हुआ वन्यपशु नहीं है! मृत्यु उसके पिंड को ध्वंस कर सकती है पर आत्मा को नहीं। आत्मा उसकी अजेय है।

रामचंद्र देव के मन से आशंका और भय का पर्दा हट गया था। अभय के रौद्रालोक से उनके मन का आकाश उद्दीप्त हो उठा।

कटक से शताधिक मुगल लश्कर घोड़ों पर पुरी की ओर बढ़ते जा रहे थे। उनकी गतिविधियों को लक्ष्य करने के लिये रामचंद्र देव ने अपने को एक पेड़ की ओट में छिपा लिया।

उस समय राह चलने वाली एक युवती अपने साथियों से काफी पीछे रह गयी थी। घुड़सवारों को देख वह भय से जब सड़क पर से उतर आने को हुई तो एक घुड़सवार ने उसका आंचल पकड़ कर रोक लिया। वह अकस्मात आंचल के खींचे जाने के कारण गिरते-गिरते संभल गयी। घुड़सवार की आंखों की हिंस्रता को देख वह भय से आर्त्तनाद करने लगी। उस आर्त्तनाद ने मानो घुड़सवारों के हृदय को अश्लील आमोद से भर दिया। यात्रिणी की अनावृत छातियों पर घुड़सवार की आंखें गड़ी हुई थी। व्याघ्रभीता हिरनी की आंखों की भांति उस युवती की आंखों में व्याकुल प्रार्थना थी। रामचंद्र देव उस घुड़सवार पर कूद पड़ने को तैयार हो रहे थे कि पीछे से मेघगर्जन की तरह "होशियार" शब्द उच्चरित हुआ।

घुड़सवारों ने मुड़कर देखा। पीछे काले घोड़े पर स्वयं अमीन चंद थे। घुड़सवार ने अप्रस्तुत होकर यात्रिणी को छोड़ दिया। वह अपने साथियों तक पहुंचने के लिए दौड़ती हुई भागी। घुड़सवारों के वहां से चले जाने तक अमीन चंद वहां रुके रहे।

धीरे-धीरे पगडंडी पर यात्री अदृश्य होते गये। घुड़सवार भी सड़क पर धूल उड़ाते हुए आगे बढ़ गये। अमीन चंद ने लगाम शिथिल की। उसके पैरों का

आघात पाते ही घोड़ा दौड़ने लगा। रामचद देव पेड़ की ओट से निकलकर सड़क पर आ गये। अमीन चद के देखने से पहले उन्होंने आगे बढ़ कर उसके घोड़े की लगाम पकड़कर उसे रोक लिया।

रामचद्र देव को अप्रत्याशित रूप से वहा देखकर अमीन चद ने श्लेषपूर्ण स्वर से उनकी सवर्धना की—"सलाम आलेकूम्।"

रामचद्र देव ने शात गभीरता से प्रत्युत्तर दिया—"जय जगन्नाथ!"

अमीन चद ने पूछा—"अकेले किस ओर निकल पडे हैं नवाब साहब!"

काले सगमर्मर की एक सुगठित प्रतिमा की भाति रामचद्र देव कसकर लगाम पकडे हुए घोडे पर बैठे थे। उनका मुखमडल कठिन और कठोर लग रहा था। आखें अभिव्यक्तिहीन थी, राख के नीचे छिपे अगारो की भाति।

रामचंद्र देव बोले—"मैं पुरी जा रहा हूं।"

अमीन चंद ने पूछा—"तो रथयात्रा के लिये, शायद!"

रामचद्र देव बोले—"जगन्नाथ के राजसेवक के रूप मे रथयात्रा के समय खोर्धा के महाराजाओ की एक विशिष्ट भूमिका है। आप हिंदू है, इसलिये आप शायद जानते होंगे।"

"पर आप तो धर्मच्युत होकर पतित हो गए हैं, नवाब साहब!" अमीन चद बोले।

रामचद्र देव के मुखमडल की रेखाए और कठोर बन गयी। उन्होने उत्तर दिया—"जगन्नाथ के पास हिंदू मुसलमानो मे कोई भेद नही है। सालबेग जैसे मुसलमान तक जगन्नाथ के श्रेष्ठ भक्त के रूप मे प्रभु की करुणा प्राप्त करने मे समर्थ हुए हैं। जहागीर बादशाह के समय केशवदास मारो जैसे हिंदू भी जगन्नाथ पर हाथ उठाकर इहलोक और परलोक के लिए अभिशप्त बन गये। इससे आप क्या समझते हैं! जगन्नाथ के पास कोई भेद है क्या? पर आप कैसे, किस अभिप्राय से निकल पडे हैं अमीन चद जी?"

अमीन चंद ने हठात् कोई जवाब नही दिया। चौडे मुह के गलमुच्छो को बायी हथेली से सहलाते हुए अपमानपूर्ण स्वर से उत्तर दिया—"मुगलबदी के अदर मुगल सरकार के कर्मचारियो के चलने-फिरने के लिये खोर्धा राजा से अनुमति चाहिए क्या? मैं भी रथयात्रा देखने पुरी चल रहा हू।"

रामचद्र देवने पूछा—"तो ये लश्कर आपके अगरक्षको के रूप मे चल रहे हैं!"

अमीन चंद आगे बढ़ जाने का प्रयास करते हुए बोले—"आपका अनुमान सत्य है। उचित समय पर आपको पता चल जाएगा।"

रामचंद्र देव ने अमीन चंद के घोड़े की लगाम खींचकर रोक लिया। बोले—"आपको बेशक पता होगा राजा साहब, अकबर बादशाह के जमाने से यह राष्ट्रीय प्रतिश्रुति मिली है कि जगन्नाथ सड़क पर तीर्थयात्रियों की निरापदा सुरक्षित रहेगी। बंग-विहार और ओड़िसा सूबों के सूबेदार उदारपंथी सुजाखां बहादुर ने उसकी सही व्यवस्था के लिए चौकियां बिठाई थीं। कुछ देर पहले आपके लश्कर एक असहाय यात्रिणी के प्रति जैसा अश्लील बर्ताव कर रहे थे क्या यह उसी प्रतिश्रुति का परिचय है? जजिया के इजारेदारों के जुल्मों के लिए यात्री जगन्नाथ दर्शन से भी वंचित हो रहे हैं। दुःख की बात तो यह है कि यह सब आप जैसे धार्मिक हिंदू की आखों के आगे हो रहा है और आप चुप हैं। इसे हम दुर्भाग्य के सिवाय और क्या कहें!"

अमीन चंद के हिंदुत्व के प्रति इसमें प्रत्यक्ष आक्षेप था, इससे वे कुछ रुष्ट हुए। बोले—"आप तो तुच्छ आत्मरक्षा के लिए धर्मांतरित हो मुसलमान तक बन गये! अब हिंदुओं के लिए आपका सिर क्यों दुखने लगा?"

रामचंद्र देव के होंठों पर मलिन हंसी की एक वेदना-कुंचित रेखा फूट पड़ी। वे बोले—"मुसलमान तीर्थयात्रियों के प्रति भी ऐसा वर्ताव किया जाता तो मैं उसका प्रतिवाद करता। संकीर्ण धर्मधारणा से ऊपर संसारमुक्त मनुष्य के आराध्य देव हैं जगन्नाथ। उनके तीर्थयात्री अपने आपमें एक महातीर्थ है। उनपर इस जुल्म को अल्लाहताला भी बरदाश्त नहीं करेंगे।"

अमीन चंद की दोनों आखें हिंस्र पशु की भांति जलती-सी लगीं। कमर पर झूल रही तलवार की मुट्ठी पर हाथ रखे वे कहने लगे—"तो क्या आप मुझसे कैफियत चाहते हैं?"

रामचंद देव ने अमीन चंद के घोड़े की लगाम छोड़ दी। बोले—"मैं आप जैसों से इसकी कैफियत की आशा नहीं रखता। यह कैफियत कभी खुद नायब-नाजिम तकीखां देंगे। राजा अमीन चंद, मैं तो आपकी आंखों में धर्मच्युत हूं ही, पर आपको याद दिलाना चाहता हूं कि हिंदुस्तान में हिंदू ही हिंदूधर्म का विरोध करता है। इसलिये यहां संकीर्ण स्वार्थसिद्धि के अलावा और कोई महत्तर जातीयता की सूचना नहीं मिल रही है। आप जा सकते हैं। आप और मैं, हिंदू

और मुसलमान, एक ही नाव पर बैठे हुए हैं। मुझे कैफियत देने की कोई आवश्यकता नही है। आप अगर दे सकते हैं तो अपने विवेक को दे, इतिहास को दे!"

रामचंद्र देव की ओर निर्वाक् क्रोध से अमीन चद ने देखा और घोडा छुटाए चले गये। उनकी आखो की प्रज्वलित दृष्टि मे यही चेतावनी थी—"हाफिज कादर, तुम अपरिणामदर्शी हो। तुम तैयार रहो, कैफियत देने को!"

कुछ ही कदम सामने एक बरगद पर से झूल आई जटाए सडक पर पसर आयी थी। अमीन चद वही रुक गये और उन्होने मुडकर देखा कि रामचद्र देव घोड़े पर बैठे हुए पत्थर की मूर्ति की तरह खडे हैं। उन्होने म्यान मे से तलवार निकाल ली और एक ही वार से कई जटाओ को काटकर फेंक दिया।

रामचद्र देव के पास सडक के किनारे के केवडे के झाडो के नीचे एक शव पड़ा था। कुछेक गिद्ध शव की गध पाकर वहा मडरा रहे थे। कुछ शव को घेरे हुए थे। रामचद्र देव घोडे पर से उतर आए और उन्होने एक ही वार से कई गिद्धो की गरदनें काट डाली। धड से सिर के अलग होने पर गिद्धो के कबध शव पर नाचने लगे। दूसरे गिद्ध चीत्कार करते हुए भाग गये। शव का शीतल शरीर काटे गये गिद्धो के खून के फव्वारे से लाल हो गया। केवडे के झाडो मे एक सियार छिपा हुआ था जो क्षुधित आखो से रक्ताक्त शव को देख रहा था।

रामचद्र देव के सिर पर खून चढ आया था। वे अकारण उत्तेजना से अट्टहास कर उठे। अट्टहास की ध्वनि सुन सियार डरकर भाग गया।

रामचद्र देव एक प्रमत्त उल्का की भाति पुरी सडक पर घोडा दौडाते हुए अमीन चद का अतिक्रम करके चले गये।

3

अमीन चद ने देखा कि उनके हाथ मे केवल दो दिन ही हैं।

आज अणसर द्वादशी हुई। कल नवयौवन दर्शन। उसके बाद आपाढ शुक्ल द्वितीया के दिन रथयात्रा होगी।

पुरुषोत्तम क्षेत्र मे नायबी के लिये जिस दिन से अमीन चंद पहुचे हैं उसी दिन से इसी चेष्टा में हैं कि रामचंद्र देव छेरापहरा जैसे राज कार्यो का सपादन न कर पाएं। अमीन चद को आशका थी कि अगर रामचद्र देव निर्विघ्न छेरापहरा आदि विधियों का संपादन करते हैं तो उनका चलत विष्णुत्व ओडिसा के जन-मानस मे पुन प्रतिष्ठित हो जाएगा। पाइक, दुर्गपति, सामंत तथा ओड़िसा की जनता फिर से रामचंद्र देव की विश्वस्त तथा अनुरक्त बन जाएगी। राज सेवा के अवसर पर रामचद्र देव के साथ रहने के लिए अठारह रजवाडों के राजा-महाराजा आ गये हैं। मुगलबंदी के कई जमीदार, हरिपुर, मयूरभज आदि भंज-राजाओ के दल भी पारपरिक विधि के अनुसार रामचद्र देव के पास छत्र-चामर आदि धारण करने के लिए पहुंच चुके हैं।

ओड़िसा की इस राजनैतिक एकता को द्विधाघात करने के लिए तकीखां के जितने कूट-कौशल थे, सब नदी स्रोत पर बने रेत के बाध की भांति धीरे-धीरे नष्ट हो गये। अमीन चंद तकीखा के द्वारा प्रेरित होकर पुरुषोत्तम क्षेत्र के नायबके रूप मे आया था। अगर कुछ प्रतिकार हो सका, किसी भी उपाय से धर्मच्युत रामचंद्र देव को उन पारंपरिक सेवाविधियो से वचित किया जा सका और उनके स्थान पर अमीन चद उन कार्यों का संपादन कर सके तो सिर्फ तकीखां का ही मतलब पूरा नही हो जाएगा, उससे कटक से दिल्ली मुर्शिदाबाद तक अमीन चद के नाम की जय-जयकार भी होगी। इसके बल पर कटक सरकार मे अमीन चंद क्या से क्या नही बन जाएगे?

पर हठात् जगन्नाथ पतितपावन बनकर म्लेच्छ रामचंद्र देव पर प्रसन्न हुए हैं। उसी के आधार पर मुक्तिमंडप के शासनी ब्राह्मण पंडित और समग्र भारत के ब्रह्मचारियों ने निर्णय किया है कि राजा छेरापहरा आदि कार्य कर सकते हैं। इससे अमीन चद की आशाओं पर पानी फिर गया है।

इसलिये पुरी मे जब से अमीन चंद पहुंचे हैं तबसे वे बड़परीछा गौरी राजगुरु के साथ मंत्रणा कर रहे हैं। किस तरह रामचद्र देव को वचित कर सकेंगे इसीका उपाय सोच रहे हैं। गौरी राजगुरु की सहायता के ईनाम के रूप मे उन्हें चिलिका तट पर स्थित अंधारी परगना प्राप्त होगा। पर मुक्तिमंडप के सिद्धांतो को बदलना कैसे सभव है! बड़परीछा पद और पदवी राजा के अनुग्रह पर निर्भर करता है। इसलिए अंधारी परगना का प्रलोभन होने पर भी उस दिशा में गौरी

राजगुरु बढ़ नही पा रहे थे। फिर भी अमीन चद, गौरी राजगुरु और दूसरे सेवको के जरिये कुछ करने की चेष्टा मे लगे हुए थे।

अणसर द्वादशी मे दइता, पति महापात्र, स्वाईं महापात्र, तलिछो महापात्र, तढ़ाउ पट्टनायक और देउल करण आदि मदिर सेवकों को राजा द्वारा स्पर्शित वस्त्र-प्रदान किये जाते हैं। उसी से रथयात्रा की विधियों का श्रीगणेश होता है। अगर उस समय ये सेवक म्लेच्छ राजा से वस्त्र ग्रहण करने को मुह पर ही मना कर दें तो मुक्तिमडप के सब निर्णय निरर्थक बन जाएगे। दइता और पति महापात्र जगन्नाथ के आदि-सेवक हैं। स्नान पूर्णिमा से रथयात्रा तक श्री जगन्नाथ की सारी विधियो के विधायक हैं। उनपर मुक्तिमडप का कोई वर्तृत्व नही है। वे अगर सही समय अड़े रह जाए तो वहा मुक्तिमडप के सिद्धातों का कोई अर्थ नही रहेगा। इसलिए अब पति महापात्र, पेंढ सुआर अमीन चद का दाया हाथ बने हैं। इसके लिये पेंढ सुआर को पेशगी तक मिल चुकी है।

द्वादशी मंडप का भोग अणसर के अतराल मे समर्पित हो चुका है। इसके बाद दक्षिण द्वार के लडावर्त्त पर से चादी की थाली में 'पाटडोर' लेकर सेवक 'श्रीनवर' को चलेंगे। पेंढ सुआर ने दायित्व ग्रहण किया है कि श्रीनवर मे राजा से वस्त्रदान के समय वे प्रत्याख्यान करेंगे। वह समय अब आ गया है। इसलिये अमीन चद मदिर मे इधर-उधर भटकते हुए व्यस्त होकर पेंढ सुआर को ढूढ रहे हैं।

भाजणा मडप पर एक वृद्धा यात्रिणी और उसके साथ आयी कुछ विधवाओ को लेकर सेवको के दो दलो मे तुमुल वाक्‌युद्ध चल रहा था। वहां प्रत्येक वृहस्पतिवार को लक्ष्मी की भाजणा होती है। रुक्मिणी विवाह उत्सव भी उसी मडप पर होता है। सहस्र कुभाभिषेक का स्थान भी वही है। इसलिए यात्रियो से मिली दक्षिणा का बटवारा किया जाता है। लक्ष्मी की भाजणा-कौडी को महाजन लेते हैं। पूजा दक्षिणा पडो को मिलती है। रुक्मिणी-विवाह के समय जो पैसे मिलते हैं उसे महाजन और पंडे बाट लेते हैं। सहस्र-कुंभाभिषेक की भेंट पति महापात्रो की होती है। ये विधिया आवहमान काल से प्रचलित हैं। पर यहां यात्रियों से मिली दक्षिणा को लेकर प्राय. द्वद्व चलते रहते हैं। विशेषत. रथयात्रा के समय यह बात जिसकी लाठी उसकी भैंस की तरह बन जाती है।

उस समय वहा कुछ परदेसी यात्रिणियो को पूजापडा और नियोग बलिया

पूजापंडा भाजणा मंडप दिखा रहे थे। वे बता रहे थे कि यहां मनौती मानने से सब कामनाएं पूर्ण होती हैं। लक्ष्मी देवी के भाजणा के लिए दान करने से स्वयं जगन्नाथ संतुष्ट होते हैं...आदि-आदि अनेक तथ्यों का वर्णन करते जा रहे थे। भाजणा मंडप के महत्त्व को उनके जरिये समझकर यात्रिणी अपनी क्षमता के अनुसार कुछ चढ़ाती है। तांबे की मुद्रा या कौड़ी वह कुछ न कुछ अवश्य चढ़ाती है। पर, उस समय उन यात्रिणियों की क्षमता का जैसा अनुमान लगाया गया था उसी के अनुसार उनके भेंट न चढ़ाने के कारण महाजन नियोग के दाम सुआर ने एक यात्रिणी की बांह पकड़ ली और भगेड़ी स्वर में कहने लगा—"ए माई, क्या करती है? लक्ष्मी देवी को भीख दे रही है क्या? डाल, डाल, कम से कम एक चांदी का जहांगीरी रुपया तो डाल!"

यात्रिणी अपनी बांह पर एक अपरिचित पुरुष का स्पर्श पाकर चौंक पड़ी और सिहरकर पीछे हट गई। उससे दाम सुआर आदि और जितने सेवक थे ठहाके लगाने लगे और यात्रिणियों में जो युवतियां थीं उनसे भेंट वसूलते समय कुछ रसिकता दिखाने लगे थे। उन यात्री-यात्रिणियों के पास पैसे नहीं थे ऐसा नहीं था, पर अगर सब यहीं खत्म हो जाएं तो उनको मिलने वाली दक्षिणा का परिमाण कम हो जाएगा। साधारणतः महाजन नियोग का दाम सुआर और बलिआ पूजा पंडा के बीच संपर्क तिक्त होता है। दोनों मल्लों की तरह दिखते हैं जैसे लोहे से बनी मूर्त्तियां हों। बलिपंडा अपनी लंबी तोंद के नीचे अंगोछा कसकर दाम सुआर की बांह पकड़कर चिल्लाने लगा—"मेरे यात्री को छूने वाले तुम कौन होते हो रे नालायक!"

इस चुनौती को सुनकर दाम सुआर की मांस-पेशियां तन गयीं। वह मुंडित मस्तक की चोटी की गांठ को नचाते हुए यात्रिणी की बांह को अधिक जोर से पकड़कर चिल्लाने लगा—"तू कौन होता है कहने वाला...पाखंडी तुझे इस यात्री से क्या लेना देना?"

उन दोनों की रणप्रस्तुति देखकर सभी महिलाएं एक-दूसरी को आशंकित दृष्टि से देखने लगीं। अमीन चंद कुछ ही दूरी पर रहकर उस ग्लानिकर दृश्य को देख रहे थे। जगन्नाथ के पुण्यपीठ को यवन म्लेच्छ के प्रभाव से कलुषित करने के लिए तर्कोखा द्वारा प्रेरित होकर वे आये थे, यह सच है। उसमें उनका स्वार्थ भी अवश्य था। फिर भी जगन्नाथ के सेवकों द्वारा जगन्नाथ दर्शनाभिलाषी यात्रिणियों के

प्रति ऐसा बर्ताव और उसके लिए उस अश्लील झगड़े को देखकर वे भी क्षोभ और विरक्ति से जर्जरित हो उठे थे।

अचानक अमीन चंद यात्रिणियों के प्रति आकृष्ट हुए। उनकी गहरी बोली से उन्होंने समझ लिया कि वे महिलाएं उन्हीं के देश की हैं। अमीन चंद खुशी से चिल्लाते हुए उनकी ओर तेजी से बढ़ गए।

अमीन चंद को अचानक 'हटो यहां से' चिल्लाते सुन और उनके आकस्मिक अविर्भाव से सहमकर दोनों तेजी से हट गये। उसी मौके से 'य पलायति स जीवति' की तरह वहां से महिलाएं भाग गयीं और बस्तयट के पास प्रतीक्षा में खड़ी अपनी अन्य सहेलियों के पास आ गयी।

दाम सुआर अपनी मुट्ठी में से इस तरह यात्रिणियों को निकल जाते देखकर अमीन चंद पर गुस्से से बरस पड़ा। "तुम इस मंदिर के अंदर क्या हो ? यह क्या पठान नायब-नाजिम की जूठन चाटने की जगह हुई है जो हमें लाल आंखें दिखाते हो ? यह कालिया बलियार भुज का अस्थान है, पता है ?"

दाम सुआर के इस आकस्मिक विस्फोट के कारण अमीन चंद भी कुछ सहम गये। दाम सुआर के शरीर को देख कर आगे बढ़ने का साहस भी उन्होंने नहीं किया।

दाम सुआर और बलिपूजा पंडा के मामूली झगड़े में तकीखा के नायब अमीन चंद को टांग अड़ाते देख परिस्थिति चित्ताकर्षक और कौतूहलोद्दीपक होने लगी थी। अमीनचंद को मनसबदारी खिताब मिला था। उस पर वे शुद्ध नायब-नाजिम तकीखा के द्वारा खास करके भेजे गये थे और वह भी जगन्नाथ पुरुषोत्तम क्षेत्र को आयत्त करने के लिए ! अपने प्रति पंडों का इस तरह का अपमानजनक व्यवहार और भर्त्सना उनके लिए असह्य थी। उन्होंने कमर में से छुरी निकाल ली और पंडे पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हो गये।

पर इससे दाम सुआर डरने वाला नहीं था। साथ ही भांग का नशा भी सप्तम पर चढ़ा हुआ था। कई अखाड़ों की धूल से धूसर उसकी पेशियां भी तो लोहे की गेंद की तरह कठिन थी। वह भी अमीन चंद की ओर बढ़ आया। कहने लगा—"अरे बेटे, बिच्छू का मंतर भी तुझे मालूम नहीं, उस पर काले नाग को छेड़ने चला है ? यह नायब-नाजिम का दरबार है क्या रे, कि मुझे रौब दिखाएगा ? यह बलिआर भुज का श्रीवत्स खंडाशाल मंदिर है। अरे मुए, यहां लाल आंखें दिखाने

से कोई लाभ नही होगा। आजा, शक्ति है तो अखाड़े पर आजा! देख लेंगे तू क्या है और मैं क्या हूं?"

दाम सुआर जब कमर पर अंगोछी कसकर कलसी की तरह नाच रहा था तब वहां बैठे दूसरे पंडे और सेवक एक-दूसरे से कहने लगे—"यह पठान की जूठन चाटने वाला आया है, पुरुषोत्तम क्षेत्र का दीवान बनने! अरे चल हट—गुरु का लड़का गुरु होगा और भाट का भाट!"

इस भांति जब वाक्‌युद्ध जोरों पर था तब शोरगुल सुनकर हाथ की सोने की छड़ी घुमाते हुए वहा बडपरीछा गौरी राजगुरु आ पहुचे। उन्होने वहा अमीन चंद को देखकर उनकी बाह पकड़ ली और बोले—"आप यहां क्या कर रहे है राजा साहब! सेवकों को इस तरह चिढ़ाने से आप ही के उद्देश्य साधन मे बाधा आएगी। याद रखें।"

बडपरीछा को देखकर तलिछो महापात्र ने व्यस्त कंठ से कहा—"अरे जाइए आप, उधर द्वादशी विधियो के लिए देर होती जा रही है। अरेहोआस्थान प्रतिहारी भोली बडु! आज और कुछ होगा कि नही। श्रीनवर को कब थाली जाएगी?"

बड़परीछा को देखकर भाजणा मंडप से सारे सेवक इधर-उधर चले गए। मदिर के बेडे के अंदर उत्सव आदि के समय ऐसे दृश्यों का दर्शन अस्वाभाविक या विस्मित करने वाली बात नही है।

अमीन चद ने सामान्य अप्रतिभ स्वर से कैफियत देनी चाही—"मै यहा पेंढ सुआर को ढूंढते हुए आ पहुचा था।"

गौरी राजगुरु ने उनके कानो मे धीरे-धीरे कहा—"वह अभी 'मेरदा रोष' या 'सर घर' मे सोया होगा। आप इस रास्ते से जाए।"

अमीन चद दक्षिण दिशा के प्राचीर से सटे हुए मेरदा रोष घर की ओर चल पड़े। गौरी राजगुरु ने उन्हे पीछे से पुकार कर कहा—"उसे शीघ्र भेजें। पाहाडा पर थाली बिठाने का समय भी हो गया है।"

मेरदा रोष और सरघर की पंक्तियां दक्षिण बेड़े से सलग्न हैं। ये घर वर्ष भर अव्यवहृत अवस्था मे पड़े रहते हैं। मदिर की रंधन शाला की मरम्मत के समय इन घरो का अस्थायी रंधन शाला के रूप मे उपयोग किया जाता है। परीछा को कुछ ले-देकर पेंढ सुआर ने उन घरों को अपने लिए रख लिया है। किसी विशिष्ट

अतिथि या यात्री यजमान के आने पर उन्हें यहीं ठहराते हैं। घर के अंदर गुफा की भांति अंधकार है। दक्षिण दिशा के प्राचीर पर महावीर की एक सिंदूर-चर्चित मूर्ति है। महावीर के लिए नियमित पूजा की कोई विधि नहीं है। जिस दिन सुआरों की महावीर के प्रति भक्ति उमड़ पड़ती है उस दिन पेंढ सुआर पानी खींच कर स्नानादि कराके पूजा कर लेते हैं। नहीं तो प्रत्यह भोग बांटे जाने के बाद उन्हें आद्य नैवेद्य के रूप में जो कुछ भी मिल जाता है उसीसे संतुष्ट होकर महावीर जी उस आस्थान के रक्षक के रूप मे खड़े हैं।

पेंढ सुआर उसी मेरदा रोष घर की एक बीच की कोठरी मे, सिर पर नागेश्वर पुष्प की माला बांधे, भाग के नशे से बेसुध हो नारियल पत्तों से बनी चटाई पर चित लेटे पड़े थे। उस घर की चट्टान पर एक कोने मे भाग घोटने के लिए पत्थर पड़ा था। एक खाली अन्न की कुड़िआ पड़ी थी, साग दाल की हंडी का एक टुकड़ा पड़ा था जिस पर बैठी मक्खियां भनभनाती हुई कभी-कभार आकर सुआर के गालों पर बैठ जाती थी। उनके मुह मे से लार गालों तक बह आयी थी।

परीक्षा की ताड़ना के कारण इस बीच दक्षिण द्वार के लडावर्त्त पर पाहाडा बिछाने का कार्य आरंभ हो चुका था। घंट बजाने वाले घंट बजा रहे थे। उसी शब्द से धीरे-धीरे पेंढ सुआर की आखें खुल रही थी। आज अवश्य उनका कोई दायित्व नही है। केवल अमीन चंद का कार्य करने के लिए वे आये थे। द्वादशी मे थाली बिठाई जाने की विधि का जब पालन होगा उसकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे-बैठे भाग के लिए आखें अपने आप मुद आयी थीं।

घंट ध्वनि सुनकर जब पेंढ सुआर की नीद टूटी, तब आकाश मेघाच्छन्न था और उनके चित्त के प्रणानक के प्रमत्त होने के कारण समय क्या हो गया था वे समझ नही पा रहे थे। साथ ही वे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल या महाशून्य, कहां थे—यह भी नही समझ रहे थे। महावीर की सिंदूर-चर्चित मूर्त्ति को अकस्मात देख उन्होंने शायद यह भाप लिया कि वे अभी तक इहलोक मे हैं। आज सुबह जिद के कारण भाग के साथ कुछ धतूरे के बीज और गाजे की कलिया जो मिलाई गई थी वे कुछ ज्यादा हो गई थी। साथ ही नाग के विष की दो-तीन बूंदें भी डाली गयी थी। इसलिए प्रणानक अधिक तेज हो गया था। पेंढ सुआर की नीद तो टूट गई थी पर नशा उतरा नही था। वे धीरे-धीरे चट्टान पर बैठने की चेष्टा कर रहे थे। पर सिर अस्वाभाविक रूप से बोझिल लग रहा था, जिसके कारण उठना संभव नही

हो रहा था। दो-तीन जम्भाइयां भरकर हाथ ऊपर उठाकर चुटकियां मारीं तो कुछ हलका-सा लगा। उसी समय अमीन चद 'मेरदा रोप' के बरामदे में आकर अंदर झांकते हुए विरक्ति मिश्रित स्वर में कहने लगे—"पेंढ सुआर यहां हो क्या, हो !"

पेंढ सुआर चटाई पर से चिल्लाए—"कोई आ गया मधुर संबंध रखने वाला। वेइपो नाम लेकर पुकारता है ! अरे पेंढ सुआर कलाबलिआ के अलावा और किसी का खाता-पीता नहीं है। यजमान हो तो सिर खरीद लिया है क्या ?"

अमीन चंद पेंढ सुआर का यह संभाषण समझ नहीं रहे थे पर उसका स्वर पहचान कर वे अंदर आ गये। उन्हें देखकर संभ्रम के साथ पेंढ सुआर उठकर बैठ गये। तब जाकर पेंढ सुआर को होश आया।

अमीन चंद रुष्ट स्वर में बोले—"तुम यहा पड़े-पड़े खर्राटेभर रहे हो और वहा अणसर पीठ से राजप्रसाद थाली श्रीनवर को पहुंचाई जाने लगी है। अब और किस समय काम होगा ?"

पेंढ सुआर उठ खड़े हुए। अमीन चदको आश्वासन देते हुए बोले—"वृथा बात है। कौन वहां चला जाएगा मणिमा ! चउवाहा के तो हाथ-पैर नहीं है। वह किधर जाएगा ? आप कहा जाएगे, मैं कहां चला जा रहा हूं ! हम अपनी-अपनी जगह खड़े होकर पैर चला रहे हैं। धीरज से काम लें मणिमा ! मैं चलता हू। अभी सत्र ठीक-ठाक किये देता हूं।" पेंढ सुआर कमर पर अंगोछी कसकर अपने लंबोदर को नचाते हुए दक्षिण द्वार के लडावर्त्त की ओर बढ़ने लगा। पर अचानक वह लौट आया और अमीन चंद के आगे हाथ पसारकर कहने लगा—"आज अणसर द्वादशी है। पर आज सुबह से एक तांबे का पैसा तक हाथ नहीं आया, न एक कौड़ी तक देखने को मिली। मणिमा, एक अशर्फी मजूर हो जाए !"

अमीन चद को मालूम था कि एक अशर्फी देने से काम नहीं बनेगा। बेकार बातों में समय गंवाने से क्या लाभ है ? नही देने से पेंढ सुआर एक कदम भी आगे नही बढ़ेगा और तब तक श्रीनवर को थालिया पहुंच गई होंगी। नायब-नाजिम तकीखां के दरबार मे भी यही होता है। किसी प्रार्थी जमीदार या इजारेदार को दरबार में पेश करते समय वे भी तो चलते-चलते बीच मे रुक जाते हैं और अपना पावना माग लेते हैं। इसलिए अमीन चंद ने भी देर नही की। जेब से एक अशर्फी निकाल कर मन ही मन रुष्ट होते हुए भी पेंढ सुआर के हाथमें रख दी। पेंढ सुआर अशर्फी

को देखकर और कमर में अच्छी तरह खोंसकर दक्षिण द्वार के संडावर्त्त की ओर 'प्रबल-मत्त-वारण' की भांति बढ़ गया।

उस समय संडावर्त्त पर पाहाडा बिछाया जा चुका था। सब दइतापति अणसर-पीठ पर थालियों को ले आने के लिए तैयार खड़े थे। घंट बजाने वाले धनुष की तरह झुककर फिर सीधे होकर नाचते हुए घंट बजा रहे थे। तुरियां बज रही थीं। वहां वैसे कुछ देखने लायक नहीं था, फिर भी संडावर्त्त के चारों ओर यात्री घिरे हुए थे।

इसके पहले अमीन चंद पेंड सुआर को एक अशर्फी पेशगी दे चुके थे। अब एक और देनी पडी। उन अशर्फियों के बदले काम ठीक हो रहा है यह जानकर निःसंशय हो जाने के लिए वे भी पेंड सुआर के पीछे-पीछे आकर भीड़ में शामिल हो गये थे।

चागडा मेकाप भंडार घर से चांदी की तीन थालियां ले आया और उन्हें पाहाडा पर सजाकर रख दिया। थालियों पर दइता प्रस्त-प्रस्त करके पट्ट-यन्त्र रख रहे थे। उस समय दोउकरण दंतारी पट्टनायक स्पष्ट स्वर में बोले— 'अरे यहां तीन थालियां क्यों रखी हैं ? मणिमा का आदेश है चार थालियां रखी जाएंगी।"

चागडा मेकाप दोउकरण की बातों को अस्वीकार करता-सा बोला—"प्रतिवर्ष तो तीन थालियां रखी जाती थीं, एक महाराज की, दूसरी महारानी की, तीसरी जेनामणि की। पिछले वर्ष तो एक ही थाली रखी गई थी, यवनी वेणुभ्रमरवर के लिए। अब इस वर्ष किस शास्त्र के अनुसार चार थालियां रखी जाएंगी ?"

दोउकरण इस युक्ति का उत्तर देने को प्रस्तुत नहीं थे। वे बोले—"अदरक बेचने वाले को जहाज का भाव जानकर क्या लेना ? हम जो कहते हैं वही करो, भंडार से एक और थाली ले आओ।"

चागडा मेकाप एक और थाली लाने के लिए चला गया।

उस समय संडावर्त्त के पास पेंड सुआर हांफता हुआ पहुंचा और कर्कश स्वर में कहने लगा—"यह एक थाली जो रखी जाएगी, यह क्या महाराज की यवनी रानी के लिए रखी जाएगी ? प्रतिवर्ष तो तीन थालियां ही रखी जाती थीं, अब चार क्यों ?"

पेंड सुआर ने बात जिस तरह कही थी उससे उपस्थित सारे सेवक हंस पड़े। उस हंसी को अपनी बातों के प्रति समर्थन मानकर वह चिल्लाने लगा—"धिक्कार

है तुम्हें; महाराज ने धर्म त्याग किया, म्लेच्छ हुए ; और अब उस यवनी के लिए थाली तक बिठा रहे हैं ? और तुम्हें भी लज्जा नहीं आती, जो म्लेच्छ के स्पर्श किये गये कपड़े को लेकर रथयात्रा का श्रीगणेश करोगे ; धिक्कार है तुम्हे !"

इससे बात का रुख इस तरह बदलेगा इसकी आशंका तक किसी ने नहीं की थी। इसलिए सारे सेवक किंकर्तव्यविमूढ़ होकर एक-दूसरे को देखने लगे, पेंढ सुआर यात्रियों में अमीन चंद को खड़े देखकर उच्च स्वर में कहने लगा—"इस वर्ष श्रीनवर को थालिया नहीं जाएंगी। राजा ने धर्मत्याग किया है; छेरा पहरा करने के लिए रथ पर वे चढ नहीं सकेंगे।"

तब ढोउकरण ने पूछा—"तो राजविधियों का संपादन किससे होगा ?"

पेंढ सुआर ने अम्लान मुख से उत्तर दिया—"राजा अमीन चंद ! वे श्री क्षेत्र के नायब बनकर आए हैं। पिछले वर्ष यह कार्य वेणु भ्रमरवर ने किया था, इस वर्ष राजा अमीन चंद करेंगे।"

अमीन चंद का नाम सुनते ही कुछ देर पहले जो सेवक अमीन चद द्वारा लाछित हुए थे वे नागों की भांति फुफकारने लगे···"स्वयं जगन्नाथ पतितपावन बनकर राजा के प्रति संतुष्ट हुए हैं···वह कुछ भी नहीं। मुक्ति मंडप के पंडित ब्रह्मचारियों ने अनुमति दी है वह महत्त्वपूर्ण नहीं हुई···और ये कहने आये हैं पठान की जूठन चाटने वाला यह अमीन चंद राजकार्य करेगा !"

उसी कोलाहल में इस बीच एक और थाली लाकर चांगड़ा मेकाप ने रख दी थी। अवस्था देखकर सान परीछा विष्णु महापात्र अणसर पीठ पर चंचल थाली लाने को कह रहे थे। घंट और तूरी का स्वर इतना तेज था कि पेंढ सुआर और सेवकों के बीच हो रहा वाक्युद्ध सुनाई नहीं पड़ रहा था। उसी कोलाहल में दइत भी थालियों को उठाकर ले जा रहे थे और शीघ्र ही लडावर्त्त को अणसर पीठ से थालियां लौट आ रही थीं।

तलिछो महापात्र पघानि को पुकार कर कहने लगे—"थाली शीघ्र उठाओ ! आज सब विधियों के लिए देर होती जा रही है।" दइतों के थालियों के कंधों पर रखते समय घंट और तूरी के नाद से मंदिर प्रांगण प्रकंपित हो रहा था। सब खुटिआ उच्च स्वर से कहने लगे—"चक्र की ओट में, शंख में रत्न के खोर्धा राजा की रक्षा करो हे वनियार भुज।"

समवेत यात्रियों ने हरिबोल और हुलहुली ध्वनि लगाई।

हरिबोल, हुलहुली, घंट और तूरी की मिश्रित ध्वनि से मंदिर प्रांगण मुखरित हो उठा। दइता पति, स्वाईं महापात्र, देउकरण, देउलकरण, तलिछो महापात्र आदि सेवक यात्रियों को लेकर शोभायात्रा मे श्रीनवर की ओर निकल पड़े।

आसन्न सध्या का मूर्च्छित अधकार और श्रीनवर राज प्रासाद को जाते हुए कर्मचंचल कोलाहल में दो जन दूर खडे होकर स्थाणु प्रतिमाओ की तरह निर्वाक निस्पदित, निराश खड़े थे। वे थे बड़ परीछा गौरी राजगुरु और राजा अमीन चंद। पॅड सुआर सपूर्ण रूप से अत्यत अनासक्त की भांति अपना हिस्सा पाने के लिए शोभायात्रा के पीछे-पीछे चलने लगा था।

5

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया—

नीलाचल श्री जगन्नाथ की रथयात्रा के लिए मुखरित था। बलगडि से सिंहद्वार तक रथ दाड जनपूर्ण था। विग्रहो की पहडी देखने के लिए सब भक्त अपने-अपने स्थानो पर उद्ग्रीव प्रतीक्षा मे खड़े थे। हिमाचल से कुमारिका कामाक्षा, कुमारी पीठ से द्वारका तक भारतवर्ष के अनेक अचलो से आए यात्रियो की विचित्र वेश-भूषा, अनेक भाषाओ का कोलाहल, अनेक वर्णों के विन्यास का सुदर समारोह बलगडी से सिंहद्वार तक को परिपूर्ण किये हुए था। उसी मे यात्रा-रसिक रसिकता के सधान मे इधर-उधर मयरगामिनियो के पीछे-पीछे तितलियो की भांति उड रहे थे। जो नवागिनी कुरगी दशाएं अपने सहयात्रियो के पीछे रह गई हैं उनके उन्मुक्त बाहुमूल मे ईषत् प्रकाशित गुर्ठित हरिद्रालिप्त स्तनाग्र पर अपरिचित कर-स्पर्श से जैसे कदब के रोमाच की सृष्टि हो रही है। उन आखो में प्रतिवाद अवश्य है, पर प्रतिरोध नहीं। उसी तरह के एक यात्रा रसिक को उसके एक बधु ने आमोदपूर्ण स्वर मे कहा—"रथ पर जगन्नाथ के दर्शन के पहले ही फल मिल गया मितवा!"

यात्रा रसिक ने उत्तर दिया—"फल तो अवश्य मिल गया है मितवा, पर सिंहद्वार की चदन अगनी जब तक खुल न जाय पूजन कैसे हो?"

उसके बाद दोनों बंधुओं के अधरों पर जैसे आत्मसंतोष की हंसी फूट पड़ी।

जिस यात्रिणी के प्रति यह रसिकता की गई थी उस विचारी का कोमल कमनीय मुखमंडल तपती धूप और पथ श्रांति मे जितना अरुण नही हुआ था उससे कही अधिक अरुणाभ लगने लगा इस वक्रोक्ति परिहास के कारण।

गौड़ से चलकर आए वैष्णव, शृंगार-रस-विवंशा-भाविनी व्रजवधुओं की भांति दोनो बांहों को ऊपर उठाकर वलखाते हुए उस जन समुद्र मे कीर्त्तन करते हुए आ रहे थे—"कहा तुहुं व्रजेंद्र कुमार !"

उस दृश्य को हीन दृष्टि से देखने वाला उत्कालीय वैष्णव हरि-तिलक-चर्चित नाशा कुंचित करके अपने आप अकेले मृदंग बजाते हुए गाता जा रहा था—"जय जय अणाकार नीलाद्री विहारी है।"

विक्रेता अपने-अपने पंय सभारों को लेकर क्रेताओ को आकर्षित करने की चेष्ठा कर रहे थे। भीड और धूप के ताप मे देखते-देखते कोई रुग्ण, क्लात यात्री कही नीचे बैठकर उस अदग्ध मिट्टी मे देह धारण की अंतिम आशा को सार्थक कर रहा था। यति और युवति, साधक और रसिक, मृत्यु और शृंगार, भक्ति और प्रमत्तता, तुच्छता और नित्यता, अवसाद और जीवनोच्छलता के उस कोलाहल में अटल धैर्य-पिंडित प्रतीक्षा अंकित थी। सब की दृष्टि सिंहद्वार के रुद्ध अर्गल पर गडी हुई थी। कब सिंहद्वार खुलेगा, कब परमेश्वर की पहंडी होगी, सबकी आखो मे उसी की प्रतीक्षा थी। मध्याह्न के आकाश पथ पर बादल और धूप मे नीलाचल की रथयात्रा देखने कौन आगे आये, इसके लिए होड-सी लगी थी।

मध्याह्न का समय होने को आया। अन्य वर्षो मे अब तक जगन्नाथ की पहंडी समाप्त होकर छेरा आरभ हो गया होता।

पर इस वर्ष पता नही किस लिए पहंडी मे विलंब होता जा रहा है। उसका कारण जानने के लिए दर्शको मे से एक भी विचलित नहीं हो रहा था। यहा तक कि एकादशी का उपवास करने वाले भी चिंतित नही थे। सबकी उत्कंठित दृष्टि रुद्ध सिंहद्वार पर निबद्ध थी। कब द्वार मुक्त होगा, कब महामामत श्री जगन्नाथ पहंडी करते हुए आएंगे—सब मे उसी की प्रतीक्षा थी। यह प्रतीक्षा क्लात, धूलिधूसरित, क्लेदाक्त धरती की देवता के अवतरण के लिए अहल्या के पाषाण धैर्य की प्रतीक्षा की भांति थी।

सिंहद्वार के संमुख बलभद्र, सुभद्रा और जगन्नाथ जी के रथ—पट्टपताका,

चामर, पुष्प, कलश आदि से सुशोभित होकर महाप्रभु की पहंडी विजय की प्रतीक्षा कर रहे थे। रथो की रूप शोभा देखने के लिए रथो के चारो ओर यात्रियों की भीड धीरे-धीरे बढ रही थी। अनंत प्रतीक्षा के अंत मे प्राप्ति की सभावना की भाति रथ पर कलश चूडा के ध्वज मद-मंद पवन से आदोलित हो रहे थे। 'चार' पर यात्रियों की भीड चीटियो की धार की भाति रथ पर चढ कर उतर रही थी।

उसी समय वह जन समुद्र हठात् 'मणिमा' 'मणिमा' की ध्वनि से उद्वेलित हो उठा। शताधिक चामर फेनिल लहरो की भाति आदोलित हो उठे। हरिबोल और हुलहुली ध्वनि की झकार से बड दाड पर तना आकाश का धूप जला चंद्रातप मानो फटता जा रहा था।

इस वर्ष मगलपुर गाव के पहली विश्वाल अपने जंगलों को तुच्छ मान कर सपरिवार जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए आये थे।

एठू काफी समय पहले मदिर की ओर गया था। वह जैसा आदमी है, इस भीड़ और धकम्-धक्का मे जहा मक्खी तक के नौ टुकड़े बन जाएं, इतनी देर तक वह क्या कर रहा है अदर! उन्होंने उसे दूर से देखा। वह पसीने से लथपथ, सास फुलाए, हाथ मे एक 'बेंग वाइद' पकड़ कर लौट रहा था। जवान मर्द एंठू के दोनो हाथों मे चादी के दो कगन थे। कानो मे सोने के कुदन, गले मे वक्ष की सुगठित पेशियो पर काठ की कठी झूल रही थी। उसी कठी मे एक संपुट लटक रहा था। सिर के बालो का जूडा बाधा गया था। नाक से ललाट तक हरि तिलक लग या गया था।

एठू को देखकर पहली विश्वाल के छोटे बेटे नरि ने पूछा—"क्या बात है कि पहंडी मे देर हो रही है एठ़ भैया!"

एंठू ने बुद्धिमान की तरह बताया—"अरे, पहंडी के पहले अनेक विधिया हैं। वे सब हो जाए तब न पहडी होगी। अब देख खिचडी भोग लगाया गया है। उसके बाद पडे, पति महापात्र और मुदिरथ तीनों विग्रहों के पास मंगलारोपण करने के लिए गए। तब मैं चला आया। और कुछ ही देर के बाद पहडी आरंभ हो जाएगी···धीरज धर!"

मेराप ने बताया—"अन्य वर्षों मे अब तक खिचड़ी भोग, पहंडी आदि होकर छेरा पहरा तक हो गया होता। कहने हो खिचडी भोग अभी लगाया गया है··· तब तो अभी और भी देर है!

नरि ने अभिमान भरे स्वर में उलाहना दिया—"तुम देख आए ऐंठू भैया, पर मुझे साथ नही लिया !"

ऐंठू ने अपनी अंगोछी से पसीना पोछते हुए बताया—"अरे, वहा अणसर द्वार पर इतनी भीड है···इतनी भीड़ है···वहां जो झगड़े हो रहे हैं उनके कारण मुझ जैसे आदमी के लिए भी लौटने को रस्ता नही मिला। तू वहा कैसे जाता !"

अणसर पीठ के पास भीड़ है, झगडे हो रहे हैं, सुनकर मेकाप ने बटुए मे से पान निकालते हुए पूछा—"अणसर पीठ के पास कैसा झगडा हो रहा है ? अरे, मैं वहा नही पहुंच सका। वेइपो, तुम्हे दिखाते-दिखाते यहा रुक गया हूं।"

अणसर पीठ के पास तो वास्तव मे ऐंठू गया नही था जिससे कि वह अपनी आखो से झगड़ा देख आता ! सुभद्रा के देवीदलन रथ की छाया मे आराम करते हुए लोगो से जो सुना था उसी के आधार पर सुना रहा था—पहडी आरभ होने के पहले बारह कुड़ियों का भोग लगाया जाता है। अब क्या हुआ; सुआर वड़ उसका चौगुना ले आए। उससे पडे और सुआर झगड पड़े, फिर हाथ उठने लगे। एक पडे ने एक ऐसा मुक्का जमाया कि सुआर वड के सामने के दो दांत गिर पडे। उसके मुह से लहू गिरने लगा। ।दिर मे लहू गिरने के कारण भोग अपवित्र हो गया। उसके बाद मंदिर का शोधन कार्य किया गया। फिर भोग रधन···तब जाकर भोग समर्पण हुआ है। ठाकुरों का मगलारोपण हुआ और मैं वहा से आया हूं !

विश्वाल के लड़को ने विस्मय से पूछा—

"कैसे !"

उस समय विभूति चर्चित नंगे नागा सन्यासियों का एक दल ऊट पर सवार होकर चिमटो की कड़िया झनझनाते हुए भीड़ मे से गुजरते हुए सिंहद्वार की ओर बढ़ रहा था। उनका महत गाजे से रंगीन बनी आखें नचाते हुए चिल्ला रहा था—"जय ! जगन्नाथ की जय !" सहस्राधिक कठो से हरिबोल और हुलहुली की ध्वनि मुखरित हो रही थी। नागाओ को देखने के लिए भीड उमड़ पड़ी थी। पहली विश्वाल उस भीड़ के धकम्-धक्के मे गिरते-गिरते संभल गये। विश्वाल का बड़ा लडका जगबधु विरक्ति मिश्रित स्वर से कहने लगा—"मैं मना करता हूं कि भीड़ के अंदर न घुसे···पर ये औरतें जहा होंगी !"

ऐंठू ने आश्वासन भरे स्वर में बताया—"अरे इस भीड़ में बेंत की मार खाए

बिना, गिरे-पड़े बिना, चकाडोला को रथ पर देखने से मोक्ष मिलेगा क्या ?" भीड को चीरते हुए उन लोगों को सिंहद्वार तक ले जाने या रास्ता बताते हुए फिर ऐंठू कहने लगा—"आओ सब मेरे पीछे-पीछे। रथ के पास नहीं चलेंगे तो पहडी नही देख सकेंगे। मैं तुम्हें सीधे पहडी की जगह तक ले चलूंगा।"

पर उनका आगे बढना असभव था। उस समय तूरी और तैलग वाद्य बजाते हुए पालकी पर बलिगड की तरफ से अमीन चद सिंहद्वार की ओर बढ रहे थे। पालकी देखकर लोगो ने समझ लिया कि रामचद्र देव छेरा-पहरा के लिए आ रहे हैं। और जयनाद करने लगे। "खोर्धा राजा रामचद्र देव की जय"—"मणिमा", "शरण पजर महाबाहु" आदि नादो से बडदाड मुखरित हो उठा। रामचद्र देव को देखने के लिए भीड उमड पडी। पर कुछ ही देर बाद पता चला कि पालकी पर जो आए थे वे नायब-नाजिम तकीखा के नायब राजा अमीन चद थे। खोर्धा-राजा रामचद्र देव नही थे। लोग फिर से हट गये, उनका कौतूहल चला गया और फिर वे धीरे-धीरे सिंहद्वार की ओर बढने लगे।

मदिर मे घटा और तूरी की ध्वनि सुनाई पड रही थी। मगलारोपण हो गया है। अब सिंहद्वार खुलेगा। पहडी आरभ होगी। भीड मे जो जहा था वही स्तब्ध भाव से खडा रह गया। और उत्सुकता से सिंहद्वार की ओर देखने लगा।

फिर भी सिंहद्वार खुला नही। सिंहद्वार गुमटी के पास से सड़क तक दर्शनार्थी और उपवासियो से भर गया था। अरुण स्तंभ के पास खड़े रहने से सिंहद्वार के खुलते ही दर्शन मिलेगा। इसलिए वहा तिल धरने को भी जगह नही थी।

सात पाहाच पर ठाकुरों को केतकी फूलो से मडित किया जा रहा था। इसे 'टाहिआ लागि' कहते हैं। सिंहद्वार के खुलने मे और देर नही थी। 'मणिमा' 'मणिमा' की पुकार से रथदाड मुखरित होने लगा था। सिंहद्वार के खुलने मे जितना विलब हो रहा था "मणिमा, महाबाहु" की पुकार उतना ही उद्वेलित होती जा रही थी। सात पाहाच के नीचे जब 'धाडि पहडी' के लिए ठाकुर विराजित हुए तब शख, घटा, तूरी और अनेक तैलग वाद्यो की समवेत ध्वनि से मदिर प्रागण मुखरित हो उठा।

अनत युगो की प्रतीक्षा के बाद महाकाल के रुद्ध द्वार के खुलने की भाति अत मे सिंहद्वार खुला। कतार बाधे घंटा बजाने वाले सात पाहाच से घोपड़ा तक खड़े थे और कभी धनुष की भाति झुककर तो कभी सीधे होकर नृत्य मुद्रा मे एक लय

से घंटा बजाने लगे। मृदंग, शंख, तूरियां आदि बज उठे। दो दइता सर्व प्रथम सुदर्शन को कंधे पर उठाए आए और सुभद्रा के रथ पर विराजित किया।

उसके बाद कादंबरी प्रमत्त छंद में नाचते हुए, मस्तक पर विशाल केतकी चूड़ा नचाते हुए अद्भुत, मोहक, चित्त को आलोड़ित करनेवाली भगिमा मे 'वड़ठाकुर' श्री बलदेव मदिर के बाहर आए बलदेव के पीछे से 'पिंदूरी गतावाग' को दइतों ने कसकर पकड़ रखा था। दोनों बाहो को दोनों ओर से सोलह-सोलह दइतों ने पकड़ रखा था, और घसीटने की तरह उठाए हुए, कोमल तकियो पर पटकते हुए ला रहे थे। कभी केतकी का पुष्पगुच्छ नत हो जाता तो कभी प्रमत्तता से उन्नत हो जाता था, हृदय के अकल्पनीय आदोलन की भांति। सात पाहाच पर से रथ तक लाते-लाते पसीने से लथपथ दइत बलदेव को तकियों पर रास्ते मे कई जगह पटक कर सुस्ताते हुए जा रहे थे।

उस समय ठाकुर के आगे अनिंद्य लावण्यवती गजेन्द्रगामिनी क्षीण मध्यमा महारियों ने नृत्यारभ कर दिया था। उनके कुटिल कुंतल के कमनीय जूड़े, जूड़ामूल की केतकी और चद्रझुंपा नृत्य के तालो पर लयपूर्ण छन्दों में आदोलित हो रहे थे। बलभद्र ठाकुर के अपने रथ के सोपान पर उठते-न-उठते दइता तेजी से सुभद्रा को देवी दलन रथ पर ले आए। व्रीडावती वधू की भांति छिपती हुई, संभ्रमता के साथ सुभद्रा बलभद्र देव के सामने से होकर कब अपने रथ पर चली गयी पता भी नही चला। दइत उस समय घसीट-पटक कर किसी तरह बलभद्र देव को रथ पर उठाए थे और कुछ देर के लिए पहंडी मे विश्राति आयी थी। उन्हे आसन पर बिठाना बाकी था।

अब आरंभ होगी जगत जीवन जगन्नाथ की पहंडी विजय। यात्री पीछे से एक-दूसरे को धकेलते हुए रथ तक बढ आने का प्रयास कर रहे थे। कौन नीचे गिर-पड़ा, किसने किसे कुचल दिया, कोई गिरकर उठ नही सका, यह सब देखने के लिये किसी को समय नही था। मणिमा, महाबाहु, शरणपजर, चकाडोला, पतितपावन आदि आवेग स्पदित सबोधन करती हुई भीड़ जगन्नाथ के दर्शन के लिए महासागर की उत्ताल तरंगो की भांति महाघोष करती हुई बढती आ रही थी। तकियो पर घसीट कर जगन्नाथ को दइतो के पटकते समय यात्रियो में आनंदाश्रुसिक्त स्वरों में बातें चल रही थी···तुम अपनी इच्छा से आते हो प्रभु! यह कर्षण सहन करते हो, पटके जाते हो, घसीटे जाते हो, गालियां सुनते हो। नही तो मनुष्य तो तुच्छ

प्राणी है। तुम्हें सिंहासन पर से उठाता कैसे ?"

किस स्मरणातीत अतीत मे पता नही कब जगन्नाथ सुनपुर में पाताली हुए थे। उन्हे वही से पता नही किस इद्रद्युम्न राजा ने इसी भाति घसीटते-पटकते हुए लाकर उनकी पुन. प्रतिष्ठा करायी थी। यह गुडिचा पहडी क्या उसी ऐतिहासिक स्मृति का पुनराभिनय है ? तात्त्विक और ऐतिहासिक इस पर जो युक्ति या वितंडा करते रहे, पर वहा जो आवेग पुलकित समोहित दर्शक जगन्नाथ की पहडी देखने के लिए, दुस्तर पथ और सहस्र बाधाओ का अतिक्रमण करके एकत्रित हुए थे, वे इस धूलि धूसरित बडदाड पर श्री जगन्नाथ के आविर्भाव मे शाश्वत, अविनश्वर, और सौदर्य का महान उदय देखते-देखते अपने चर्म नेत्रो को सार्थक कर रहे थे। यह जगन्नाथ कौन है ? बौद्ध, जैन, पचरात्रिक, तात्रिक, या वैष्णव ? यह सब समझने की इच्छा उनमे नही थी। मरणशील जीवन के धूलिमलिन पथ पर उस महासामत की पहडी विजय को देखने के लिए लोगो मे जैसे जन्म-जन्मातर की प्रतीक्षा थी। इसमे उनके मर्त्य जीवन का कोण-अनुकोण अमृत ऐश्वर्य से भर रहा था। मृत्यु, महामारी, दूरी और पथश्रम को तुच्छ मानकर वे उस महासामत के सिंहद्वार के सामने एकत्र हुए थे। जगन्नाथ अपना रत्न सिंहासन छोड़कर पतितपावन बने है। एक अव्यक्त, ऐन्द्रजालिक आवेदन से जैसे जगन्नाथ सबकी अवचेतनता को स्पर्श कर रहे थे। सब उसका अनुभव कर रहे थे, पर उसे समझना कठिन था।

पहडी के समय एक बार जगन्नाथ का स्पर्श पाने के लिए जन-समुद्र उत्ताल हो रहा था। उस छीना-झपटी में जगन्नाथ के मस्तक पर से केतकी के पत्ते झर रहे थे और उसमे से बास की पतली सीको और सोला फूलो तक को खीच लेने के लिए लोग सग्राम करते से मत्त हो रहे थे। वे पतितपावन हैं। अपने तन का सब-कुछ दे डालते हैं। वैसा न करें तो पतितो के पावनकर्त्ता कैसे बनेंगे !

उस भीड मे राजा अमीन चद की सारी स्पर्धित अहमन्यता कही खो गयी थी। वे जिस पालकी पर आए थे वह जगन्नाथ वल्लभ से और आगे नही बढ़ सकी। वे वही पालकी छोडकर भीड मे धक्के खाते हुए चलकर किसी तरह रथ तक आ गये थे।

भीड़ में खड़े होकर वे पहडी जितना देख नही रहे थे। उससे कही अधिक

जगन्नाथ के नेपथ्य में ओड़िआ जाति की विराट एकता, शक्ति और महिमा को देख रहे थे। ये जगन्नाथ ही तो ओडिसा के सम्राट हैं। ओड़िसा के राजा उनके सेवक मात्र हैं। मुगल सम्राट दिल्लीश्वरेवा जगदीश्वरेवा अकबर तक ने यहा आकर जगन्नाथ के आगे पराजय स्वीकार की है। मानसिंह और टोडर मल तक यहा से नतमस्तक होकर गये हैं। नायब-नाजिम तकीखा और उसके सेवक के रूप में नायब अमीन चंद तो इस महामहिमा के सिंहद्वार पर तुच्छादपि-तुच्छ हैं।

जब अमीन चद विभ्रात दृष्टि से इसपर विचार कर रहे थे। तब उन पर कूदते से यात्री जगन्नाथ के 'टाहिआ' मे से केतकी और दवना पुष्प लेने के लिए बढ आए। अमीन चद के पास खड़े उनके अगरक्षक निरर्थक 'हटो-हटो' का चीत्कार कर रहे थे। पर उस समय उनकी कौन सुनता ! भीड के धक्के से गिरते-गिरते बचकर वे किसी तरह अपनी भी रक्षा करते हुए अमीन चद को बाहर खींच लाये।

जगन्नाथ की पहंडी शेष हुई। सीढियों से खींचते हुए श्री जगन्नाथ को दइत रथ के ऊपर चढ़ा रहे थे।

पहंडी समाप्त होकर जब जगन्नाथ रथ पर विराजित हुए तब उत्कंठित निरुद्ध नीरवता टूटी। लाखों कंठो से 'मणिमा-मणिमा' की आतुर विनम्र पुकार, खंजडी पर जणाण और'हरिबोल' ध्वनि के साथ मुखरित हो गगन को प्रकंपित करने लगी। इधर-उधर घूमते हुए बेचने वाले अपनी सामग्रियों की घोषणा करते हुए ग्राहकों को आकर्षित करने को तत्पर हो गये।'पेंकाली', बेंगबाद्द', डमरू आदि बेचने लगे। दूर गाव के परिचित आत्मीय परिजनों को अकस्मात देख लोग वार्त्तालाप करने लगे। मैंके की सहेलियों को, आवकपि और बउलो को देखकर महिलाएं भी मुखर हो उठी। मधुर नीरव मुस्कानों से, आखों की आल्हादमय चंचलता मे मुखरित नीरव भाषा ही उस समय सुनाई दे रही थी।

ठाकुरो को रथ पर चढाकर चागडा मेकाप अपनी विधियों को संपादित कर चुके थे। दक्षिण द्वार की ओर से महाजन पालकी पर रामकृष्ण और मदनमोहन को रथ के पास ला रहे थे। पालकी पर देवताओं के आते समय शोभा यात्रा को देख और तैलंग वाद्यो के साथ तूरी, मृदंग, शंख आदि की समवेत ध्वनि सुनकर यात्री भी वहा जमा होने लगे थे।

उसके बाद विधि के अनुसार लेंका और पाइक घंट और तूरियां बजाते हुए

स्वर्णकारो से मुक्ता जडी चिताएं ले आए। उन्हें तीनों रथों पर समर्पित किया गया। इसके बाद छेरा पहरा होगा और कालबेठिआ रथ खीचने लगेंगे।

जगन्नाथ से आज्ञामाल और पत्रिका लेकर सान परीछा श्रीनवर को रामचंद्र देव के पास गये थे। बालिसाही प्रासाद जराजीर्ण और विनष्ट हो गया था, उस पर उसमे प्रवेश करने के अधिकार से भी रामचद्र देव वचित थे। अतः उनके लिए बडदाड पर मधुपुर के पास एक अस्थायी श्रीनवर निर्माण किया गया था। आज्ञामाल पाने के बाद राजा छेरा पहरा करने आएगे। आज्ञामाल लेकर बड़-परीछा जाते है पर सान-परीछा गये थे। उस समय बड परीछा गौरी राजगुरु वहा नही थे। वे कहा थे यह किसी को भी पता नही था।

किसी भी तरह, छल, बल, कौशल से राजा रामचद्र देव को छेरा पहरा करने से वचित करने के लिए समुचित व्यवस्था करने के उद्देश्य से तकीखा के नायब के रूप मे राजा अमीन चद पुरी आए हुए थे। पर बाद में बालू के बधन की भाति उनके सारे कूट-कौशल मूल्यहीन हो गये थे।

रामचद्र देव अब आडबर के साथ आकर गर्व से छेरा पहरा करेंगे। दीन, अकिंचन की भाति इस जन समुद्र मे खड़े-खड़े उस दृश्य को देखते रह जाएगे अमीन चद ! भीड और धकमधक्के से अपनी पगडी सभालते हुए इसी ग्लानिकर और खेद पूर्ण परिस्थिति पर अमीन चद चिंता कर रहे थे।

पश्चिम आकाश पर सूरज ढलने लगा था। अब तक रथ बलगडी तक पहुच गये होते और बलगडी पूजा भी समाप्त हो गयी होती। पर इस वर्ष पहंडी मे विलब होने के कारण अब तक छेरा पहरा भी नही होपाया है। बलगडी तक रथो के पहुंचते-पहुचते शायद सध्या हो जाएगी। रथ खीचने के लिए यात्री उतावले हो रहे थे। आकाश मे धूमिल बादल पालतनी नावों की भाति दक्षिण दिशा से पश्चिम की ओर बढ रहे थे मध्याह्न की तपती धूप की ज्वाला के बाद शरीर पर शीतल मंद-मद पवन का स्पर्श कर्पूर-चदन की शीतलता-सा लग रहा था।

दूर तैलग वाद्य, वीरतूरी, निषाण विजिघोष आदि वाद्यो की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

सहस्र कण्ठों से हठात् गूज उठा—"महाराज पधारे हैं···महाराज !"

पालकी पर बैठे महाराज रामचद्र देव रथो की ओर आ रहे थे। अठारह रजवाड़ों के राजा-महाराजा पालकी के आगे-आगे चलते हुए आ रहे थे। पीछे,

और पालकी के दोनों ओर आलट, चामर छत्र, पताका आदि लेकर अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार वे रामचंद्र देव के साथ चल रहे थे। मुगल वदी के कुछ जमीदार भी जो राजाओं के साथ आने को राजी हुए थे शोभा यात्रा में थे। तकीखा के अप्रीतिभाजन बनने के बावजूद वे 'जय ! खोर्धा राजा-महाराज रामचद्र देव की जय !" का नारा लगा रहे थे और चामरों से पंखा करते हुए चल रहे थे।

अमीन चद इस दृश्य को देखकर अचानक अपना आत्म-विश्वास ही खो बैठे। यह केवल छेरा पहरा की पारंपरिक विधि नही लगती थी। यह तो जगन्नाथ पर केंद्रित होकर अपराजेय ओड़िसा की राजनैतिक एकता की स्पर्धित जययात्रा थी। मानसिंह जैसे दुर्दम मुगल सेनापति तक अतीत में एक समय इसी एकता को विडंबित करने का प्रयास करके असफल हुए थे। अमीन चद उनकी तुलना मे क्या है ?

रामचद्र देव की पालकी तब तक बलभद्र के रथ के समीप पहुंच चुकी थी। अठारह रजवाड़ो के सामत राजा,मुगलबंदी के कई जमीदारों के साथ तढाउकरण देउलकरण, राजगुरु और सान परीछा आदि मंदिर-प्रमुखों को लेकर जब रामचंद्र देव सीढ़ियां चढ़ रहे थे तब "जय, गजपति चलंति विष्णु महाराज रामचद्र देव की जय !" की ध्वनि चारों ओर मुखरित हो रही थी। उसी भीड़ मे पागल की भांति अमीन चंद बड़ परीछा गोरी राजगुरु का संधान कर रहे थे। पर वे वहा नही थे।

सूर्यास्त होने मे देर थी। पर दक्षिण दिशा से जो बादल उमड़ आए थे वे धीरे-धीरे घनीभूत होकर आकाश को अंधकार से आच्छन्न कर रहे थे। पुरवाई के शीतल झोके से रथ पर मंडित मखमल और पट्टवस्त्र के आवरण सिहर रहे थे। पताकाएं स्पंदित हो रही थी। कोलाहल, वाद्य घोष के साथ मेघगर्जन एक अद्भुत ऐक्यतान की सर्जना कर रहा था।

रामचंद्र देव रजवाड़ो के राजा और जमीदारों के साथ तालध्वज और देवीदलन रथो पर छेरा पहरा करके नंदिघोष रथ की ओर बढ़ रहे थे। उनके सौम्य शरीर पर असाधारण दीप्ति झलक रही थी।

उस समय कोई यह नही सोच रहा था कि रामचंद्र देव यवन और धर्म त्यागी हैं। रामचद्र देव के सर्वप्रथम गरावड़ु से हाथों से पुष्प ग्रहण करके विनीत भाव से नतमस्तक होकर पुष्पांजलि प्रदान करते समय "मणिमा, महाबाहु, चलंति

विष्णु आदि जयनाद से आकाश मे मेघ गर्जन तक मलिन लग रहा था। आकाश पर बादलो को उमडते देखकर कालबेठियों ने बलभद्र और सुभद्रा के रथ पर से सीढ़िया हटा ली थी। और अब वे सारथि तथा काष्ठनिर्मित घोटक प्रतिमाओं को सज्जित कर रहे थे। रथ आज बलगडी तक पहुच सकेंगे। ऐसा लग नही रहा था। जगन्नाथ के रथ पर छेरा पहरा समाप्त होते-होते शायद सध्या हो जाएगी। रथयात्रा के दिन रथ अगर नही चलेंगे तो सृष्टि के प्रति अमगल ही होगा। एक हाथ ही क्यो न हो, रथो को अवश्य ही चलाया जाएगा। इसलिए रामचद्र देव शीघ्रता से जगन्नाथ के रथ पर छेरा पहरा की विधियो का सपादन कर रहे थे। जब घटुआरी और भडार मेकाप रजत घटो मे से चदन जल सींच रहे थे और शुक्ल पुष्पो का प्रोक्षण कर रहे थे, तब पुष्प और जल वातादोलित होकर रथो के बाहर गिर रहे थे। तूफान का वेग धीरे-धीरे बढ रहा था जिससे मडनी और भी आदोलित हो रही थी। पर उस तूफान के साथ-साथ 'मणिमा' 'महाबाहु' आदि की ध्वनि भी बढती जा रही थी।

रथ के चारो ओर स्वर्ण मार्जनी से समार्जित करके जब रामचद्र देव रथ पर से उतरने लगे तब आकाश से बेरो की भाति वर्षा की बूदें गिरने लगी थी। इसके पश्चात् केवल मात्र रथो को खीचना ही बाकी था। और कोई दर्शनीय विधि शेष नही थी। इसलिए पंचकोशी यात्री वर्षा से आत्म-रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे थे। रथदाड पर बादलो से छाया अधकार आसन्न सध्या को और भी बढा रहा था। वर्षा, मेघगर्जन, कोलाहल, वाद्यध्वनि सब मिलकर एकाकार हो गये थे।

रामचद्र देव भीगते हुए बडदाड पर दडायमान हो सीढी के हटाये जाने के बाद घोटक और सारथि का अलकरण देख रहे थे।

श्री गुंडिचा के दिन यदि रथ चलेंगे नही तो इसे परमेश्वर की छलना और कूट-कौशल माना जाएगा और कहा जाएगा कि जगन्नाथ का रथ स्थानच्युत नही हुआ, क्योंकि यवन रामचद्र देव ने रथ पर राज विधिया सपन्न की है। प्रतिपक्षी ऐसा अवश्य कहेगे। सहस्राधिक यात्री रथ के न चलने से अगले दिन तक उपवासी रह जाएगे, जल तक का स्पर्श नही करेंगे। रामचद्र देव अब तक अपनी जिस प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार कर सके हैं वह धूल में मिल जाएगी। इसलिए जब मुदिरथ के साथ आकर सान परीछा ने प्रार्थना की—"आज रथ खीचे न जाएं।

ऐसा आदेश हो। कल सुबह रथ चलेंगे !" तब रामचंद्र देव ने संक्षेप में उत्तर दिया,…"नहीं…! आज एक हाथ ही क्यो न हो रथ अवश्य चलेंगे !"

जगन्नाथ के रथ पर से तब तक सीढी उतारी जा चुकी थी। सारथि और घोटकों को सजाया जा चुका था। बलभद्र के रथ में कालबेठिआ हां-हू करते हुए कमर कसकर रथ की रस्सी पकडकर खीचने को तैयार हो गये थे। वाद्य बजने लगे तो प्रलयकर मेघ गर्जन तक शात लगा।

"जय ! जगन्नाथ की जय !" "जय ! गजपति रामचंद्र देव की जय !" जयध्वनि, वर्षा और मेघ गर्जन के साथ-साथ रथ चलने लगे।

वह जगन्नाथ के नंदिघोष की रथ-यात्रा नहीं थी, वह अपराजेय ओडिसा की दूरंत जैत्रयात्रा थी।

अमीन चद वहा से वेत्राहत श्वान की भांति तूफान और वर्षा मे मार्कंडेश्वर साही के अपने आवास स्थल की ओर लौट पड़े।

नवम परिच्छेद

1

चिलिका और समुद्र के बीच तंडाकिनार का अतहीन बालुका प्रांतर दक्षिण से वचकोट कदानदी के भरे मुहाने से उत्तर दिशा मे माणिक पाटना तक मरे हुए अजगर की भाति सोया पड़ा है। किनारों पर खस के झुरमुट, एकाध कोचिला का पौधा, झाउ या ताड के इक्के-दुक्के पेड़ हवा मे सिर हिला रहे हैं। ओड़िसा के राजा पुरुषोत्तम देव की मानरक्षा करने के लिए एक समय जगन्नाथ और बलभद्र ने सफेद-काले घोड़े पर इसी तडाकिनार से होते हुए काची-विजय के लिए प्रस्थान किया था।

सरदेई ने अलसायी मुट्ठी मे उसी बालू को भर लिया और उठाकर ललाट पर लगाया। भीगी बालू के कर्पूर की भाति शीतल स्पर्श ने सरदेई के अवसन्न मन और शरीर को स्निग्ध कर दिया।

सरदेई की स्तिमित आखो के आगे उस दिन निर्जन धूप मे तपती दोपहर, मालवुदा गाव की उसकी ससुराल और सड़क पर खोर्धा राजा की मूर्ति, पानी के लिए आकुल प्रार्थना, सारे दृश्य तैर गये। सरदेई ने बायी बाह पर सक्करो के बच्छे के आघात से बने क्षत की ओर देखा। वह घाव तो भर गया था, पर उसका चिह्न स्पष्ट था। वह वेदना और आनद की एक सम्मिलित स्मृति थी।

निर्जन तडाकिनार मे समुद्री हवा भी जैसे थकी-थकी-सी लग रही थी। झुड के झुड हस, बगुले, पनकौवे और जल सारस चहकते हुए कभी चिलिका के नीले जल पर उतर रहे थे तो कभी उड़ जाते थे। एक पक्षियों के दल तट पर मोमी योगियो की भाति चोच झुकाये बैठ गये थे। वे अपने रगीन डैनो को अकारण हिलाते हुए जैसे सुस्ती मिटा रहे थे।

कुछ ही दिन पहले इसी तडाकिनार से होते हुए दक्षिण मे आए यात्री दल चीटियो की भाति कतार बाधे गये थे। उन्ही मे से एक यात्री वहा निर्जन झाउ

के नीचे महामारी से मर गया था। उसकी लाश को गिद्ध नोंच-नोंचकर खा रहे थे। जो कंकाल बचा पड़ा था उस पर हवा से उड़ आई वालू की परतें जम गयी थी और वह आधा से अधिक ढक गया था। इसी तरह एक-दो दिन में वह पूरा ढक जाएगा और निश्चिह्न हो जाएगा। वह अकेला झाउ का झाड़ ही उस अपरिचित तीर्थ यात्री के लिए पागल की भांति सिर पटकते हुए रोता रहेगा, आहें भरता रहेगा। उसके बाद उस पर घास उगेगी, श्यामल नामहीन लतापौधों से वह जगह भर जाएगी।

एक अकथनीय नि.संगता और अनागत मृत्यु की आशंका से सरदेई मन-ही-मन आर्त्तनाद कर उठी। मध्याह्न मे वृक्ष की शाखा पर बैठी किसी नि संग कपोती की भांति वह पुकार उठी—

"जगुनि रे······जगुनि······"

सरदेई की इस मर्मभेदी पुकार को समुद्र की ओर से बह आयी हवा का प्रमत्त झोंका चिलिका की आधी-नीली आधी-धूसर छाती तक उड़ाकर ले गया।

जगुनि सुबह से डोंगी लेकर चिलिका पर गया है। दोपहर हो गयी फिर भी केवटो को लौटने में देर होगी। सराय में भी यात्री नहीं हैं। पुरी से बाहुड़ा यात्रा देखकर लौटने वाले यात्री यही से नावों पर चिलिका गर्भ के मउसा-ब्रह्मपुर द्वीप को जाते हैं। कभी मुगल-दंगे के कारण श्री जगन्नाथ ने पुरी क्षेत्र छोड़कर उसी द्वीप मे आत्मगोपन किया था। लता गुल्म वेष्ठित जिस जंगल मे जिस जगति पर जगन्नाथ पूजित हुए थे। वह अब भी है और लोग उसी शून्य जगति की पूजा करते हैं। इसलिए वहा के रसकुदा गाव में अब भी पडों के कई परिवार बसे हुए हैं, जिन्हें वृत्तिया मिलती हैं। अधारी परगने मे उनके लिए खोर्धा राजा ने खेती की व्यवस्था भी करवायी है। जब बाहुड़ा देखकर लौटने वाले यात्री मउसा-ब्रह्मपुर चलने के लिए आते हैं तब निर्जन तडाकिनार कुछ पल के लिए चंचल हो उठना है। सराय घरों की आमदनी बढ जाती है। उस समय पल-भर के लिए भी एकांत मे बैठकर अतीत की याद करने का, ठंडी आह भरने का समय नही मिलता है। पर अब सब वीरान-सा लगता है—निर्जन रात्रि मे समुद्र प्रातर पर टेंटेइआ के विलाप की भांति।

सरदेई ने अपने आप से पूछा—कैसा है यह जीवन भी? अनेक आशाएं, आहें, यंत्रणाएं। इस उजाड़ बालुक प्रातर पर के नामहीन लाल-पीले फूलों की

आदि पुरुष [illegible] [illegible] [illegible] कहाँ हो? क्या? [illegible]
अगर मुझे प्यार हो तो एक बार आकर [illegible] जाओ।

सरदेई का मन किस ओर भाग जाता था। हाय [illegible] है यह! दूर-दूर से लोग यहाँ आते ठाकुर को देखने। जीवन में मुक्ति पाने के लिए [illegible] गरीब भी इस आशा के लिए पतितपावन महाप्रभु का दर्शन दुर्लभ हो गया। यहीं तो, सामने [illegible] घाट का [illegible] दिखाई पड़ रहा है। यहाँ से [illegible] से पुरी पहुँचने में आधा दिन लगता है [illegible] एक दिन। उस दिन अर्जुन कह रहा था—"यह सरदेई, तुम्हें रसकुदा घाट से नाव में बिठा कर हलदी नदी के रास्ते से पुरी [illegible] पहुँचा दूंगा।"

जब मुसीबत होती है तो ठाकुर उसी रास्ते से मिल जाते हैं।

पर ये अगर होगी न सीधे तो क्या समाज के आगे को छोड़ कर चलना सम्भव है? इसलिए सरदेई यहाँ कभी आना चाहती है पर आ नहीं पाती। और क्या आ सकेगी वह? सरदेई को याद हो आया। आज तो वह समाज की दृष्टि से पतित-भोग्या पतिता बन गयी है। इसलिए उसे बालुखंड में जगह नहीं मिली। रत्नवेदी के नीचे खड़ी होकर जगन्नाथ को आँखें भरकर देखने का अधिकार रह गया है क्या?

सरदेई फिर पुकारने लगी—"अर्जुन! अर्जुन—इ—इ!"

समुद्र पवन चला नहीं किस झाऊ की शाखा पर सोया था, अचानक जैसे सरदेई की पुकार को चिनिरित ले दूर से दूर ले गया।

पुकारने भर के फासले पर रसकुदा गाँव बसा हुआ है। उस गाँव में कुछ नोलिये, कहरा, खंडायत और ब्राह्मण बसे हैं। घास-फूस की छाजनों के घर; पुनाग और झाऊ की ओट में सिमटे गुलनाए अधकार की भाँति रसकुदा गाँव पड़ा है।

रसकुदा गाँव के बाहर 'कंचन ढवा घर' है। तट किनार के किनारे किनारे ऐसे कई मकान बने हैं। दक्षिण से आए यात्री या वाणिज्य करने वाले साधव नाविक आकर यहीं ठहरते हैं। कंचन बाई नामक किसी नाचने वाली ने अपनी कमाई से ये मकान बनवाए थे जिससे कि जगन्नाथ दर्शन को आए यात्री दुर्गम पथ पर चलते हुए आश्रय ले सकें। पत्थरों से बने ये मकान अब डकैत और फिरंगी नाविकों के अड्डे बन गए हैं। थोड़ी-सी दूरी पर एक ऐसा ढवा घर

बालू की परतों, काई, समुद्री हवा और अनगिनत वर्षो की वर्षा से भीग कर भूत कोठी-सा लगता है। बालू गाव से आकर सरदेई ने अपनी नई सराय इसी मकान मे खोली है। कंचन बाई ढवा के बदले अब यह मकान धीरे-धीरे रसकुदा सराय के नाम से परिचित होने लगा है।

घर के पश्चिम ओर के बरामदे मे बैठी सरदेई क्लात मन से, शून्य दृष्टि से चिलिका को देख रही थी।

दल के दल जलसारस, कादंब, चक्रवाक और कालीगउड्णी घटशिला की ओर उड़े जा रहे थे। अकारण ही कोई जल सारस उस घर की ओर आ जाता। कुछ ढूढता-सा और कुछ न पाकर, चिलिका या समुद्र की ओर लौट जाता था।

किनारे पर घाट की ओर एक नाव आ रही थी। सरदेई फिर पुकारने लगी··· "जगुनि—जगुनि रे···"

पर उस नाव में रसकुदा गांव के पूजक ब्राह्मण सिर पर तालपत्र की छतरी ओढ़े नाव खेते हुए आ रहे थे। वे अपनी पारी के अनुसार मउसा-ब्रह्मपुर गाव के द्वीप को जगन्नाथ की शून्य जगति पर पूजा करने गए थे।

सरदेई फिर मन ही मन कई बातें सोचने में डूब गई।

आकाश मेघाच्छंन था। पर बादलों से घिरे आकाश मे छाया की शीतलता नही थी। धूसर, धूमिल, बादलो से आकाश भरा हुआ था। बादलों के चारों ओर घिरकर सूर्य किरण की स्वर्णिम रेखाओ से मानों शीतल आग बरस रही थी।

आकाश जब मुक्त रहता है तब वहां से ही चिलिका के दूसरी ओर के पहाड़ स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं—अथाह सागर के उस पार अस्पष्ट स्मृति के पर्दे की तरह उस पहाड के पास ही तो बालूगाव है; जहां उसने अपने अर्थहीन जीवन के कुछ वर्ष सुख-दु:ख मे बिताए थे। हाय रे विधाता, मेरे जीवन को ही तूने ऐसा बनाया था क्या, कि मैं एक सूखे पत्ते की भांति हवा मे इधर-उधर उड़ती फिरू ? सरदेई की आखो में आंसू भर आए।

बालूगांव की उस ग्लानिकर स्मृति को वह अपने पास से जितना धकेलना चाहती थी वह चिलिका की लहरों कीभांति बारंबार लौट आती थी,उसके यंत्रणा पीड़ित हृदय पर सिर पटकने के लिए, उसे तिलतिल कर संतापित करने के लिए।

सरदेई जिस वेदनार्द्र स्मृति को भुलाने की बारबार चेष्टा कर रही थी, वह

अतृप्त जलसारस की तरह उसके पास डैने नचाते हुए उड़ कर फिर लौट आती थी।

वालूगाव की उस सराय के बरामदे पर सरदेई पैर पसारे, अलसायी-सी किसी की प्रतीक्षा करती-सी, बैठी रहती थी। सराय घर से जो टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी जाकर टिकाली रघुनाथ पुर सड़क के साथ मिली है उसी छक पर हाडिभगावर है; उसी के पास पोखरी है। पोखरी से कुछ ही दूरी पर एक अकेला ताड़ का पेड़ है। बार-बार प्रतिदिन देखे हुए उस दृश्य को जैसे दोहरा कर अपने एकात मुहूर्त्तों में सरदेई उसी मे से एक नया अर्थ, एक नयी आशा और नए रहस्यो का उद्घाटन करने की चेष्टा करती है और बीच-बीच मे प्रलाप करती-सी पुकारने लगती है—"जगुनि ···जगुनि रे···जगुनि···इ···इ"

सराय पर किसी यात्री की उपस्थिति मे सरदेई की यह उत्पीड़क और अर्थ-हीन प्रतीक्षा लुप्त हो जाती। कमर नचाती हुई वह गगरी लिए कई बार पोखरी से जल लाने चली जाती थी।

सराय मे अगर कोई तरुण या प्रौढ़ यात्री होता, और वह अगर अकारण प्यासा बन जाता तो वह भी सरदेई के पीछे-पीछे पोखरी की ओर हाडि भगा बर की एकात छाया तक आ जाता था। जब सरदेई मुडकर आने वाले आतुर पथिक को देखती थी तब शायद वह भी सरदेई की आखो मे व्रीडा पूर्ण, आमत्रण देखता था। सरदेई पोखरी से जब जल भर कर गगरी उठाती तब उसकी जाघो मे, नितंब, बाहुमूल और वक्षमूलो में वह आमत्रण तरगायित हो उठता था। प्रतिश्रुतिपूर्ण निकटता से आतुर अतिथि के आख भरकर देखने या गगरी से पानी पीने के लिए हाथ पसारने के पहले ही सरदेई रसभग करती-सी पुकारने लगती थी—"जगुनि ···जगुनि रे···।"

जगुनि उस समय कहा होता था क्या पता वह कभी केवड़े की झाडियो के पीछे से और कभी सडक के किनारे के जगल मे से आ टपकता, या चिल्लाकर कहता··· "मुझे बुलाती हो क्या देई!"

जगुनि को अचानक आते देख अतिथि के सपने भी टूट जाते। उसकी तृषा भी वितृपा मे बदल जाती।

जो सरदेई की सराय के साथ परिचित थे या जो वहा के परिचित अतिथि थे उन्हे पता था कि सरदेई कीअस्वीकृति नही है पर असम्मति है। इसलिए रसिकजन

उपमा देकर कहते थे, सरदेई के पीछे चलना वात-कंपित कमल पर उड़ते हुए भ्रमर द्वारा पद्म का हृदय ढूंढने की भांति एक निरर्थक प्रयास है। पद्म के कंपन में भ्रमर के लिए अस्वीकृति नही होती, हो सकता है वह व्रीड़ विघूर्नित भय हो। भय या असम्मति चाहे कुछ भी क्यों न हो दोनों की परिणति एक-सी होती है। उससे मधु के लिए भ्रमर की प्यास नही बुझती। सरदेई को जीतने की होड़ लगाकर अतीत मे कई रसिक हार चुके थे।

कभी-कभार निर्जन रात्रि के विनिद्र मुहूर्तों मे सरदेई ने आत्म परीक्षा करके देखा है। अपरिचित अतिथि के प्रति उसमे निरुत्ताप है। इसलिए भय है। पर उसे तो कुंठा नही कहा जा सकता। अगर कोई अपरिचित पथिक उससे बलात्कार करता, उसे लूटता, उसकी लज्जा और संकोच के आवरण को अपने क्षुधित हाथों से, बलपूर्वक हटा देता, तब भी वह उसका विरोध करती ? शायद नही। तो उन रसमय मुहूर्तों मे अकारण 'जगुनि जगुनि' की चीख लगाकर वह क्यो रसभग कर देती थी ? उस अपरिचित पथिक के हृदय की आकुल उत्कंठा को और अधिक बढाने के लिए तो नही ? चाहे जो भी हो निष्ठुर रसभग करती हुई सरदेई अवश्य ही एक अनास्वादित वेपथु का रोमांच अनुभव करती थी।

उस दिन एक मुगल सैनिक घोड़े पर चिकाकोल से कटक जाते समय अनहोनी की तरह आकर सरदेई की सराय मे एक दिन के लिए ठहरा था। निर्जन मध्याह्न था। चैत्त की हवा नाचती-नाचती शायद थक कर नव-कुसुमित पलाश और सेमल की शाखो पर पल भर के लिए सुस्ता रही थी। हाडि भगा वर पर मे अनेक सूखे पत्ते अतीत की स्मृतियो की भांति झर रहे थे। सरदेई की गगरी मे उस दिन एक बूंद पानी नही था। पर जाकर जल भर लाने को न जाने क्यों उसका मन नही करता था। पता नही क्यो उस सैनिक को देख कर सरदेई एक अशरीरी आतंक से मन ही मुरझा गई थी।

उस दिन जल लाने के लिए टेढी-मेढी पगडडी पर चलते समय अन्य दिनो की भांति स्वप्नाविष्ट तंद्रालस में उसके पैर नही रुकते थे, या मुड़कर पीछे देखने का साहस तक वह नही कर रही थी। फिर भी अनजाने मे पीछे मुडकर पीछे-पीछे घोडे पर आते हुए सैनिक को देखकर वह भय से काप उठी थी। अन्य दिन वह रसिकता के साथ जगुनि को बुलाती। पर उस दिन वह जगुनि का नाम लेकर आर्त्तनाद-सा करने लगी। सैनिक की दो भूखी आंखें आखेटक के तीर की भांति

उसे बांधने को जैसे भागी आ रही थी। सरदेई व्याधभीता हिरनी की तरह आर्त-चीत्कार कर रही थी। उसकी बढ़ती हुई चीखों के साथ-साथ शायद सैनिक की हिंस्र लोलुपता भी बढ़ रही थी।

सैनिक के लिए राह छोड़कर सड़क के किनारे घूंघट काढ़े सर नवाए सरदेई खड़ी हो गई। हाय, अन्य दिन की तरह अगर उस दिन जगुनि पहुंचा होता···पर अदृष्ट की इच्छा कुछ और थी। सैनिक अपने घोड़े के दोनों पैरों को हवा में उछालते हुए सरदेई के पास रुक गया। सैनिक ने अचानक लगाम खींची थी इसलिए घोड़ा गुस्से से हिनहिनाकर रुक गया। शायद लगाम को दांतों से काट कर टुकड़े-टुकड़े कर देता तो वह घोड़ा शांत हो जाता।

सरदेई फिर चीख पड़ी—"जगुनि···जगुनि रे···ए···ए···जगुनि···इ···इ"

पर जगुनि नहीं था। अन्य दिनों में पुकारने मात्र से जगुनि आ पहुंचता था पर आज वह सुनता तक नहीं था।

सैनिक को अपने सामने घोड़े पर देख सरदेई पत्थर-सी बन गयी थी। वह जानती थी कि वह चिकाकोल के फौजदार का सिपाही था। इन लोगों के चंगुल से अपने को बचाना आसान नहीं था। इनके सात खून माफ थे। सराय में क्यों जगह दी उसने···पर इसके सिवाय और करती भी क्या वह?

मुगल सैनिक की ओर आंख उठाकर देखने तक का साहस सरदेई में नहीं था। घूंघट को और नीचे सरकाते समय गगरी गिर कर चूर हो गई।

सैनिक ने सरदेई की असहायता को देख ठहाके लगाते हुए म्यान में से तलवार निकाल ली और उसकी नोक से सरदेई का घूंघट हटा दिया। सिर पर से लाल साड़ी के आंचल के गिर जाने से सरदेई का भयभीत चेहरा एवं मुरझाए कमल की भांति प्रकाशित हो गया। अतीत में उसकी आयत आंखें अपरिचित अतिथि को देख उज्ज्वल प्रसन्नता से हंस उठती थी पर आज वे आंखें आतंक और आशंका से शिशिरदग्ध पद्मों की भांति मुंद गई थीं। सरदेई के ललाट पर स्वेद की बूंदें मोती-सी चमक रही थीं।

सरदेई की उस भयार्त्त, व्रीडालांछित असहाय मूर्ति ने सैनिक की सोयी यौन चेतना को शायद उद्दीप्त कर दिया था। उसने घोड़े पर से झुक कर सरदेई को एक असहाय शिकार की भांति बायीं बांह में भरकर घोड़े पर उठा लिया और समीप के अरण्य में पल भर में अदृश्य हो गया ठीक उसी समय जगुनि के धनुष

से छूटा तीर सेमल के एक पेड़ को विद्ध करके निष्फल क्रोध से थर-थर कांप रहा था।

वह पंकिल स्मृति आज भी सरदेई के शरीर को कर्दमाक्त कर देती है। उस उत्कट स्मृति की विषज्वाला से सरदेई का मन जर्जरित हो उठता था। वह मन से उस स्मृति को जितनी दूर हटाना चाहती है वह उतनी ही पास आ जाती है लौटकर; उस उजाड़ बालूप्रांतर पर लौटते जल सरमों की भांति।

अरण्य में एक शाल वृक्ष पर सफेद फूलों से शोभित और लता वेष्ठित होकर एक छायाघन पत्र कुंज की सृष्टि हुई थी। बाहों में सरदेई के उलगप्राय शरीर को भरकर वहां घोड़े पर से वह कूद पड़ा। सरदेई अपनी बाहों से अनावृत वक्षदेश को आवृत करने की अर्थहीन चेष्टा कर रही थी। यही देखकर मुगल सैनिक अट्टहास करता-सा हंसने लगा। अर्धमृतप्राय सरदेई कांपती हुई वहीं लेट गयी।

उस समय लज्जा और संकोच से प्रतिरोध करने की मानसिक शक्ति सरदेई में नहीं थी। मुगल सैनिक भी सरदेई के असहाय अनावृत शरीर पर झपटने के कुछ ही देर बाद निर्वीर्य की भांति अवसन्न होकर लेट गया। सराय के पास से एक असहाय नारी का अपहरण करके घोड़े पर अपनी गोद में भरकर लाते-लाते उत्तेजना से उसकी क्षुधित यौनता का उद्‌गार निःशेषित हो चुका था। सरदेई अगर प्रतिरोध करती, या कुपिता बाघिन की भांति उस पर झपट कर उसे आहत करने की चेष्टा करती तो शायद उसकी यौनता भी हिंस्र हो गयी होती। पर वह सब नहीं हुआ। सरदेई जिस तरह निरीहता से आत्म समर्पण कर जड़ पिंड की भांति पड़ी रही थी उसी से शायद मुगल सैनिक अधिक वीर्यहीन और निर्वेद ग्रस्त बन गया था। उस समय सरदेई में चेतना नहीं थी।

मुगल सैनिक एक अहेतुक जिज्ञासा में सरदेई के उलंग भूलुंठित शरीर पर पदाघात करके घोड़ा छुटाए चला गया।

काफी समय बाद जब सरदेई को होश आया तब शाम ढल चुकी थी। चैत्र की शीतल हवा में मिहरित पत्रों की ध्वनि से वनस्थली मुखरित होने लगी थी। पगली-सी सरदेई अपने पहनावे को संयत किये बिना सराय को लौट आयी। जगुनि को बुलाने का साहस तक उसमें नहीं था। वरन् जगुनि को उस समय सराय पर नहीं देखकर मन-ही-मन वह आश्वस्त हुई थी।

पर दूसरे दिन यह बात दावाग्नि की तरह फैल गयी कि सरदेई पठान सैनिक

को देहदान करके पतिता बन गयी है। बालूगांव की दूसरी सरायों के मालिक जो सरदेई से होड में हारकर हाथ बांधे बैठे थे, वे इस बात को अतिरंजित करके कहने लगे। सरदेई यवन भोग्या बनकर पतिता हो गयी है। उसके हाथों से जल स्पर्श करना तक महापातक होगा। सरदेई ने जिन्हें निराश किया था वे भी टोकने लगे। हांडि भगा बर और पोखटी की पग- डंडी तक उसके लिये दुर्गम बन गयीं, घरों के द्वार रुद्ध हो गये। वह यवन-भोग्या है, इसलिए वहां यात्रियों का आना-जाना धीरे-धीरे बंद हो गया।

उस समय एक दिन कहीं से आकर जगुनि बोला—"हम यहां से चले जाएं देई !"

"पर कहां ?" सरदेई यह भी नहीं पूछ सकी।

अंत में एक दिन बालू गांव में बसाए हुए संसार के अवशेष और अपने लांछित नारीत्व की विडंबनाओं को लेकर सरदेई जगुनि के साथ चली आयी।

कुछ दिनों के बाद आकर इस तडाकिनार में उसने अपनी नयी सराय खोली थी। तीर्थयात्री या वहां के रहने-बसने वाले सरदेई के विडंबित इतिहास को जानते नहीं थे। तडाकिनार में, जगह-जगह अनेक सरायें थीं। उन्हीं में उसने एक नयी सराय खोल ली थी।

एक पक्षी का दल डैने झाडते हुए चिलिका तट की अपनी चारण-भूमि पर उतर आया।

जगुनि एक नाव पर तट की ओर आ रहा था। उसके सिर पर अनेक जल-सारस चक्कर काटते हुए उड रहे थे।

उसके साथ दो जन और भी थे। क्या पता कौन थे। वे वहां के रहने-बसने वाले जैसे नहीं लगते थे। नाव पर से उतर कर वे रसकुदा गांव की ओर चले गये। उन्हें नजदीक आते देख एरा पक्षियों ने डैने पसार भर दिए…उड़े नहीं। सरदेई अपनी आदत के अनुसार उस समय पुकार रही थी—"जगुनि…जगुनि।"

पर जगुनि उत्तर दिए बिना, कंधे पर जाल रखे, हाथों में मछलियां लटकाए, सिर नवाए हुए, चिंतित-सा लौट रहा था।

जगुनि को देख सरदेई ने पूछा—"तू किधर चला गया था रे जगुनि ? तेरी राह ताकते-ताकते सांझ हो आयी ?"

जगुनि ने कोई जवाब नहीं दिया और दोनों मछलियों को नीचे रख दिया। मछलियों को देख सरदेई चौंक पड़ी…कहने लगी—"अरे यह तो कुंडल मछली है। यह मछली अगर चिलिका में मरती है तो अकाल पड़ता है।"

जगुनि कुछ कहे बिना चिलिका की ओर बढ़ने लगा तो सरदेई कहने लगी—"अरे कहां चला जा रहा है ! सुबह से कुछ भी खाया-पीया नहीं है। फिर कहां चल पड़ा ?"

पश्चिम दिशा से तूफान की सूचना देती हुई हवा बहती आ रही थी। सरदेई की वह बात भी हवा के साथ उड़कर समुद्र की ओर चली गयी। जगुनि बोला—"वे जो दो आदमी मुझे आज सारा दिन गुरुबाई से बरुण कुदा, बरुण कुदा से मउसा-ब्रह्मपुर घुमाकर हैरान कर चुके हैं, उनसे किराया मांगा तो बोले, "आना रसकुदा बलि पधान के घर। वे वहीं पर डेरा डाले हुए हैं।"

सरदेई ने पूछा—"कौन हैं वे लोग ?"

जगुनि ने क्लांत कंठ से उत्तर दिया—"क्या मालूम ! पता नहीं चिलिका में इधर-उधर भटक कर वे क्या ढूंढ रहे हैं। उन्होंने मेरे लाख पूछने पर भी कुछ नहीं बताया।"

सरदेई ने सोचा वे यात्री होंगे। मउसा-ब्रह्मपुर द्वीप पर जगन्नाथ की जगति-पर पूजा करने आए होंगे। ऐसे तो कई यात्री आते हैं और वे ही तो नाव किराये पर लेते हैं। उस समय ऐसे लोगों को नाव में घुमाना जगुनि का एक अलग धंधा हो गया था।

धूल मिली तूफानी हवा में उस समय जगुनि रसकुदा गांव की ओर दौड़ता-सा चल पड़ा था उन यात्रियों से किराया वसूलने को।

सरदेई वहां बैठी-बैठी जोर-जोर से कहने लगी…"जल्द लौटना रे जगुनि… तूफान आ रहा है।"

पालों की भांति बादलों की आड़ में पल-भर के लिए सूरज ने मुंह दिखाया तो लगा मानो जलसारसों के पंखों में किसी ने गुलाल पोत दिया है। 'जटिआ-नासी' और चंदशिला पहाड़ों के उस पार क्षितिज रेखा से सटकर सेमल की रुई की तरह उड़ रहे बादलों पर भी मानों किसी ने अबीर उडेल दिया था जो धीरे-धीरे मलिन पड़ते जा रहे थे। चिलिका के काले जल की सतह और लहरों पर अचानक एक लाल सिंदूरी रेखा खींच गयी जिसे लहरों ने समेट लिया और यह

रेखा अथाह जल में कहीं अदृश्य हो गयी।

सराय के अंदर आने को सरदेई का मन ही नहीं कर रहा था। आते हुए पागल तूफान को देखना सरदेई को भला लगता है। चिलिका में पक्षियों के दल टापुओं की ओर उडते हुए चले जा रहे थे। तूफान की गति धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। झाऊ के पेड पागलों की भांति सिर हिलाते हुए नाच रहे थे।

पुकारने भरके फासले में, जहां तटकिनारे में एक बालू सुरंग दायीं ओर काटती-सी मुड आयी है, वहां सुरंग के दोनों ओर दो ताल के पेड सुरंग के सजग पहरेदारों की भांति खड़े हैं। सरदेई ने हवा के आघात से कुचित आंखों पर हथेली से पर्दा करते हुए देखा—एक घुडसवार उसी ओर से सराय की ओर चला आ रहा था। दक्षिण को जाने वाले और दक्षिण से आनेवाले घुडसवार उसी रास्ते से आते-जाते हैं। पर अब वह रास्ता लगभग बंद-सा ही था। अब घुडसवार कटक-चिकाकोल के रास्ते से आते-जाते हैं। मालुद में मुगल फौजदार, घुडसवार और पैदल सैनिक घाटी बनाए हुए हैं। पर वे भी इस रास्ते से नहीं आते। इसलिये आज अचानक उस घुडसवार को देख सरदेई मन-ही-मन आतंकित हो उठी। आज भी जगुनि नहीं है। बालूगाव के उस हाडि भगा बर के पास जिस निर्यातना को सरदेई ने भोगा था उसकी स्मृति ने उसे आतंकित कर दिया था।

सरदेई जोर लगाकर चिल्लाने लगी···"जगुनि रे···ए···ए···जगुनि !"

पर उसका आर्त्तचीत्कार तूफान के कोलाहल के साथ घुल-मिल गया। घुड़सवार तब तक सराय के नजदीक आ चुका था। हवा से भरकर उसकी पगड़ी और कमीज फूल गये थे। लग रहा था जैसे उसके पीछे-पीछे और दो घुडसवार आ रहे है। सरदेई अंदर चली जाए या वहीं रुकी रहे यह निश्चित नहीं कर पायी थी, कि तभी वह घुडसवार वहां पहुंच गया।

पहले घोडे को देख सरदेई चौंक पड़ी। वह घोडा भी काला था। उसके सिर-पर भी सफेद तिलक-सा था।···बालूगाव की उस स्मृति ने उसके मन में कौंधकर उसे अवश कर दिया। पर इस घुडसवार की आंखों में वह लालचपूर्ण हिंसता नहीं थी। घुडसवार की आंखों में आग बेशक थी, पर उसमें जला डालने वाली निष्ठुरता नहीं थी। उसकी दृष्टि में उष्मता अवश्य थी पर वह उत्ताप से जला नहीं रही थी। वह युवक था। ललाट पर जरीदार पगडी के नीचे उलझी भीगी लटों की रेखा भौंरों की तरह लग रही थी। उसकी नाक बड़ी और उन्नत थी। उसके

नीचे काई की हलकी परत की तरह नयी-नयी उगी मूछों के नीचे पतले से होंठ खुले हुए थे। नाक के पास दो पतली-सी रेखाएं चेहरे को अधिक कोमल और संवेदनशील बना रही थी। उस अपरिचित घुड़सवार की सुंदर तरुण मूर्त्ति सरदेई के मन मे एक अन्य की स्मृति को जागरित कर रही थी। वह दूसरा आदमी, लगता था, सरदेई का अपना है, पर याद नही पड़ता कि सरदेई ने उसे कहा देखा था, कब और कैसे देखा था।

तरुण घुड़सवार की घोड़े को रोकने की चेष्टाओ के बावजूद घोड़ा थम नही रहा था। उसने हठात् कसकर लगाम खींची तो घोड़ा हिनहिनाते हुए पिछले पैरो को बालू पर दबाए सामने के पैरो को उछालते हुए रुक गया। सरदेई उस दृश्य को देख डर गयी और दौड कर सराय के अदर जाने को मुड गयी। पर हवा मे उड़ते साड़ी के आचल के रुकाव मे अचानक उलझ जाने के कारण, दौडकर भागती हुई सरदेई रुक गयी, मानो घुड़सवार ने आचल पकड कर रोक लिया है।

सरदेई सराय की सीढी पर रुककर बायें कधे पर गरदन झुकाए भयार्त्त दृष्टि से मुडकर देख रही थी। साड़ी का आचल हटने-से बायां स्तन अनावृत हो गया था और दायें स्तनमूल की वर्तुल रेखा स्पष्ट हो गयी थी। बिखर आए कुतल राशि हवा मे उड़ते हुए वक्ष के कुछ अशो को ईषत् आवृत कर रहे थे। साड़ी का आचल रुकाव मे फंसकर हवा मे उडते हुए रसिकता से मुखर लग रहा था। घुड़सवार सरदेई के अनावृत कुचमण्डल की शोभा देख जैसे परिस्थिति और परिवेश को भूल गया था। वैसा अगर नही होता तो फंसा हुआ आचल निकालकर वह सरदेई को अनायास मुक्त कर देता।

पर घुड़सवार की आखो मे सरदेई के प्रति अंगलोलुपता नही थी। कभी अगर नारी की अग शोभा अकस्मात् उदभासित हो जाती है तो उसका किसी भी पुरुष की रूप तृषा को प्रज्ज्वलित करना स्वाभाविक हो जाता है। पर वह रसानुभूति अग लालसा से भिन्न होती है। सरदेई की सम्मोहित करने वाली शोभा देख तरुण की आखो मे वैसी रसाविष्ट तन्मयता ही झलक रही थी।

सरदेई छातियों को बांहो मे छिपाए संतपित भीरु कदमों से आगे बढ़कर किस तरह आंचल को निकाले समझ नही सकी। अनूढ़ा कुमारी की भाति लज्जा और संकोच ने उसे अतर-बाहर से घेर लिया था।

बाध्य होकर सरदेई घोड़े के पास आयी···तब अप्रतिभ-सा होकर घोड़े पर से

झुक कर रकाब मे फंसा आंचल निकालते समय अनजाने ही मे उसने स्तन स्पर्श किया था। उस स्पर्श ने जितना सरदेई को रोमांचित नहीं किया, घुड़सवार को रहस्यमय उत्तेजना से उससे अधिक चंचल कर दिया।

आंचल के मुक्त होते ही सरदेई पल भर मे सराय के अदर चली गई। किवाड़ अंदर से बंद कर दिया। घुड़सवार जैसे उसी ओर देखते हुए संपूर्ण रूप से आत्म-विस्मृत हो गया था। पल भर मे सारी उत्तेजना चली गयी और घुड़सवार मुग्ध अवसाद का अनुभव करने लगा।

सरदेई घुड़सवार से उम्र मे बड़ी थी। अपराह्न की उदास छाया की भांति सरदेई का यौवन नम्र होने लगा था। फिर भी उस उदास धूसरता मे एक अनिर्वचनीय करुण लावण्य प्रच्छन्न था जिसने सरदेई को किसी अकुंठिता की सौंदर्य चपलता से अधिक सुंदर, अपूर्व और लोभनीय बनाया था। निदाघ निशि के अंत मे दलित मल्लीमाला के मुमूर्षु सौरभ की भांति सरदेई का मुरझाया रूप तरुण अश्वारोही के संवेदनशील अंतःस्थल को उद्वेलित कर रहा था। अश्वारोही के चेहरे पर नवयौवन मे अनेक नारियों के दैहिक संपर्क मे आने की विदग्धता सुस्पष्ट थी। आंखों की वितोलता से स्पष्ट पता चलता था कि रूप-अरण्य मे उसके आखेट का अंत नहीं है। पर यह भी स्पष्ट लग रहा था कि आज उसने चिलिका तट के उस उजाड़ तड़ा किनारे मे तूफान विक्षुब्ध सध्या के समय एक ऐसी नारी को देखा है जिसमे माता, भगिनी, प्रेमिका सब अनिर्वचनीय रूप से एकीभूत हैं।

वर्षा की संभावना तूफानी हवा के कारण धीरे-धीरे अपसारित होने लगी थी। पर पवन की तेजगति शिथिल नहीं हुई थी। दक्षिण और पश्चिम दिशा मे सध्या का अंधकार घनीभूत होता आ रहा था, पर उत्तर और पूर्व क्षितिज रेखा पर दिवस का अंतिम आलोक मिथ्या प्रभात का भ्रम उत्पन्न कर रहा था। जल-पक्षियों के दल उसी दिशा से चिलिका के द्वीपों को उड़े जा रहे थे।

पीछे-पीछे आये दूसरे घुड़सवार ने बताया—माणिक पाटना इस मुहाने से थोड़ी ही दूरी पर है रात के प्रथम प्रहर तक हम वहां पहुंच जाएंगे। अंधारीगड के केलु सामंतराय के पास महादेई ने पहले से खबर भेजी है। माणिक पाटना मुहाने के पास वे लश्करों के साथ हमारी प्रतीक्षा में होंगे। रात वहीं बिताकर कल सुबह हम पुरी की ओर निकल पड़ेंगे।

प्रथम आये तरुण अश्वारोही का मुग्ध आवेश तब भी था। जलसारस का

एक दल समुद्र की ओर से उड़कर आया और उस तूफान की परवाह किये बिना चिलिका पर उड़ते हुए चला गया।

द्वितीय अश्वारोही असहिष्णु स्वर से कहने लगा—"अब इस उजाड़ में क्यों रुक गये हैं कुमार ! क्या सोच रहे हैं ?"

प्रथम अश्वारोही खोर्धा के युवराज भागीरथी कुमार थे।

उनके पीछे-पीछे पहुंचे अन्य दो घुड़सवार ललिता महादेई के दो अत्यंत विश्वसनीय व्यक्ति थे—एक वंशीधर श्रीचदन और दूसरे जगन्नाथ परीछा। लगभग पचास लश्करो के साथ उन दोनों के तत्वाधान मे ललिता महादेई ने भागीरथी कुमार को पुरी भेजा था। नायब-नाजिम तकीखा ने जिस उद्देश्य से रामचंद्र देव से राज सेवा का अधिकार छीनने के लिए अमीन चद को भेजा था उसी उद्देश्य से ललिता महादेई ने भागीरथी कुमार को भेजा था। उनका उद्देश्य था यदि भागीरथी कुमार रथयात्रा के समय रथो पर छेरा पहरा आदि विधियों का संपादन कर सकेंगे तो खोर्धा सिंहासन पर उनका अधिकार स्वयं जगन्नाथ और सहस्र-सहस्र जनता की उपस्थिति मे प्रतिष्ठित हो जाएगा। इसलिए पुरी में प्रतीक्षा करने वाले स्वर्गीय वेणु भ्रमरवर के अन्य सहकर्मियो के साथ गुप्त मंत्रणा करके ललिता महादेई सब निश्चित कर चुकी थी। यथा समय अगर भागीरथी कुमार राजसेवाओं की विधियों का सपादन करने पहुंचे तो मुख्य सेवक मडली उन्ही के पास आज्ञामाल पहुचाएगी। वैसी परिस्थिति मे रामचंद्र देव ने पता नही क्या किया होता।

पर बात कुछ और ही हुई।

पुरी अब भी दूर था। रथयात्रा समाप्ति होकर आज पुरी में हेरा पंचमी का उत्सव मनाया जा रहा होगा। जिस अभिप्राय से उन्होने बाणपुर से प्रस्थान किया था उसके सफल होने की संभावना अब नही थी।

पोता मुहान पार करते समय अचानक आकर मालुद का फौजदार उन पर हमला करेगा और उन्हे वहा रोक लेगा, यह किसको पता था ? अब जैसे भी हो अगर बाहुड़ा तक वे पुरी पहुंच जाते, लेकिन यह आशा भी अत्यत क्षीण लग रही थी।

वंशीधर ने असहिष्णु स्वर से कहा—"सांझ हो आयी, तूफानी रात है। और देर करने से क्या फायदा कुमार ?"

भागीरथी कुमार घोडे पर से उतर पडे और बोले—"ऐसी एक रात के समय कदा नदी पार करने के कारण ही तो मालुद का फौजदार हमे वदी बना सका। हम इस अधेरी रात मे माणिक पाटना नही चलेंगे। आप आगे-आगे जाए। माणिक पाटना मे नाव की व्यवस्था कर लें, मैं वहा कल सुबह पहुचूगा। एक बात और है, जो पाइक हमारे पीछे-पीछे पैदल आ रहे हैं उनकी प्रतीक्षा करनी है। यह शायद एक सराय है, मैं यही रात-भर के लिए ठहर जाता हू।"

यशोधर को पता था कि भागीरथी कुमार हठीले है। जिद कर बैठें तो उन्हे मनाना या कुछ कहना निरर्थक है। सही बात तो यह थी कि वे नृत्यगान आदि छोडकर एक रूखे कार्य के लिए ललिता महादेई की इच्छा और आदेश मे चल पडे थे जिसके कारण वे मन ही मन क्षुब्ध थे। राजनीति की हिंसुता और तुच्छताओं के प्रति उनकी रुचि नही थी; फिर भी खोर्धा सिंहासन का मोह, पिता रामचद्र देव के प्रति अहेतुक घृणा और माता के प्रति आनुगत्य उन्हे तूफान मे सूखे पत्ते की भाति पुरी की ओर वहा ले जा रहा था। कुमार अगर कल सुबह माणिक पाटना चलने को कह रहे है तो अब प्रलय हो जाये तब भी वे चलने वाले नही। इसलिए यशोधर ने कुछ नही कहा और घोडा छुटाए माणिक पाटना की ओर चल पडे। भागीरथी कुमार घोडे की लगाम पकड़ कर चलते हुए सरदेई की सराय की ओर बढ़ने लगे।

सरदेई किवाड की आड मे खडी-खडी सोच रही थी कि दरवाजा खोले या नही। अन्य यात्री जिस तरह पास के कमरे मे ठहरते हैं, यह भी वही ठहरेगा। कई तो आकर सीधे वहीं ठहरते हैं। यहा तक कि वहा फिरगियो को भी ठहरने दिया है। सरदेई ने और उन्हे ठहराते समय सोचा तक नही। पर अब इस घुड-सवार को रखने समय क्यो चिंता से व्याकुल हो रही है?

पर इसका कोई सही जवाब सरदेई को मिल नही रहा था। किवाड की दरार मे घुसकर शीतल तेज हवा उसका आचल उडाती जा रही थी। जिससे बचने के लिए उसने दातो मे आचल दबाकर बदन पर साडी को लपेट लिया था।

घुड़सवार घोड़े को बाजू के एक पेड मे बाधकर सराय के बरामदे पर आ गया।

बाणपुर मे युवराज भागीरथी कुमार को कैद करने के लिए तकीखा के हुक्म

से फौजदार हाशिमखां द्वारा वंकाड़, नीलाद्री प्रसाद, चंपागड़, कुहुड़ि और छवगड आदि दुर्गों को छान लेने के बाद भी युवराज मिले नही थे। उस पर महादेई ने अपने दाये हाथ की भांति वंशी श्रीचंदन और जगु परीछा के साथ युवराज को पुरी भेजा था। किसे पता था कि उनके साथ रहते हुए भी आसानी से जाल में मछलियों के आ फंसने की तरह वे फस जाएगे। बाणपुर से आते समय हाशिमखां को ठगने के लिए वे खोर्धा की सड़क छोड़कर, वज्रकोट घाट पर चिलिका पार करके तंडाकिनार होते हूए पुरी जा रहे थे। उस रास्ते मे मुगल-दगे का कोई प्रभाव नही रहता। इसलिए भागीरथी कुमार का पता मुगलो को लग सकेगा, इसकी आशंका नही थी। पर दक्षिण से आने वाले यात्रियो से जजिया वसूलने के लिए मालुद के फौजदार ने कंदा नदी के मुहाने मे चौकी बनायी थी, यह बात भागीरथी कुमार के दल को मालूम नही थी।

भागीरथी कुमार के वज्रकोट से वहा पहुंचते-पहुंचते साझ हो गई थी। साधारणतः आषाढ के आरंभ मे कंदानदी का मुहाना सूखा-सा पडा रहता है। नदी पार करते हुए कही-कही घुटनो तक और ज्यादा से ज्यादा कमर तक पानी होता है। पर सावन मे जब चिलिका भर जाती है तब मरे हुए सांप की तरह पड़ी कंदा नदी का मुहाना भयंकर रूप से फेनायित हो जाता है। अतीत मे इसी रास्ते से होते हुए समुद्र मे चिलिका को वड़े-वड़े वोइत आते थे। पर अब वह मुहाना उर्वर कर्दमाक्त मिट्टी से भरकर एक सपाट प्रातर बन गया है। पुरी के लिए यात्री इसी रास्ते से पैदल चलते हैं। मालुद फौजदार ने इसलिए वहा जजिया वसूलने के लिए चौकी विठाई थी।

दक्षिण से जो यात्री आते हैं, वे भी पैदल आते हैं। वहां जब घोडे पर भागीरथी कुमार लश्करों के साथ, वैलगाडियों में रसद वगैरह लेकर पहुंचे तो चौकी के लोगों ने उन्हें साधारण यात्री नही समझा। मालुद फौजदार के लश्करो ने उन्हे रात-भर के लिए रोक लिया और सुवह उन्हे फौजदार के पास चालान कर दिया। उनका परिचय पाने में फौजदार को देर नही लगी। उसने उन्हें कैद करके, कटक नायव-नाजिम तकीखा के पास खबर भेजी। हाशिमखा के लिए जो करना सभव नही हुआ था उसे मालुद के फौजदार ने आसानी से कर दिखाया था इसलिए उसने तकीखा से इनाम के तौर पर कम से कम मनसवदार की पदवी पाने की इच्छा से बड़ी तत्परता से खबर भेजी थी। पर तब तक खोर्धा के प्रति

तकीखा के परिवर्तित राजनैतिक विचार के बारे मे मालुद के फौजदार को कुछ भी पता नही था।

राजनीति बडी विचित्र होती है। वेश्या का प्रेम और चांद की चादनी में स्थिरता हो सकती है पर क्षमता और राजनीति में बधुत्व और वैर होते हुए बादलो की भाति अस्थिर होते हैं। अभी जो शत्रु बना बैठा है वही दूसरे मुहूर्त मित्र बन जाएगा। छुरी की जो धार अब तक शत्रु के गले के लिए तेज की जाती रही वही मित्र के गले मे लग सकती है। राजनीति सुविधावाद का एक महारण्य है जहा आत्मरक्षा और आत्मस्वार्थ ही धर्म कहलाते हैं।

खोर्धा के मित्र राजा रामचद्र देव के विरुद्ध पताका उत्तोलन करने के अपराध के कारण जिस भागीरथी कुमार को बंदी बनाने के लिए तकीखा ने हाशिमखा को बाणपुर भेजा था; आज रामचंद्र देव को श्रीक्षेत्र से प्रतिष्ठाच्युत करने के लिए तकीखा को उसी भागीरथी कुमार की मित्रता की आवश्यकता थी। इससे तकीखा के भागीरथी कुमार के प्रति विचार बदल चुके थे। पुरी से अमीन चंद से भी खबर मिली थी कि अगर उचित समय पर भागीरथी कुमार पुरी पहुचेंगे तो रामचद्र देव को राज सेवा कार्य से वचित कराके वह कार्य भागीरथी कुमार के हाथो सपन्न होगा और इसके लिए वे पूरी सहायता देंगे। बाप-बेटे मे लडाई छिडेगी तो इससे तृतीय पक्ष के रूप मे अमीन चद को लाभ ही होगा।

पुरी के रास्ते मे भागीरथी कुमार को मालुद फौजदार ने कैद कर लिया है यह सुनकर तकीखा ने ईनाम के बदले हुक्म भेजा कि किसी भी सूरत मे भागीरथी कुमार शीघ्र पुरी पहुचाए जाए। अगर वह सही वक्त पर पुरी नही पहुचे तो मालुद के फौजदार को कैद कर लिया जाएगा।

हाशिमखा उस समय लालबाग में था। उस जैसे दुर्दांत सेनापति के द्वारा जो कार्य नही हो पाया उसे एक साधारण फौजदार ने कर दिखाया था इसलिए हाशिमखा मन ही मन दात पीस रहा था। इसलिए उसने तकीखा के गुस्से की आग मे घी डालते हुए कहा—"खुदावद, इसीलिए तो मैंने भागीरथी कुमार को देखकर भी छोड दिया था। वैसा अगर नही होता तो, वह क्या मेरे हाथो से बच निकलता। अब मालुद फौजदार की बेवकूफी के कारण बनी बनायी बात चौपट हो गयी।"

तकीखां निष्फल क्रोध से पैर पटकते हुए चिल्लाया—"चुप करो, तुम क्या करामात दिखा सकते हो हमें मालूम है !"

भागीरथी कुमार को मुक्त करने का परवाना लेकर मालुद भेजे गये लश्कर के लौटने तक पुरी मे श्री गुडिचा यात्रा समाप्त हो चुकी थी।

तूफान शात हो गया था। आकाश पर बादलों की ओट में छिपता मुंह दिखाता सप्तमी का चंद्रमा हंसने लगा था। चिलिका की जलराशि, बादलो की छाया और चादनी की चादर ओढे सो गयी थी। पर कुछ लहरो की और कुछ जलसारसों की अशात आंखो मे नीद नही थी। उस समय बादल की ओट मे चाद पल भर के लिए छिप गया—बादल के चारो ओर न मालूम किस जादूगर ने चादी जड़ दी थी। मेघ काला क्यों न हो, उसके चारों ओर आलोक की दीप्ति थी, सारे दुर्योग में भी सुदिन की उज्ज्वल संभावनाओ की भाति।

नही तो तडाकिनार के उस उजाड़ मे, उस सराय में ऐसी एक अनुभूति किस तरह मिलती भागीरथी कुमार को !

भागीरथी कुमार उनीदी आखों से चाद और चिलिका को देखते हुए यही सब सोच रहे थे। उजाड तडाकिनार के बालुका प्रातर पर कुछ जलसारसो के उड़ने की भाति भागीरथी कुमार की सारी चेतना और भावनाएं सरदेई की ओर धावित होती चली जा रही थी। पर बाणपुर गढ़ को लौटने की बात मन मे आते ही उनकी भावना का रसभंग होता था। ललिता महादेई स्वभावतः क्रोधी हैं। उस पर भागीरथी कुमार को खोर्धा के राज सिंहासन बिठाने का व्रतपालन करने की जिस तरह ललिता महादेई ने प्रतिज्ञा की है, उसमे भागीरथी कुमार तो निमित्त मात्र ही हैं। जिस रामचद्र देव ने यवनी के साथ विवाह करके उन्हे लाछित किया है और कर रहे है, उन्हें राज सिंहासन से विताड़ित करने की पाचाली की तरह प्रतिज्ञा कर रखी हैं उन्होने।

ललिता महादेई तो समझेंगी नही कि उन्हें कदानदी के मुहाने पर मालुद के फौजदार ने रोक लिया था। वे जरूर पूछेंगी—"तो तुम्हारे साथ लश्कर क्यो भेजे गये थे···क्या नाच दिखाने को ?" यह कैसे समझेंगी ललिता महादेई कि वहा उस ढलती साझ के समय मालुद के फौजदार के लश्करों का मुकाबला करने की शक्ति उनमे नही थी। अंत मे जब वे सुनेंगी कि भागीरथी कुमार की अवहेला के कारण वे समय पर पुरी नही पहुंच पाए तो उन पर आहत सर्पिणी की भांति

उसी अंतहीन प्रतीक्षा में सरदेई जीवित थी। क्या एक और जन्म है, इस जन्म के पश्चात् ? सरदेई ने आह भरी।

तड़ाकिनार पर रात गहरी हो गयी है। तब भी जगुनि लौटा नहीं था। दीये के उजाले की छाया दीवार पर नाच रही थी। अवलंबनहीन निःसंगता में उसने एक दिन खाला, हरिद्रा आदि से दीवार पर जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा का चित्र बनाया था। वही चित्र कभी-कभी कांपती शिखा के आलोक में नाच रहा था। उसी चित्र पर सरदेई के अनावृत स्तनों की छाया दो संलग्न पर्वतों की भांति लग रही थी। समाज के विचित्र विचार से वह कुलनाशिनी, समाजच्युता बन गयी है। जगन्नाथ के मंदिर में उसका प्रवेश निषिद्ध है। पर हृदय में बसे जगन्नाथ से उसे कौन वंचित कर सकता है ? जगुनि तो हठ कर बैठा था, वह रहा था मैं तुझे पुरी ले चलूंगा। तुझे वहां कौन पहचानेगा। किसको पता चलेगा कि तू बालू गांव सराय की सरदेई है ? पर कोई पहचाने न पहचाने...वह चकाडोला तो पहचानेगा ? वह अंतर्यामी है। कौन-सी बात ऐसी है जो उससे छिपी रहेगी ! तो वह क्या समझता नहीं है कि जब से वह विधवा बनी है तब से व्रतचारिणी की भांति वह निष्पाप निष्कलंक बनी रही है। अपनी चेतनता में तो वह पठानसैनिक को देहदान करके पतिता बनी नहीं है; उसने अपने शरीर को कलुषित किया नहीं है। मन के चंचल जल की सतह पर अवश्य अनेक छायाएं आई हैं, पर जैसे आयी हैं वैसे ही अदृश्य भी हो गयी है।

बाहर तूफान थम गया था। पर अटियानासी की ओर से आकाश पर बादल उमड़े आ रहे थे। जगुनि तब तक वापस नहीं आया था। अब वह अनजाने अपरिचित लोगों को लेकर चिलिका में दूर-दूर को चला जाता है। पूछने पर कुछ भी खुलकर नहीं बताता। उस पर उस दिन बालूगांव की उस घटना के बाद जगुनि सरदेई के प्रति ठंडा और उदास बन गया था। अतीत में सरदेई के पास कुछ कहते हुए थकता नहीं था जगुनि। पर अब कुछ भी नहीं कहता। सरदेई से दूर-दूर रहता है।

सरदेई की आंखों में आंसू बह आए। गालों पर से होकर दो बूंदें नीचे गिर पड़ीं। सोख लिया मिट्टी ने उनको। मिट्टी पर वे दो बूंदें दो काले वृत्तों की सर्जना

रके जैसे पसरती चली गयीं। कुछ समय के बाद दीपक के उजाले से वे वृत्त ी काली आखों जैसे लगने लगे।

सरदेई की आखों के सामने फिर उस सुनसान धूप मे तपती दोपहर, माल-कुदा गाव मे आया वह प्यासा घुड़सवार, उसकी दो शून्य उदास आखें···सब कुछ फिर से साकार हो गया। उस तरह की असहाय, स्नेह-तृपित आंखें सरदेई ने देखी नही थी। उस दिन उसे देखते ही पता नही क्यो सरदेई का अतःस्थल ममता से भर गया था। उस अपरिचित घुडसवार के उत्तप्त ललाट को आदर से सहला कर उसे आचल से पखा करते हुए पसीना पोछकर सुला देने के लिए उसका मन मचल उठा था।

अब भी कभी-कभार एकांत, उदास मुहूर्त्तों में वे ही आखें, चिलिका के जल पर काले बादलों की छाया की भाति नाच उठती हैं और कही घुलमिल जाती हैं।

आज फिर एक घुडसवार आया है।

तब जाकर सरदेई ने याद किया कि उन आंखो को उसने मालकुदा गांव में निर्जन तपती दोपहरी मे देखा था।

पर ये दोनों आखें वन्य हैं। इनमें उन आंखों की स्नेहतृपित असहायता नही है···सुदूर की पिपासा भी नहीं है।

सरदेई का तन रोमांचित हो उठा। किवाड़ की दरार से बहकर आती हुई हवा उसे मचलाती जा रही है यह सोचकर उसने अनावृत छातियों को आंचल से ढक लिया। जाघों पर शिथिल वस्त्र खीच लिया।

रात काफी हो चुकी थी। जगुनि लौटेगा या नहीं पता नही था। उस दिन भी कहा गया था जो दोपहर वीते लौटा था। उस समय सुबह का तारा माणिक पाटना की ओर समुद्र पर उगने लगा था।

लेटे-लेटे सरदेई को वीती हुई वातों का स्मरण करना न जाने क्यो अच्छा लग रहा था।

शाम से आंचल में बंधी अंगूठी को खोल कर एक बार देखने के लिए उसकी उंगलियां मचल रही थी। पर पता नही किसलिये उस अंगूठी को देखने का साहस नही कर पा रही थी सरदेई।

सांझ बीते आए उस घुड़सवार ने सरदेई से दूध और छेना खरीदा और उसके दाम देने को उसके पास पैसे नही थे तो उसने यह अंगूठी गिरवी रखी है।

…धीरे-धीरे साझ ढल गयी। चारो ओर बादल छा जाने से दिनी में अधेरा छाने लगा सरदेई ने सराय मे अपने कमरे मे दीया जलाया और दूसरे कमरे में अपरिचित युवक के अज्ञात पैरों की आहट सुनने लगी। जगुनि सराय मे अतिथियो की परिचर्या करता है। पर आज वह नही था, इसलिये सरदेई आकर उस कमरे मे दीया जलाकर रख गयी। सुराही में पानी भर कर रख दिया। रात को वह अपने हाथो से पका कर खायेगा या उसका पकाया खालेगा यह पूछ नही सकी। उसको अगर भूख होगी तो अपने आप माग लेगा। वह क्यो पूछने जाए !

सरदेई सोच रही थी।…कुछ समय बाद किवाड़ पर दस्तक सुन वह चौक पड़ी थी। यह तो हवा की आवाज नही है। तूफान भी तब तक थम चुका था। वह घबराती हुई उठ आयी, और किवाड खोलते ही घुड़सवार को सामने देखा ! उस समय उस अपरिचित घुड़सवार को सामने देख सरदेई ने किवाड़ की आड़ मे अपने को छिपा लिया और किवाड को जकडकर पकडे खड़ी रही। सरदेई जिस हाथ से किवाड़ पकड़कर खड़ी थी उस हाथ की चपाकली-सी उगलिया और पैर को ही घुड़सवार देख सकता था। पर सरदेई किवाड़ की आड मे उसे स्पष्ट रूप से देख रही थी।

घुड़सवार ने पूछा—"दही है क्या ?"

कई बार उसी प्रश्न को दुहराने के कारण बाध्य होकर सरदेई को उत्तर देना पड़ा था। वह बोली—"दही नही, दो घड़े दूध है।"

घुड़सवार के होठो पर शरारत भरी मुसकराहट फूट पड़ी जो पल-भर मे ठहाके मे बदल गयी।

घुड़सवार क्यो हसा सोचते ही सरदेई लजा गयी। घुड़सवार अगर देख सकता तो उसने सरदेई के लाज से रगे चेहरे को अवश्य देखा होता।

होठो पर हसी दबाए घुड़सवार ने पूछा—"पानी मिला दूध तो नही है ?"

तब तक सरदेई का सकोच उस सम्मुखीनता के कारण हटने लगा था। वह बाहर चली आयी और कहने लगी—"अपनी गोठ का दूध हो तो कोई कह सके, यह तो पराया है। क्या जाने पानी मिला भी हो।"

फिर घुड़सवार हसने लगा। पानी का भी एक और मतलब है यह सरदेई नहीं समझ सकी।

घुड़सवार की बच्चे जैसी हसी से सरदेई शर्म के मारे मरी जा रही थी।

घुड़सवार बोला—"ठीक है, जो भी है दे दो।"

सरदेई अदर चली गयी। दो घडे दूध और कुछ छेना लाकर सामने रख दिया। घुड़सवार की कीमत देने की आदत शायद नही थी। दूध और छेना लेकर वह अदर बढने लगा तो सरदेई बोली—"दाम ?"

आकाश पर से गिरने की भाति घुड़सवार ठिठक कर रह गया। सहमता हुआ बोला—"मेरे पास पैसे नही है। ऐसी विपदा मे आ फंसा हूं जिससे यहां आकर रात भर के लिये रुकना पड़ा है।" और कहते-कहते उसने अपनी उंगली मे से अंगूठी उतार ली। उस पर एक बडा-सा नीला पत्थर जड़ा था। वह कहने लगा—"तुम इसे रख लो, लौटते समय तुम्हे दाम देकर इसे वापस ले लूगा।"

सराय चलाने वाली सरदेई, भला वह क्यो इनकार करती दाम के बदले किसी कीमती चीज को गिरवी रखने से !

उसके बाद सरदेई सहानुभूति भरे स्वर से बोली—"कहां जा रहे हो तुम ? कहां से आये हो ? अकेले आये हो क्या ?"

"हां अकेला हूं। और तुम ?"—घुड़सवार ने आहें भरते हुए पूछा था।

सरदेई अगूठी को दीये के उजाले मे देखते हुए अनमने भाव से कहने लगी—"लगता है आज जगुनि लौटेगा नही।"

घुड़सवार के दो पतले होंठो पर तलवार की धार की तरह शरारत से भरी हंसी खिल उठी। सरदेई का मुह लाज से लाल हो गया था।

सरदेई अपनी बायी हथेली पर गाल रखकर सोयी-सोयी जलते दीये को देखती हुई मन-ही-मन अपने-आपको कोस रही थी।…छिः, क्यो मैंने कह दिया कि आज रात को मैं सराय पर अकेली रहूंगी। क्या-क्या नही सोचता होगा वह ?

बाहर बादल फिर घिरने लगे थे। किवाड़ की दरार मे से वह आयी हवा के झोके से दीप की लौ बार-बार काप जाती थी। उस समय सरदेई को लगा मानो कोई किवाड़ पर दस्तक दे रहा हो। वह सिर से पैर तक उत्तेजना और उत्कंठा से काप उठी।

आवाज बंद हो गयी। दीवार पर बने जगन्नाथ के चित्र पर दीप के उजाले की छाया नाचने लगी।

फिर वही आवाज सुनाई पड़ी। इस सुनसान रात मे सरदेई अकेली है जान-

कर घुड़सवार दस्तक दे रहा है शायद। इसी आशंका से उठकर आकर किवाड़ खोलने का साहस नहीं किया उसने। वह आवाज धीरे-धीरे बढ़ रही थी। बाध्य होकर सरदेई उठी और साहस करके उसने किवाड़ खोल दिया। उस दिन बालू-गाव में उस पठान सैनिक के अंग उठाकर जगन के अंदर से जाते समय वह जिस भांति तुषार-शीतलता से स्पर्श कातरहीन पत्थर बन गयी थी उसी तरह आज भी उसकी सारी चेतनता निष्पंद हो गयी थी।

सरदेई के किवाड़ खोलते ही बाढ़ में जल की भांति तेज हवा बह आयी। बाहर कोई नहीं था। शुक्ल पक्ष का चांद अस्त हो गया था।

सराय के बरामदे के नीचे धणा के झाड़ से घोड़ा बंधा हुआ था। वही घोड़ा खुर पटक रहा था। वही आवाज दस्तक जैसी लग रही थी। पागल हवा के साथ समुद्र और चिलिका का गर्जन एकाकार हो गया था। तब तक जगुनि लौटा नहीं था।

मुंह और छाती पर उलझी लटों को सुलझाती हुई सरदेई पुकारने लगी—"जगुनि…जगुनि रे…ए…ए…!"

सरदेई की पुकार पगली हवा के साथ सराय को लौट आयी।

कुछ देर के बाद सरदेई ने अंदर आकर किवाड़ बंद किया ही था कि बरामदे में जगुनि का स्वर सुनाई पड़ा…"देई !"

सरदेई ने किवाड़ झटसे खोल दिये। जगुनि अंदर आते ही कमर में खोंसे हुए रुपये को निकाल कर नीचे पटकते हुए बोला—"ले यह रुपया, कहीं छिपा कर रख दे। वे और देंगे।"

वह एक नूरजहानी चांदी का रुपया था। साधारण घरों में वैसा रुपया सपना-सा है। यह कैसा रुपया है, किसने दिया, क्यों दिया आदि मनमें उठे सवालों को सरदेई ने पूछा नहीं था कि जगुनि पूछने लगा—

"बाहर बंधा हुआ वह घोड़ा किसका है देई ?"

सरदेई कुंठित स्वर में बोली—"शाम से एक घुड़सवार आकर रात के लिये यहां ठहरा हुआ है। तू तो चला गया—मैं हैरान हो चुकी हूं।"

जगुनि बोला—"तो वे ठीक कह रहे थे !"

सरदेई को यह बात पहेली-सी लगी। वह पूछने लगी—"क्या कह रहे थे ?"

जगुनि ने उस सवाल का जवाब नहीं दिया और पूछने लगा—

"जानती हो देई यह कौन है ?"

सरदेई बोली—"नही तो। मुझे क्या पता। सराय पर कितने आते हैं, कितने जाते हैं।"

जगुनि ने बताया—"मुझे तूने पत्र देकर खोर्धा राजा के पास भेजा था न, यह घुड़सवार उन्ही का बेटा है। बाप के खिलाफ लड़ने को पुरी जा रहा है।"

सरदेई चौंक कर बोली—"बाप-बेटे मे लड़ाई ! तुझे किसने कहा ?"

सरदेई ने सोचा था कि आचल में बंधी अगूठी खोलकर दिखाएगी। पर दिखायी नहीं। ये सब बातें उसे पहेली-सी लग रही थी।

सरदेई ने कहा—"देख जगुनि, तुझे मेरी कसम। जो पूछती हूं साफ-साफ बताना। देखती हूं कई दिनों से अनजान लोगों के साथ तू घूमता-फिरता है। चिलिका के अंदर तेरा इतना क्या काम है ? वे कौन है बता तो ?"

जगुनि ने जम्हाई ली और दीये को बुझा दिया—"यह सब मत पूछ देई, उन्होने मना किया है कहने को। मैं थक गया हूं, सोऊंगा। भोर फिर चलना है।"

दीप बुझाकर जगुनि खर्राटे भरने लगा। पर सरदेई की आखों मे नीद नही थी। पागल पवन के डैनों मे भी विश्राति नही थी।

कर घुड़सवार दस्तक दे रहा है शायद। इसी आशका से उठकर आकर किवाड खोलने का साहस नही किया उसने। वह आवाज धीरे-धीरे बढ़ रही थी। बाध्य होकर सरदेई उठी और साहस करके उसने किवाड खोल दिया। उस दिन बालूगाव मे उस पठान सैनिक के उसे उठाकर जगल के अदर ले जाते समय वह जिस भाति तुषार-शीतलता से स्पर्श कातरहीन पत्थर बन गयी थी उसी तरह आज भी उसकी सारी चेतनता निष्पद हो गयी थी।

सरदेई के किवाड खोलते ही बाढ मे जल की भाति तेज हवा वह आयी। बाहर कोई नही था। शुक्ल पक्ष का चाद अस्त हो गया था।

सराय के बरामदे के नीचे चपा के झाड से घोड़ा बधा हुआ था। वही घोड़ा खुर पटक रहा था। वही आवाज दस्तक जैसा लग रही थी। पागल हवा के साथ समुद्र और चिलिका का गर्जन एकाकार हो गया था। तब तक जगुनि लौटा नही था।

मुह और छाती पर उलझी लटो को सुलझाती हुई सरदेई पुकारने लगी—"जगुनि···जगुनि रे···ए···ए···!"

सरदेई की पुकार पगली हवा के साथ सराय को लौट आयी।

कुछ देर के बाद सरदेई ने अदर आकर किवाड़ बद किया ही था कि बरामदे मे जगुनि का स्वर सुनाई पडा···"देई !"

सरदेई ने किवाड़ झटसे खोल दिये। जगुनि अदर आते ही कमर मे खोसे हुए रुपये को निकाल कर नीचे पटकते हुए बोला—"ले यह रुपया, कही छिपा कर रख दे। वे और देंगे।"

वह एक नूरजहानी चादी का रुपया था। साधारण घरो मे वैसा रुपया सपना-सा है। यह कैसा रुपया है, किसने दिया, क्यो दिया आदि मनमे उठे सवालों को सरदेई ने पूछा नही था कि जगुनि पूछने लगा—

"बाहर बधा हुआ वह घोड़ा किसका है देई ?"

सरदेई कुंठित स्वर मे बोली—"शाम से एक घुडसवार आकर रात के लिये यहा ठहरा हुआ है। तू तो चला गया—मैं हैरान हो चुकी हू।"

जगुनि बोला—"तो वे ठीक कह रहे थे !"

सरदेई को यह बात पहेली-सी लगी। वह पूछने लगी—"क्या कह रहे थे ?"

जगुनि ने उस सवाल का जवाब नही दिया और पूछने लगा—

"जानती हो देई यह कौन है ?"

सरदेई बोली—"नही तो। मुझे क्या पता। सराय पर कितने आते हैं, कितने जाते हैं।"

जगुनि ने बताया—"मुझे तूने पत्र देकर खोर्धा राजा के पास भेजा था न, यह घुड़सवार उन्ही का बेटा है। बाप के खिलाफ लड़ने को पुरी जा रहा है।"

सरदेई चौंक कर बोली—"बाप-बेटे मे लडाई ! तुझे किसने कहा ?"

सरदेई ने सोचा था कि आचल मे बंधी अंगूठी खोलकर दिखाएगी। पर दिखायी नही। ये सब बातें उसे पहेली-सी लग रही थी।

सरदेई ने कहा—"देख जगुनि, तुझे मेरी कसम। जो पूछती हूं साफ-साफ बताना। देखती हूं कई दिनो से अनजान लोगों के साथ तू घूमता-फिरता है। चिलिका के अंदर तेरा इतना क्या काम है ? वे कौन हैं बता तो ?"

जगुनि ने जम्हाई ली और दीये को बुझा दिया—" यह सब मत पूछ देई, उन्होंने मना किया है कहने को। मैं थक गया हूं, सोऊंगा। भोर फिर चलना है।"

दीप बुझाकर जगुनि खर्राटे भरने लगा। पर सरदेई की आखो में नींद नहीं थी। पागल पवन के डैनो मे भी विश्राति नही थी।

दशम परिच्छेद

1

आज नवमी है। कल बाहुडा यात्रा। परसों अधरपणा भोग। दूसरे दिन नीलाद्री-विजय। उसके बाद जगन्नाथ श्रीमंदिर को प्रत्यावर्त्तन करेंगे और रथ-यात्रा महोत्सव समाप्त हो जाएगा।

पर उसके बाद !

रामचद्र देव के मुखमडल की रेखाए कठोर हो गयी। भौंहे सकुचित हो गयी। आखें दूर के सातपडा द्वीप के सरकडे के वन की ओर प्रसारित हो गयी।

अपराह्न के स्तिमित आलोक मे दूरस्थ वनरेखा स्निग्ध कोमलता से प्रलिप्त होकर शात लग रही थी। पुरवाई के शीतल स्पर्श से रामचद्र देव के असलग्न, अयत्न विन्यस्त केश ललाट और आखो पर बिखरे पड़े थे। क्षौर कर्म के अभाव से मुखमडल रूक्ष और मलिन लग रहा था।

सान परीछा विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र हथेली पर गाल टिकाए चिंतित मुद्रा मे चिलिका की अतहीन अतल जलराशि को देख रहे थे। बीच-बीच मे रामचद्र देव को भी देख लेते थे, मानो उन्हे कुछ अनुत्तरित, अनुच्चारित जटिल प्रश्न अत्यत उद्वेलित कर रहे हो, पर वे चुप थे।

बायी ओर बरुणकुदा द्वीप को छोड़ गुरुबाई द्वीप की दायी ओर से होते हुए नाव उत्तर-पूर्व दिशा मे बढ रही थी। सामने से पुरवाई बह रही थी इसलिए चिलिका की जलराशि फेनिल उर्मियो मे पश्चिम की ओर प्रसारित हो रही थी। सामने से पवन का प्रतिकूल आघात तब तक लगा नही था, इसलिए नाव स्वच्छद गति से चल रही थी। पर अब कठिनाई होगी। जगुनि कमर से सिर तक आदोलित करके दोनो हाथो से नाव खेता जा रहा था जिसके कारण उसकी बाहो की पेशिया चिलिका के जल की भाति फूल गयी थी।

चिलिका निर्जन थी। मछुवारो की नावें तट पर पहुच चुकी थी। जगुनि ने

मुडकर देखा, कालिजाई पहाड़ पर सूर्य ढलने लगा था। चिलिका के जल को दो भागों में विभक्त करके अस्त होने वाले सूर्य की किरणें एक रेखा मे पड़ रही थी, किसी सौभाग्यवती की मांग की सिंदूर-रेखा की भाति। पूर्व दिशा मे पक्षियो का दल नीडों को लौट रहा था।

वही उत्पीड़क प्रश्न, जो रामचद्र देव ने अपने आपसे बारंबार पूछा था और जिसका उत्तर उन्हें मिला नही था; फिर से उन्हे आंदोलित करने लगा।··· "उसके बाद ?"

वरुणकुदा द्वीप का वन एक न टूटने वाली रागिनी की भाति अटूट था, जिसमें विराम नही था। रामचंद्र देव उसी गहन अरण्य को देखते हुए उसकी दुर्भेद्यता की कल्पना कर रहे थे। मुगल फौज सधान करते-करते यहा तक पहुच सकेगी या नही वे इसी प्रश्न पर एक दक्ष सेनापति की निपुणता से सब ओर से सोचते हुए समीक्षण कर रहे थे।

खस और ऊची समुद्री घास जगह्-जगह् चिलिका के जल पर पसर आई थी। जिस जगह् घास चिलिका के जल को स्पर्श कर रही थी वहा मानो शाति और सतोष का नीड निर्मित हो गया था। एक अकेला ताड का पेड़ उस जगह के जाग्रत पहरेदारो की भांति खड़ा था और वहां की अनाहत प्रशाति और छाया घन रहस्य को सुरक्षित बनाये हुए था।

काली गउडुणी पक्षियों का एक दल सातपड़ा द्वीप की ओर से उड़ आया और छायाच्छन्न चिलिका जल पर पसर गया। ये अनाहत आनद की सतान हैं! इनमें आशका नही है, उद्वेग नही है, दुश्चिता और मृत्यु-भय नही है कि देश में मुगल-दंगा लगा है···जगन्नाथ चिलिका मे कहीं आत्मरक्षा करने आएंगे, ये समझते नही हैं। शायद ये चिताहीन सतरण और काकली को समझते हैं।

रामचद्र देव ने आह भर के चिलिका को देखा।

धीरे-धीरे मउसा—ब्रह्मपुर द्वीप दूर जल की सतह पर एक मगरमच्छ की पीठ की भाति उभरता-सा लगा। ओड़िसा के इतिहास के अनेक विपर्यय, विडबनाएं, नीच विश्वासघात और देश-द्रोह का लांछन उस नामहीन द्वीप पर अंकित था।

रामचद्र देव उस द्वीप की ओर इशारा करते हुए बोले—"कालापहाड़ ने पुरी पर आक्रमण किया है यह सुनकर परीछा दिव्यसिंह पट्टनायक ने जगन्नाथ को माणिक पाटना मुहाने से नाव पर पहुंचाया था और इसी द्वीप पर पाताली किया

दशम परिच्छेद

1

आज नवमी है। कल बाहुडा यात्रा। परसों अधरपणा भोग। दूसरे दिन नीलाद्री-विजय। उसके बाद जगन्नाथ श्रीमंदिर को प्रत्यावर्त्तन करेंगे और रथ-यात्रा महोत्सव समाप्त हो जाएगा।

पर उसके बाद!

रामचंद्र देव के मुखमंडल की रेखाएं कठोर हो गयीं। भौंहें संकुचित हो गयीं। आंखें दूर के सातपड़ा द्वीप के सरकंडे के वन की ओर प्रसारित हो गयीं।

अपराह्न के स्तिमित आलोक में दूरस्थ वनरेखा स्निग्ध कोमलता से प्रलिप्त होकर शांत लग रही थी। पुरवाई के शीतल स्पर्श से रामचंद्र देव के असंलग्न, अयत्न विन्यस्त केश ललाट और आंखों पर बिखरे पड़े थे। क्षौर कर्म के अभाव से मुखमंडल रूक्ष और मलिन लग रहा था।

सान परीक्षा विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र हथेली पर गाल टिकाए चिंतित मुद्रा में, चिलिका की अंतहीन अतल जलराशि को देख रहे थे। बीच-बीच में रामचंद्र देव को भी देख लेते थे, मानो उन्हें कुछ अनुत्तरित, अनुच्चारित जटिल प्रश्न अत्यंत उद्वेलित कर रहे हों, पर वे चुप थे।

बायीं ओर बरणकुदा द्वीप को छोड़ गुरुबाई द्वीप की दायीं ओर से होते हुए नाव उत्तर-पूर्व दिशा में बढ़ रही थी। सामने से पुरवाई बह रही थी इसलिए चिलिका की जलराशि फेनिल ऊर्मियों में पश्चिम की ओर प्रसारित हो रही थी। सामने से पवन का प्रतिकूल आघात तब तक लगा नहीं था, इसलिए नाव स्वच्छंद गति से चल रही थी। पर अब कठिनाई होगी। जगुनि कमर से सिर तक आंदोलित करके दोनों हाथों से नाव खेता जा रहा था जिसके कारण उसकी बाहों की पेशियां चिलिका के जल की भांति फूल गयी थीं।

चिलिका निर्जन थी। मछुवारों की नावें तट पर पहुंच चुकी थीं। जगुनि ने

मुड़कर देखा, कालिजाई पहाड़ पर सूर्य ढलने लगा था। चिलिका के जल को दो भागों में विभक्त करके अस्त होने वाले सूर्य की किरणें एक रेखा मे पड़ रही थी, किसी सौभाग्यवती की माग की सिंदूर-रेखा की भाति। पूर्व दिशा मे पक्षियों का दल नीड़ों को लौट रहा था।

वही उत्पीडक प्रश्न, जो रामचद्र देव ने अपने आपसे बारंबार पूछा था और जिसका उत्तर उन्हें मिला नही था; फिर से उन्हे आंदोलित करने लगा।··· "उसके बाद?"

वरुणकुदा द्वीप का वन एक न टूटने वाली रागिनी की भांति अटूट था, जिसमे विराम नही था। रामचंद्र देव उसी गहन अरण्य को देखते हुए उसकी दुर्भेद्यता की कल्पना कर रहे थे। मुगल फौज सधान करते-करते यहा तक पहुंच सकेगी या नही वे इसी प्रश्न पर एक दक्ष सेनापति की निपुणता से सब ओर से सोचते हुए समीक्षण कर रहे थे।

खस और ऊंची समुद्री घास जगह-जगह चिलिका के जल पर पसर आई थी। जिस जगह घास चिलिका के जल को स्पर्श कर रही थी वहा मानो शांति और सतोष का नीड़ निर्मित हो गया था। एक अकेला ताड़ का पेड़ उस जगह के जाग्रत पहरेदारो की भाति खड़ा था और वहां की अनाहत प्रशांति और छाया घन रहस्य को सुरक्षित बनाये हुए था।

काली गउडुणी पक्षियों का एक दल सातपड़ा द्वीप की ओर से उड़ आया और छायाच्छन्न चिलिका जल पर पसर गया। ये अनाहत आनंद की संतान हैं! इनमें आशका नही है, उद्वेग नही है, दुश्चिता और मृत्यु-भय नही है कि देश मे मुगल-दगा लगा है···जगन्नाथ चिलिका मे कही आत्मरक्षा करने आएगे, ये समझते नही हैं। शायद ये चिताहीन संतरण और काकली को समझते हैं।

रामचद्र देव ने आह भर के चिलिका को देखा।

धीरे-धीरे मउसा—ब्रह्मपुर द्वीप दूर जल की सतह पर एक मगरमच्छ की पीठ की भांति उभरता-सा लगा। ओड़िसा के इतिहास के अनेक विपर्यय, विडंबनाएं, नीच विश्वासघात और देश-द्रोह का लाछन उस नामहीन द्वीप पर अंकित था।

रामचद्र देव उस द्वीप की ओर इशारा करते हुए बोले—"कालापहाड़ ने पुरी पर आक्रमण किया है यह सुनकर परीछा दिव्यसिंह पट्टनायक ने जगन्नाथ को माणिक पाटना मुहाने से नाव पर पहुंचाया था और इसी द्वीप पर छिपाया किया

था। पर भंडारी का दाणपाहाता सिंह सपनों में सामंत से कालापहाड़ को गाड़ दिखाकर यहाँ से आया था। कालापहाड़ जगन्नाथ का ठौर पाकर उन्हें हाथी पर लादकर गौड़ शहर पर ले गया था। दाणपाहाता सिंह को विश्वासघात के पुरस्कार स्वरूप पोटा जिरिमा, पश्चिम कुद और गाहीन इलाकों की जागीर के साथ पाहाता सिंह की पदवी मिली थी···आज भी तो वंश पाहाता सिंह है जो शत्रुओं से हाथ मिलाकर ओड़िशा के सौभाग्य को छिन्न-भिन्न करके भोगकर रहे हैं।

क्या उन्हें शान्ति नहीं देंगे जगन्नाथ ?

दल बांधकर पक्षी मउसा-ब्रह्मपुर की ओर उड़े जा रहे थे। गोधूलि के अरुण आलोक से चिलिका रक्ताभ हो गई थी। रथयात्रा के बाद दक्षिण से आये अनेक यात्री माणिक पाटना घाट पार करके तडाकिनार होते हुए लौट रहे थे। जगह-जगह चींटियों की धार-सी लंबी कतार, कहीं-कहीं एकत्र जन-समूह, आसन्न सन्ध्या के अरुणाभ मलिन आकाश की पृष्ठभूमि पर छाया-चित्रों की भांति लग रहा था जो छवि धीरे-धीरे अस्पष्टतर होती जा रही थी।

रामचंद्र देव मन ही मन अपने आपसे कह रहे थे···"आज नवमी है, कल छोड़ परसों अधरपणा भोग, उसके बाद नीलाद्री विजय, पर उसके बाद ?"

फिर वही उत्पीड़क प्रश्न मन में उठता था।

पर सान परीछा विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र चिलिका के जल को अपलक आंखों से देखते हुए कुछ और ही सोच रहे थे। इस अथाह जल का भी जीवन है, हृदय है, भावना है—पर इसका परिचय इस उर्मिचपलता में मिलता नहीं। सात ताल पानी में वह रहस्यमय जीवन और हृदय प्रच्छन्न रूप से है, मनुष्य के मन में शत-शत चिंताओं और भावनाओं की भांति। उन्हें आंखों से देखा जा सकता··· यदि अपने प्रतिवेशी मनुष्य के हृदयस्थित रहस्यों का उद्घाटन हो पाता !··· रामचंद्र देव क्या सोच रहे हैं ? सान परीछा ने रामचंद्र देव को देखा।

रामचंद्र देव ने स्वप्न से जागने की तरह पूछा—"अब इसके बाद !"

सान परीछा इस रहस्यमय प्रश्न के तात्पर्य को हठात् नहीं समझ सके। वे बोले—"मउसा ब्रह्मपुर टापू पर अब भी जगन्नाथ की वह जगति है।"

जगुनि उनकी बातों को सुन रहा था। अब नाव के दिशा परिवर्तन हो जाने के कारण खेना पहले से आसान हो गया था।

जगुनि बोला—"पुरी से लौटते हुए यात्री रसकुदा घाट से मउसा-ब्रह्मपुर चलते

हैं। मैं अभी आप लोगों के साथ भटक रहा हू, नही तो यात्रियो को लाने-ले-जाने के लिए भी मुझे फुर्सत कहा मिलती।"

विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र जगुनि के पास ही नाव पर बैठे थे। वे आदर से जगुनि की पीठ सहलाते हुए बोले—"इसके लिए चिंता मत कर। तेरा कोई नुक्सान नही होगा। यात्रियो से जो पैसे तुझे मिलते हम उससे कही अधिक देंगे। फिर किसी से यह भूलकर भी नही बताना कि हम गुरुबाई टापू पर गये थे।"

जगुनि ने सिर हिलाते हुए गभीर स्वर मे उत्तर दिया—"मैं क्यो किसी को बताने जाऊगा। मैं जगन्नाथ का द्रोही नही बनूगा तुम से पैसे मिलें या न मिलें…।"

रामचंद्र देव ने जगुनि को आतरिकता से देखा। कई दिनो से वह नाव लेकर उन्ही के साथ चिलिका मे भटक रहा है। इसमे न उसकी क्लाति है, न अस्वीकार है और न है परिश्रम कातरता। जगुनि के प्रति रामचंद्र देव का हृदय श्रद्धा से स्निग्ध हो उठा। उन्होंने जगुनि को देखकर पूछा—"अरे जगुनि, मैंने तुम्हे कही देखा है। पर ठीक से याद नही पडता।"

जगुनि का स्वर अभिमान से भर गया। उसने नाव को तेज गति से चलाते हुए कहा—"आप बड़े आदमी है; राज्य के राजा। हम क्या है आपके आगे। आप क्यो याद करेंगे!"

रामचंद्र देव ने विस्मित स्वर मे पूछा—"तुझे कैसे पता चला कि मैं राजा हूं!"

जगुनि रामचंद्र देव को गौर से देखकर कहने लगा—"अरे, मैं आपके पास अपनी सरदेई से पत्र लेकर बालूगांव से गया नही था खोर्धा गढ को?"

रामचद्र देव उलझ आये केशो को सुलझाने लगे। विस्मृति की ओट से धीरे-धीरे रामचद्र देव की आखों के सामने जगुनि की परिचित मूर्ति उभरने लगी। यही लड़का उस दिन वेणु भ्रमरवर द्वारा लिखित ललिता महादेई के नाम पत्र लेकर खोर्धा पहुंचा था। एक मंत्र-पूत कवच की भाति उस पत्र ने एक बड़ी भारी विपत्ति से और दुर्योग से रामचंद्र देव की रक्षा की थी। इसी की किसी सरदेई ने उस पत्र को बालूगांव की किसी सराय में बक्सी के पाइकों से चालाकी चुराकर इसके हाथ भेजा था। कौन है यह सरदेई? कहा है वह सराय? बालूगांव की वह सराय छोड़कर यहां क्यो है जगुनि? यहा इस चिलिका पर क्या

करने आया है ? वे सारी बातें उन्हे प्रहेलिका-सी लग रही थी। पर उस उपकारी पुरस्कार-प्रत्याशाहीन बालक को अभी तक पहचान नही सके थे इसलिए रामचंद्र देव मन ही मन लज्जित हो रहे थे।

सतपड़ा और मउसा-ब्रह्मपुर के बीच चिलिका एक परीखा की भाति है यह परीखा माणिक पाटना से हरचडी नदी के खालकाटि पाटना मुहान तक लबी है। इसके दोनो ओर गहन अरण्य है। इसके किनारो पर एरा पक्षियो के दल के दल उतरे आ रहे थे। अस्त सूर्य की अंतिम अरुण किरणों ने उनके डैनों पर अबीर बिखेर दिया था। कुछ जलसारस रामचंद्र देव के ऊपर आकाश मे चक्कर काटते हुए उड़ रहे थे। काफी पीछे गुरुबाई द्वीप रह गया था। वरुणकुदा द्वीप और दिखाई नही पड़ रहा था। कालिजाई पहाड़ पर भी जैसे कोई अधकार का पर्दा डालने लगा था।

सामने माणिक पाटना मुहाना अनिश्चित अंधकार की भाति रहस्यमय लग रहा था। चिलिका की लहरें मुहाने की निकटता के कारण अधिक उद्वेलित थी। लहरो के घात से नाव भी अधिक आंदोलित हो रही थी।

जगुनि ने दोनों बाहो से डाड पकडकर नाव को काबू मे लाते हुए तडाकिनार के रमकुदा घाट की ओर उंगली उठाकर इशारे से बताया…"वह…हमारी सराय है। वह जो झाऊ के पास चिलिका तटपर कोई खडा-सा दिखता है, हो सकता है मेरी सरदेई हो !"

तडाकिनार पर सरदेई की सराय आकाश से गिरे एक गहन अधकार के एक टुकड़े-सी लग रही थी।

रामचद्र देव ने उधर से दृष्टि हटा ली और जगुनि से पूछा—"तू सरदेई से भी इसके बारे मे बात नही करता है न ! कही यह तो नही बता रहे हो उसे कि तुम हम लोगों के साथ चिलिका मे घूमते हो ? इस बात का किसी को भी पता नही लगना चाहिए !"

जगुनि ने सर हिलाया। बोला—"नही !" फिर कुछ देर चुप रहकर बताने लगा, "सरदेई बहुत जोर देकर पूछती है। पर मैं इधर-उधर की और बातें करके टाल जाता हूं। मैं जगन्नाथ का द्रोही कैसे बनू ? मुझ पर वह गुस्सा भी होने लगी है। होने दो।"

कल रात भोर होते-न-होते जब जगुनि गुरुबाई को नाव ले जाने के लिए घर

से निकलने लगा तो सरदेई रास्ता रोककर खडी हो गयी। रोती-रोती कहने लगी—"तू पागलों की भांति कहां जाता है रे जगुनि ! तुझे मेरी कसम। बता न मुझे साफ-साफ।

सरदेई शंका कर रही थी। यात्रियों को लूटने के लिए या गजा बदरगाह की ओर चलने वाले बोइतो पर आक्रमण करने के लिए तडाकिनार मे जगह-जगह जो डकैत हैं जगुनि उनके साथ मिल गया है। ऐसा है क्या ? तडाकिनार की कुछ दूरी पर उत्तर दिशा मे नृसिंह पाटना के दक्षिण और कलावंत गुफा है, तंडा-किनार के दक्षिण मे जगाई-माधाई गुफा है, गजागड की सीमा से सटी हुई। वहां डकैत असहाय यात्रियों को लूटते हैं। बोइतों पर चलने वाले साधव और फिरंगी नाविकों पर हमला करके उनके धन-जीवन वे जिस तरह लूटते हैं उसकी कई दिल-दहलाने वाली कहानियां सुनी हैं सरदेई ने। डकैत कभी-कभार सरदेई की सराय तक भी आ जाते हैं शिकार की तलाश मे। पर सरदेई ने उनको धर्मपिता, मामा, भाई आदि बनाकर मंत्रमुग्ध सापों की भांति अपना बना लिया है। वे उसकी सराय मे आते हैं, लूटी हुई रकम का बटवारा करते हैं और शराब पीते हैं। झगड़ पड़ते हैं तो सरदेई फैसला कर देती है। वे उसकी मानते भी हैं। वैसा दिन आए तो जगुनि उन्हीं की बातें करता रहता है। इसी से सरदेई को शंका है। वह सोचती है कहीं उन्हीं के साथ जगुनि भटक तो नहीं रहा है !

···पर जगुनि सरदेई की सारी कसमें टालकर चुपचाप चला आया। माणिक-पाटना के आकाश पर प्रभात तारा आग की भांति चमक रहा था। तब तक जलसारसों की नींद नहीं टूटी थी। सरदेई पीछे से पुकारती हुई कहने लगी—"देख जगुनि, पुरी से लौटने वाले यात्रियों की भीड़ लगेगी अब। मैं अकेली यहां क्या कर सकूंगी···?" सरदेई का स्वर जैसे आंसू से भर आया था। पर उस समय जगुनि तेज कदमों से चल रहा था रसकुदा गांव की ओर।

शायद वही सरदेई उस उजाड़ घाट पर खड़ी ढलते दिन की अंतिम किरणों मे रंजित चिलिका जल को देखती हुई जगुनि की प्रतीक्षा कर रही थी।

रसकुदा घाट धीरे-धीरे एक मोड़ पर छिप गया। संध्या हो आयी थी। मगरमच्छ के खुले मुंह की भांति दो टुकड़े बादलों के बीच नवमी का मलिन चांद उग आया था।

अरखकुदा फिर भी दूर है। माणिक-पाटना मे नाव से उतरकर घोड़े पर चलना है।

विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र ने अपने मन की निरुद्ध भावना को हठात् प्रकाशित किया और कहने लगा—"छामु आशका कर रहे हैं। पर मुझे नही लगता कि तकीखा श्रीक्षेत्र पर हमला करेगा।"

रामचद्र देव ने चिंतित स्वर मे पूछा—

"इस अनुमान का कोई कारण तो होगा ?"

विष्णु महापात्र बोले—"पहली बात तो यह है कि जब तक मुर्शिदाबाद मे सुजाखा है तब तक जगन्नाथ के प्रति जो उदार नीति अपनायी जाती थी, वह रहेगी।"

"पर वही सुजाखा जब कटक मे नायब-नाजिम बनकर आया था तब मुगल शासन की स्थिति संकटापन्न नही हुई थी या जगन्नाथ को लेकर ओड़िसा की राजनैतिक एकता बढ नही रही थी।"

महापात्र ने बताया—"यह अवश्य सच है। पर दीर्घ समय तक ओडिसा के पाइको ने मुगल-शक्ति के विरुद्ध लडाई की है, जिससे वे थक गये है। तकीखा यह भी जानता है जिससे वह अब उनसे डर नही रहा है।"

रामचंद्र देव शात पर दृढ कठ से इस युक्ति का खडन करते हुए कहने लगे—

"मैं सहमत नही हो सकता। इसके अलावा और भी कोई कारण है क्या ?"

विष्णु महापात्र ने बताया—"जगन्नाथ यात्रियो से जजिया के जरिए जो मिलता है वही मुगल राजस्व का एकमात्र और प्रधान सूत्र है। तकीखा ने जिस दिन से जजिया लागू करवाया है उस दिन से सालाना नौ लाख रुपये मुर्शिदाबाद भेजे जा रहे हैं। इसके अलावा, इससे इजारेदार और अन्य कर्मचारियो को भी कुछ-न-कुछ मिलता रहता है। इसलिए जगन्नाथ को ध्वस करके राजस्व के उस लाभप्रद सूत्र को क्यो बंद कर देगा वह ?"

तडागिनार और माणिक-पाटना के बीच चिलिका की जलप्रणाली सकीर्ण है इसलिए प्रतिकूल स्रोत और लहरो का वेग बढ रहा था। साझ होते-न-होते ज्वार आरभ हो गया था। नौचालन के लिए वह मुहाना विपदपूर्ण था। जगह-जगह जल-भौंरियां हैं जिनमे फंसकर नाव के डूबने का डर बना रहता है। इसलिए परिचित और अभ्यस्त नाविको के अलावा उस रास्ते मे नाव ले चलने का साहस

कोई नहीं करता। पर जो उस तूफान रास्ते के अभ्यस्त हो गये हैं वे दूर से भौंरियों की जगह नाव रोककर और किनारों से सटकर चलते हैं।

अचानक एक लहर के साथ ऊपर उठकर नाव नीचे गिर पड़ी। जगुनि ने 'जय मां कालिजाई' की ध्वनि लगायी और नाव को तंडाकिनार की ओर मोड़ लिया। इसके बाद नाव शांत लहरों के मृदु आघात से आंदोलित होती रही और स्थिर जल पर हंस की भांति चलने लगी। तंडाकिनार के बालू प्राचीर की उस ओर समुद्र के गर्जन में अन्य शब्द निश्चिह्न हो गये थे।

रामचंद्र देव बोले—"तकीखां एक ही तीर से दो शिकार करना चाहता है। श्रीमंदिर पर आक्रमण करके वह यह नहीं चाहता कि आय की एक निश्चित रकम बंद हो जाए। पर जगन्नाथ के पास पुनर्संस्थापित होने के फलस्वरूप खोर्धा को केंद्र मानकर जो राजनैतिक एकता ओड़िशा में पनपती जा रही है उसे अक्षत बनाए रखना भी वह नहीं चाहता। इसलिए अमीन चंद पुरी का नायब बनकर आ रहा है। वह हिंदू है, मुसलमान नहीं। इसलिए जगन्नाथ लांछित होंगे ऐसी आशंका नहीं है। पर इससे खोर्धा राजा जगन्नाथ की राज सेवाओं से वंचित हो गये और उस स्थिति में ओड़िशा के अन्य दुर्गपति और सामंत उनके अधिनायकत्व को स्वीकार नहीं करेंगे। और मैं अगर अमीन चंद का विरोध करूंगा तो मुझे खोर्धा सिंहासन पर से हटाकर भागीरथी कुमार को कठपुतली की भांति बिठाया जायगा। ऐसी खबर भी बाणपुर भेजी जा चुकी है। युवराज इसी तंडाकिनार होते हुए पुरी गये हैं। यह संवाद भी मुझे मिल गया है।"

चिल्का की जलराशि पर चंद्रालोक फैला हुआ था। फेनिल लहर और सोना-वर्त्त इस आलोक के महाप्लावन से लग रहे थे। पर उसी के समीप अथाह अंधकार भी था। चंचल जलसारस आशंका और उद्वेगहीन से मुक्त होकर आनंद के बुलबुलों की भांति आलोक अंधकार के उस महास्रोत में कभी उठकर और कभी गिरकर उड़ रहे थे।

रामचंद्र देव बोले—"अब तक मुगल फौजदार जगन्नाथ को लांछित कर रहे थे। पर अब वे अमीन चंद की तरह हिंदू कुलांगार के हाथों लांछित होंगे। पर तुम तो वहां अब उस लांछन को देखने के लिए नहीं हो। गौरी राजगुरु अगर इस कार्य में अमीन चंद का साथ देंगे तो इन्हें इनाम मिलेगा, जागीर मिलेगी। उन्हें प्रतिश्रुति मिली है। पर तुम वहां मान परीछा बनकर रह सकोगे इसकी संभावना

है क्या ? विद्रोहियों की सूची मे तुम्हारा नाम भी चढ़ चुका होगा।"

सान परीछा विष्णु महापात्र उम्र मे युवक हैं और उनमे ओडिआत्व का सर्वाधिक अभिमान है। जगन्नाथ और श्रीमंदिर के साथ उनका गर्व स्मरणातीत परंपरा पर प्रतिष्ठित है। अतीत मे उनके पूर्वजों ने जगन्नाथ को मुगलों द्वारा लांछित होने से बचाने के लिए निर्भयता और अतिसाहस का परिचय दिया था। उन सारी स्मृतियो का और अभिमान का उद्बोधन उनकी रग-रग मे ध्वनित हो रहा था।

कुछ ही दूरी पर मुहाना था। आलोक के महाप्लावन मे जैसे सारी दिशाएं और पथ खो गये थे। जगुनि तटाकिनार का तट छोडकर माणिक पाटना की ओर बढ़ने लगा।

पास ही एक जलभौंरी अपनी परिधि का विस्तार करके चांदनी मे क्रमशः फैल गयी थी उसके गर्भ मे निस्तरग स्तब्धता थी। जलघूर्णी की सारी गति और चपलता जैसे अकस्मात् स्तब्ध हो गयी थी। पर उसके अंदर जाते ही नाव चक्राकार-सी घूमने लगी। 'जय मा कालिजाई' पुकारते हुए जगुनि पतवार पकड-कर नाव को मोड लेने की चेष्टा करता रहा पर जलभौंरी के केंद्र मे जो अथाह गह्वर था वह धीरे-धीरे प्रसारित हो रहा था। नाव उस तक पहुच जाए तो किसी भी अवस्था मे बचना असभव था।

अचानक पीछे लौटने वाली एक लहर के आघात से नाव तटाकिनार की ओर हट गयी।

सान परीछा ने आह भरी और अस्फुट स्वर से उच्चारण किया—"जय मा कालिजाई।"

जगुनि ने पतवार छोड दी, बोला—"ज्वार जब तक नही छूटता, नाव को तब तक बढाना ठीक नही होगा।"

रामचद्र देव सम्मोहित से उस घूर्णी को देख रहे थे। नाव पर पडी लग्गी को उठा कर सान परीछा से बोले, "तुम पतवार सभालो मैं नाव को मोड लेता हू।"

जगुनि नाव के किनारे पर बैठकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा—"जय मा कालिजाई !"

परिणाम की उपेक्षा करते हुए उन्मत्त की भांति रामचद्र देव ने नाव को फिर आगे बढा लिया। मृत्यु-गर्भा जलघूर्णी के उस भयकर गह्वर की ओर नाव एक मुग्ध राजहंसी की भाति बढ़ने लगी।

2

माणिक पाटना मुहाने के पास जिस समय रामचंद्र देव चिलिका की लहरों के क्रुद्ध आक्रमण और जल भौंरी की कराल भ्रुकुटी के साथ लड़ रहे थे और अरख-कुदा घाट की ओर नाव ले जाने की चेष्टा कर रहे थे तब पुरी चुड़ंग साही में सुना माहारी के कोठे पर एक कक्ष में मखमली गद्दी पर मसनद के सहारे लेटे-लेटे अमीन चंद सुरा-स्पंदित स्वर से भागीरथी कुमार को सभाषित कर रहे थे—"आइए, आइए—पधारिए कुमार ! पर आपने विलंब कर दिया। आप समय पर नहीं पहुंचे, इसलिए धर्मच्युत खोर्धा राजा ने जगन्नाथ के रथ पर छेरा-पहरा किया। पर इस कार्य ने प्रत्येक धर्म-प्राण हिंदू हृदय पर आघात किया है, हिंदू धर्म की मर्यादा तक को आहत किया है।"

सुना माहारी अमीनचंद के समीप ही बैठी पान बना रही थी। उसकी काजल चर्चित आखें अवश्य पानदान पर निबद्ध थी पर वक्र भ्रू-लताओं के नीचे उसकी सस्मित दृष्टि भागीरथी कुमार के नयनों के साथ आख मिचौनी खेल रही थी। यह अनुभव अन्ततः भागीरथी कुमार को हो रहा था। सुना माहारी जानती थी कि उसकी आकर्ण विस्तृत आयत आखों की अग्नि शिखा में भागीरथी कुमार की भांति अनेक चपल, प्रमत्त पतंगों ने आत्माहुति दी है। भागीरथी कुमार भी अनग के उस मधुर आमंत्रण को अस्वीकार नहीं कर सकेंगे।

वास्तव में भागीरथी कुमार को पुरी पहुंचते-पहुंचते देर हो गयी थी। अमीन-चंद को कैफियत के रूप में कुछ भी कहा जा सकता है। पर वे ललिता महादेई को क्या कहेंगे ! यह सोचते ही उनका मुखमंडल मलिन हो जाता था। मालुद के फौजदार ने उन्हें कंदानदी के पास रोका नहीं होता तो शायद वे यथा-समय पुरी पहुंच गये होते और उन्हीं के द्वारा राज-कार्य की विधियां भी शायद संपादित हुई होतीं। पर तंडा किनार की सरदेई की सराय से मुक्त होकर आने में भी तो दो दिन बीत गये। उसका कोई समुचित उत्तर देना उनके लिए संभव नहीं था। उस दिन भोर से जैसा झड लगा रहा था, मान-भरी आंखों की भांति जिस तरह आकाश पर बादल घिर गया था; झंझा के कारण जिस तरह सराय से बाहर आना असंभव-सा हो गया था···यह सब देर के कारण बन सकते हैं। पर इन

सामान्य और तुच्छ अवरोधो को लांघकर आना जिस आदमी के लिए असंभव है उसके लिए राज सिंहासन की आकांक्षा भी दुराशा मात्र ही है !

यथा समय भागीरथी कुमार पुरी नही पहुच सके,यह अपराध ललिता महादेई के विचार मे कभी भी एक क्षम्य अपराध नही हो सकता।

सुना माहारी तरंगायित भंगिमा मे उठकर कक्ष के बाहर चली गयी। लगा यह व्रीडा या संकोचवश चली गयी। पर गुरु नितंबिनी सुना माहारी ने मदमत्त हस्तिनी की भाति अनेक हृदय के कमल वनो को दलित किया है—यह सूचित कर देना भी तो उस चंचल आदोलित अगलता का अभिप्राय हो सकता है। शायद अपने अनिंद्य रूप-लावण्य और उस सौंदर्य की सम्मोहिनी शक्ति से भागीरथी कुमार को परिचित कर देने की इच्छा से वह उठकर चली गयी। नहीं तो उसके सुविन्यस्त कुंतल से केतकी की सुगंधित पखुड़ी क्यो गिर जाती ? कक्ष के बाहर जाते हुए सुना माहारी ने ग्रीवा वक्र कर इस तरह क्यो देखा, जैसे व्याध मृग-शावक जालबद्ध हुआ या नही जानने को देखता है। अगो पर वस्त्र के झीने आवरण के नीचे धूनित यौवन की अद्भुत सुषमा से भागीरथी कुमार स्मर शराहत होने लगे थे।

सुना माहारी पुरी की प्रख्यात रूप जीविका थी। उसकी अन्य दो बहनें जगन्नाथ की देवदासियां थी जो अन्य सेवादासियो के साथ बड़सिंहार के पश्चात् मंदिर मे गीतगोविंद गायन करती थी। सुना माहारी की मा केतकी माहारी ने अपने यौवन मे कटक सूबे के नायब-नाजिम सुजाखां तक को वंसी मे फसी मछली की भाति तड़पाया था। सुजाखा का प्रीति भाजन बनने के लिए आए राजा जमींदार पहले वशंवदता का पूजा-सभार लेकर केतकी माहारी के द्वार पर प्रतीक्षा करते थे।

कहते हैं महाराज दिव्य सिंह देव की साधनासंगिनी यही केतकी माहारी थी। बालिसाही प्रासाद के साधना कक्ष मे केतकी माहारी के साथ दिव्य सिंह देव दिन के बाद दिन और रात के बाद रात अतिवाहित कर रहे थे।

दिव्य सिंह देव के पष्ठ अक मे एक बार सुजाखा ने श्रीमंदिर को ध्वंस कर देने के अभिप्राय से आक्रमण किया था। दिव्य सिंह देव ने आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए चंदनपुर के पास छावनी डाली थी। उस छावनी तक केतकी माहारी उनके साथ आयी थी। सुजाखा ने जब भार्गवी तट पर दिव्य सिंह देव की छावनी

पर अचानक आक्रमण किया तब वे वहा नही थे और उस परित्यक्त छावनी मे सुना माहारी जैसे मुजाखा की प्रतीक्षा कर रही थी। सुजाखां को देख केतकी माहारी ने कोरनिश किया और मौन आनत नेत्रों से देखती हुई खड़ी रही। वह बायें पैर के अंगूठे से भूमि पर रेखाएं खीच रही थी। उस पैर के संचालन के अलावा उसके अन्य सब अंग स्थिर थे।

सुजाखां ने दायें हाथ से केतकी के तिल-चिह्नित चिबुक को उठाते हुए पूछा था—"तुम ही खोर्धा राजा के सेनापति हो ?"

केतकी के आरक्त मुखमडल पर किंचित मात्र भय का स्पर्श नही था। प्रत्युत्तर में केवल मुस्करा दी और उसने सुजाखां के हाथ से चिबुक हटा लिया। फिर मौन ही खड़ी रही।

उसके बाद मुजाखां ने नाटकीयता के साथ म्यान समेत तलवार को केतकी के पैरो मे रखते हुए एक बार सस्मित दृष्टि से उसके नवीन पुष्प की भांति कमनीय मुखमंडल को देखा। बोला—"ठीक है हम लड़ाई के बिना ही आत्म-समर्पण करते हैं।"

उसी बीच अवसर पाकर दिव्यसिंह देव ने श्रीमंदिर से विग्रहों को स्थानांतरित कर दिया था। उसके बाद सुजाखा के समय पुरी पर और आक्रमण हुआ नही था।

केतकी माहारी की कन्या सुना माहारी भी हृदय-विदारक सौंदर्य की अधिकारिणी थी। पुरी से कटक और मुर्शिदाबाद तक चारों ओर उसके रूप की जय-जयकार थी।

सुना माहारी चली गयी थी। पर भागीरथी कुमार की मुग्ध चेतना मे उसके पायलों की झंकार नीरव नही हुई थी। कक्ष के बाहर से कभी-कभी उसकी चूड़ियों और पायल की मधुर ध्वनि मर्म-संगीत की भांति गुंजरित हो रही थी। भागीरथी कुमार जैसे उस मर्म-संगीत को सुनने के लिए उत्कर्ण हो बैठे थे। अमीन चंद की आखें अर्ध निमीलित थी। शायद वे कुछ सोच रहे थे। इसी बीच भागीरथी कुमार ने सुना के कुंतल से गिरी केतकी की पखुड़ी उठा ली थी और उसे सूघते हुए तिल-तिल करके मखमली गद्दी पर बिखेर रहे थे। वे मन-ही-मन तंडा किनार की सरदेई की सजल आखों के साथ सुना माहारी की आखों की तुलना कर रहे थे। छायाच्छन्न चिलिका के घन-नील जल की भांति प्रशांत थी

सरदेई की आखें जिनकी अथाह गंभीरता में निमज्जित हो जाने की अभिलाषा जागती है···पर सुना माहारी की आखें? इन हास्य विलोलित आखो मे स्रोत की चचलता है, अस्थिरता से संतरण करने का आमत्रण है।

अमीन चद ने आखें खोली और भागीरथी कुमार की उपस्थिति के प्रति सचेतन हो गये। कापते स्वर मे उन्होने फिर से दोहराया—"आपने विलंब कर दिया है कुमार!"

भागीरथी कुमार ने अकारण हसते हुए बताया—"आप तो जानते हैं आपके मालुद फौजदार ने क्या किया? हम कंदानदी पार कर रहे थे कि उसके चौकीदारो ने हमे रोक लिया। नही तो हम यहा कब के आ पहुंचते।"

कक्ष के बाहर सुना माहारी की चूडिया फिर से झकृत हो उठी। भागीरथी कुमार की चंचल दृष्टि उस ओर मत्रमुग्ध की भाति खिच गयी। अमीन चंद ने भी आखें अर्ध निमीलित करके मुग्ध नीरवता से उस ध्वनि को सुना। उसके बाद पास रखे हुक्के को गुडगुडाते हुए बोले—"मालुद का बद्तमीज फौजदार बेवकूफ है। इसलिए नायब-नाजिम बहादुर उस पर काफी नाराज हुए हैं। पर आप सदर रास्ते से नही आकर उस रास्ते से क्यो आ रहे थे?"

भागीरथी कुमार अप्रतिभ से हसे और उन्होने उत्तर दिया—"खोर्धा के रास्ते पर हर घाटी मे भी तो हाशिमखा के लश्कर तैनात किये गये थे, जो हमे कैद कर लेते!"

असल बात की शुरुआत कैसे हो, यही सोच रहे थे अमीन चद। अस्पष्ट हुंकार के साथ हुक्के की नली को नीचे रखते हुए गला साफ करके अमीन चद कहने लगे—"ऐसी आशका करना आपके लिए ठीक नही है। आज खोर्धा मे आपके अलावा और कोई भी तरीका नायब-नाजिम बहादुर की खुशनजर मे नही है। हाशिमखां ने बाणपुर पर हमला किया था, यह सच है। पर उसमे गद्दारो को सजा देने के अलावा और कोई दूसरा मतलब नही था। वह आपको क्यो कैद करता?"

पर उस समय भागीरथी कुमार की भावना उस सारी कूटनैतिक तुच्छता से हटकर अन्तःपुर चारिणी सुना माहारी पर केंद्रित थी। वे सुना माहारी के जूड़े की बेनरी की पगुड़ी के अवगैर को चरा रहे थे। अमीन चद बोले—"यह समझ मे कुमार साहब, खोर्धा की राजगद्दी पर आपको बिठाने के लिए नायब-नाजिम

बहादुर व्याकुल हैं। आप गलत न समझें उन्हें।"

खोर्धा सिंहासन के लिए भागीरथी कुमार की आकांक्षा अनेक दिनों से ललिता महादेई के प्रोत्साहन के कारण प्रवर्धित हो गयी थी। महाराज रामचंद्र देव के प्रति अहेतुक घृणा से उनका हृदय विषाक्त हो चुका था—यह सच है पर अपने पिता को सिंहासन पर से बहिष्कृत करके खुद उस पर अधिकार करें यह भावना तक उन्हें अस्वस्तिकर लग रही थी। इस भावना को उन्होंने कभी भी ललिता महादेई के आगे व्यक्त करने का साहस नहीं किया था, जिसे अमीन चंद के आगे प्रकाशित करने में उन्हें कोई असुविधा नहीं थी। वे बोले—"पर महाराज के रहते मैं कैसे सिंहासन पर बैठूगा ?"

सलाह का सही असर नहीं पड़ रहा था यह देख अमीन चंद अवश्य कुछ नाराज हुए। बोले—"आप किसे महाराज कहते हैं कुमार ! आपके पिता ने यवनी से शादी करके हिंदू धर्म का त्याग किया है। मुक्ति मंडप सभा की एक अन्यायपूर्ण निष्पत्ति के अनुसार उन्हें छेरा पहरा करने का अधिकार मिल जाने पर भी उनके लिए श्रीमंदिर का प्रवेश निषिद्ध है। मंदिर के अंदर वे कुछ भी नहीं कर सकते।"

भागीरथी कुमार को अमीन चंद की सलाह प्रभावित नहीं कर रही थी। वे पूर्ववत् केतकी की पंखुड़ी के अवशेष को दांतों से नोंचते हुए मुना माहारी की चूड़ी और पायल के स्वरों को सुनने के लिए आतुर हो बैठे थे।

पुरी पहुंचकर अमीन चंद से गुंडीचा घर के पास मिलने के बाद से उनके प्रति एक वितृष्णा के कारण भागीरथी कुमार अत्यंत अव्यवस्थित हो रहे थे। अमीन चंद ने अवश्य अपनी ओर से उनके प्रति यथेष्ट सम्मान और सदिच्छा प्रकट करके अपनी शुभाकांक्षा दिखायी थी। फिर भी उनके साथ किसी प्रकार संपर्क-प्रतिष्ठा का अभिप्राय भागीरथी कुमार में नहीं था। पर इस बीच ललिता महादेई ने बाणपुर से एक स्वतंत्र वार्त्तावह के हाथ भागीरथी कुमार के नाम पत्र लिखा था, जिसमें लिखा था—"राजा अमीन चंद हमारे शुभाकांक्षी हैं। उनके बताए हुए मार्ग पर चलना। वे जो कहें उसी के अनुसार कार्य करना।"

भागीरथी कुमार ललिता महादेई के उस आदेश को शिरोधार्य मानकर गुंडिचा घर में राजकार्य संपादन के लिए अमीन चंद से आवश्यक परामर्श लेने आये थे। ये सारी मंत्रणाएं रामचंद्र देव के विरुद्ध षड्यंत्रपूर्ण होंगी यह उन्हें

मालूम था। पर अपने पिता के संबंध में एक अपरिचित के मुंह से कुत्साएं सुनने को वे प्रस्तुत नहीं थे।

भागीरथी कुमार अपनी प्रतिक्रिया प्रकाशित करके मौन हो बैठे थे। अमीन-चंद बोले—"हिंदू धर्मच्युत, जगन्नाथ की सेवाओं से वंचित, यवन हाफिज कादर का खोर्धा राजसिंहासन पर कोई अधिकार नहीं हो सकता, पर युवराज की हैसियत से आप ही खोर्धा के अधिकारी हैं। यह तकीखा की भी इच्छा है।"

भागीरथी कुमार कठोर दृष्टि से पीतल के दीपदान पर जल रहे निष्पंदित दीये की ओर देखकर बोले—"महाराज रामचंद्र देव तो अपनी इच्छा से धर्मच्युत नहीं हुए हैं। बलपूर्वक उन्हें धर्मच्युत किया गया है।"

अमीन चंद देर तक हुक्के की नली को होंठों से दबाए रहे।···फिर धुआं उगलते हुए बोले—"तो ठीक है, मैं महारानी ललिता महादेई को खबर कर देता हूं कि कुमार सिंहासन के अभिलाषी नहीं हैं। इसके बाद नायब-नाजिम बहादुर बेशक कोई दूसरा उत्तराधिकारी चुनेंगे। उनकी संख्या भी कम नहीं है। पर हाफिज कादर तो अब और सिंहासन के हकदार नहीं हैं। यह निश्चित बात है।"

पर बात-ही-बात में खोर्धा सिंहासन मुट्ठी से चला जाए इसके लिए भी भागीरथी कुमार तैयार नहीं थे। महारानी ललिता महादेई की दो रोष-कषायित विशाल आंखें भागीरथी कुमार के आगे उद्भासित हो उठीं। भागीरथी कुमार उद्विग्न कंठ से बोले—"खोर्धा सिंहासन के प्रति मेरी अभिलाषा नहीं है, यह मैंने कब कहा? महाराज ने स्वेच्छा से धर्मत्याग किया है, या बलपूर्वक धर्मच्युत हुए हों, चाहे जो भी हो, खोर्धा सिंहासन के लिये यही परंपरा है कि जो भी जगन्नाथ की राजसेवा करते हैं वही राजा कहलाते हैं। आज महाराज अगर राजसेवा अधिकार से वंचित हुए हैं तो सिंहासन पर भी उनका अधिकार नहीं रहा। हम ही वर्तमान एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। नायब-नाजिम बहादुर हमसे कैसे आंखें मूंद लेंगे!"

अमीन चंद ने भागीरथी कुमार को धीरे-धीरे रास्ते पर आते देखा। इसके लिए जो शर्तें पूरी होनी चाहिए वे उन्हें बता देने को वे प्रस्तुत होने लगे। श्रीमंदिर की परिचालना से भागीरथी कुमार संपूर्ण रूप से अपसारित किये जाएंगे, उस पर अमीन चंद का अधिकार रहेगा—यह दुर्मूल्य भागीरथी कुमार को देना होगा। यह सोचकर वे चुप हो गये और अनासक्त भाव से धुआं उगलने लगे।

गुना साहूकी के कोठे पर पहुंचा था। उसके ललाट पर मोती जैसी भांति पसीना टपक रहा था। पहने हुए वस्त्र जगह-जगह पसीने से भीग गये थे।

अमीन चंद समझ गये कि निश्चय ही कोई गंभीर संवाद लेकर यह व्यक्ति आया है। उन्होंने पूछा—"क्या बात है, तुम कौन आए ?"

पाइक ने बताया—"गोपुनिया ने खबर भेजी है कि खोर्धा के राजा कहीं लापता हो गये हैं। सिपाह नसीब, दारोगा तक को भी कुछ पता नहीं है। यही खबर लेकर मैं यहां आया हूं। वजीर मुस्तफा अलीखां ने आपके हुजूर में मुझे भेजा है।"

महाराज रामचंद्र देव के अन्तर्धान की आकस्मिकता के कारण चंद परीछा गौरी राजगुरु आदि अत्यन्त विस्मित हो उठे थे।

रामचंद्र देव के आकस्मिक अन्तर्धान होने की खबर सुन अमीन चंद भी चौंक पड़े। तो क्या रामचंद्र देव को उनके अभिप्राय की सूचना भी मिल गयी? रथ यात्रा के बाद रामचंद्र देव निर्वासित किये जाएंगे—कुछ लोग रथयात्रा के समय भी यही आशंका कर रहे थे। पर उनका प्रतिरोध करने से वे खोर्धा सिंहासन पर से भी निर्वासित होंगे और बंदी बनकर आजीवन रहना पड़ेगा—इन गुप्तरक्षित योजनाओं का पता कैसे लग गया? गौरी राजगुरु आदि अवश्य जानते हैं कि अमीन चंद रामचंद्र देव को पुरी क्षेत्र से छल-बल-कौशल से निर्वासित करने को सचेष्ट हैं। पर इसके अंतराल में जो षड्यंत्र गुप्त था उसका तकीखा के दरबार में भी अनेकों को पता नहीं था। इसलिए खोर्धा छोड़कर रामचंद्र देव अकस्मात् लापता हो जाएंगे इसका कोई संभाव्य कारण नहीं था।

गौरी राजगुरु ने बताया – "भीतरछो महापात्र, धनी पड़िआरी, सान परीक्षा विष्णु पश्चिम कपाट महापात्र और अन्य कई पति महापात्रों का पता भी नहीं मिल रहा है। कल अष्टमी की रात के बड़ सिंहार के बाद दइता पतियों का संधान लिया गया था। कल उन दोनों की पारी थी। कहीं भांग पीकर पड़े होंगे ऐसा सोचकर उन्हें ढूंढते रहे। भीतरछो महापात्र और धनी पड़िआरी भी नहीं हैं। उनके घरवाले बताते हैं कि सप्तमी की रात को वे गुंडिचा सड़क पर 'गोटीपुअ' नाच देखने गये थे। वहीं से लौटे नहीं हैं। सान परीछा को यह सब देखना चाहिए सेवक दिन-ब-दिन काबू के बाहर होते जा रहे हैं। सेवा-नीतियों में भी अनेक व्यतिक्रम होने लगे हैं। सान परीछा को ढूंढने पर पता चला कि वे भी घर पर

नही है। वे भी लापता हो गये हैं। उनके घरवालो को कुछ भी पता नही है।"

अमीन चद ने मन-ही-मन निश्चित कर लिया कि रामचंद्र देव शायद मराठों के साथ संपर्क स्थापन के लिए नागपुर गये है। मराठो ने अब बगाल के सूबे पर नज़र डाली है। ओड़िसा मे उनकी कोई प्रतिष्ठा नही है, पर रामचद्र देव ने उन्ही की सहायता से तकोखा को ओडिसा से विताडित करने की योजना बनायी है। और, उसी मतलब से उन्होने भास्कर पडित के पास वकील भेजा था। यह खबर सिवान नबीसो से मिली है। पर यह खबर किसी भी प्रामाणिक सूत्र के द्वारा समर्थित नही हुई है।

अमीन चद के नाम वजीर मुस्तफा अली ने चिट्ठी भेजी थी। पाइक ने उस मोहरबद चिट्ठी को जेब से निकाला और अमीन चद के सामने पेश किया।

वजीर मुस्तफा अली ने फारसी मे लिखी उस चिट्ठी मे सलाह दी थी कि अगर भागीरथी कुमार इस बीच पुरी पहुच जाए तो उन्हें शीघ्र ही खोर्धा भेज दिया जाए और सिंहासन पर बिठाया जाय। भागीरथ कुमार के राजा बनने के पहले विधियो के अनुसार जगन्नाथ के सामने साडी-बधन आदि कार्य विधिवत रूप से सपन्न हो क्योंकि जगन्नाथ के सामने साड़ी बाधकर आज्ञामाल प्राप्त होना ही खोर्धा सिंहासन पर अधिकार की स्वीकृति समझी जाती है।

चिट्ठी को यत्न के साथ जेब मे रखकर अमीन चद ने भागीरथी कुमार की ओर देखा। वह अपोगड, अव्यवस्थित चित्त, दुर्बलमति युवक खोर्धा सिंहासन पर अभिषिक्त होगा यह सोचते ही अमीनचद का हृदय भागीरथी कुमार के प्रति हठात् ईर्ष्या से भर गया।

अमीन चद मौन होकर कुछ पल के लिए आखें मूदकर सोचने लगे। पुरी श्री क्षेत्र पर अमीन चद के प्रभुत्व को जब तक भागीरथी कुमार स्वीकार नहीं कर लेते हैं, तब तक उन्हे खोर्धा सिंहासन पर बिठाए जाने से एक भी राजनैतिक और कूटनैतिक मतलब पूरा नही होगा। भागीरथी कुमार को खोर्धा सिंहासन मिल जाने के बाद हो सकता है वे उन्हे अस्वीकार करें, या उनका विरोध करें! उन्हे विचार सम्मत सिद्धातो से कही अधिक भावना ही नियत्रित करनी है। इसलिए इस सदर्भ मे पहले बड़ परीछा गौरी राजगुरु और बाणपुर से आए ललिता महादेई के प्रतिनिधियो से बात कर लेनी होगी। अमीन चंद ने बाहर खड़ी मुना माहारी की ओर देखा। उसके बाद भागीरथी कुमार से बोले—"आप यहा ठहरें कुमार।

हम कुछ ही देर के बाद लौट आएंगे। विलंब भी हो सकता है। विषय और समस्या का गुम्फन तो आप अवश्य ही समझ रहे हैं ?"

कक्ष के बाहर फिर सुना साहुरी के कंगन और पायल की झंकार गूंज उठी। अमीन चंद आदि सब उठकर चल दिये।

भागीरथी कुमार ने स्वर को यथा संभव कोमल और आवेगातुर करके पुकारा…

"सुना !"

पर कक्ष के बाहर ईषत् अधरात से सुना के पायलों की मद झंकार के गुंजन-अनुगुंजन के अलावा भागीरथी कुमार और कुछ नहीं सुन रहे थे। मानो वही उनके आकुल आह्वान का उत्तर था। अनेक आकुल आमंत्रण, आह्वान, नर्मनिवेदन के बाद कनक प्रतिमा-सी सुना निद्रातुरता का नाटक करती हुई, अलसाती, पीनोन्नत स्तनों को आंदोलित करती हुई आई। अमीन चंद आदि कुछ देर पहले चले गये थे और देर से लौटेंगे, यह सुना जानती थी। फिर भी वह असहाया नारी की निरीहता का नाटक करती हुई मान भरे स्वर से कहने लगी—"मुझे अकेली छोड़ राजा अमीन चंद कहां चले गये ? इस कोठी पर मेरे सिवाय और कोई नहीं है ?"

नायिका के परोक्ष आमंत्रण की ऐसी आलंकारिक रीति से भागीरथी कुमार परिचित थे। वे मुस्कुराते हुए बोले—"मुझे जो छोड़ गये हैं पहरेदारी के लिए।"

सुना ने मुंह फेर लिया। दीवार पर अंकित कांची यात्रा के समय के माणिक ग्वालिन और जगन्नाथ बलभद्र के चित्र को देखती हुई कहने लगी—"तुम तस्कर भी तो हो सकते हो। कैसे विश्वास करूं !"

भागीरथी कुमार हसते हुए बोले—"तस्कर अगर सुना(सुवर्ण) नही चुराएगा तो गृहस्थ कैसे समझेंगे कि उसकी कीमत क्या है ?"

सुना भागीरथी कुमार को मोहिनी दृष्टि से देखती हुई उन पर जूड़े से निकाल कर एक मुरझाया फूल फेंक कर मादक मोहमय स्वर से बोली, "हटो…जाओ !"

नारी जहां कल्याणमयी है वहा अश्रुमुखी विषाद की प्रतिमा बन जाती है, पर जहां वह ज्वालामय है वहा इस भांति लास्यमयी और रसमयी कामना की मूर्त्ति बन जाती है। तब वह नारी के लावण्य की उज्वल प्रतिमा नही, सौंदर्य की ज्वालामयी शिखा होती है। जहा वह छलनामयी है, वहा उसकी कुटिलता और

षड्यंत्र प्रवणता चपल मनोहर हास्य और विलोल दृष्टि में प्रकट होती है और वही चातुरी पुरुष को मुग्ध करती है, अंधा बनाती है, विभ्रमित करती है।

भागीरथी कुमार को तब तक वह विभ्रांत और सम्मोहित कर चुकी थी। उस समय सुना के लिये कुछ भी करने को भागीरथी कुमार तैयार से लग रहे थे।

प्रदीप के कोमल आलोक में चपकवर्णी सुना माहारी की यौवन-प्रमत्त अंगलता ज्वालामयी अग्नि शिखा-सी लग रही थी। अनमने भाव का अभिनय करती हुई वह एक अशोक कली को तोडते-तोडते स्वर में अपनत्व भर कर कहने लगी—"राजा अमीन चंद का कहा नही माना तुमने !…मैं क्यों तुम्हारी सुनू !"

राजा अमीन चंद ऐसा क्या कह रहे हैं जिसे भागीरथी कुमार सुनना नही चाहते ? उसके लिए तो वे सर्वथा तैयार हैं। सुना के मन की भ्रांत धारणा को दूर करने की इच्छा से भागीरथी कुमार बोले—"मैं जानता हूं कि राजा अमीन चंद मेरे एक मात्र शुभाकांक्षी हैं। वे जो कहेंगे मैं कैसे नही मानूगा उसे !"

मुस्कराती हुई, लजाती हुई, सुना पूछने लगी—"तब खोर्धा का राजा बनना क्यों नही चाहते तुम ?"

भागीरथी कुमार बोले—"कैसी बात करती हो तुम ! मुझे महारानी ने और किस लिए भेजा है ? पर सुना, झमेले भी अनेक हैं। तब खुशी के साथ कही घड़ी-दो घड़ी बिताना भी मुश्किल हो जाएगा।"

जूडे पर से एक जुही की माला खोल सुना माहारी बायी तर्जनी से घुमाती हुई अदा से कहने लगी—"काटे न हों…फूल ही फूल हो…ऐसा कही देखा है !"

जुही माला से आहत हो प्रदीप बुझ गया और सारा कक्ष अंधकार से भर गया।

अमीन चद देर से अकेले लौटे। उन्होंने गौर किया होता तो अवश्य देखा होता कि कक्ष मे ज्वलमान प्रदीप वही न था, बदल दिया गया था। भागीरथी कुमार अपने गाल पर अंकित क्षत चिह्न को छिपाने की चेष्टा कर रहे थे। पर उस समय वह सब देखने की अमीन चंद को फ़ुरसत नही थी। काफी तर्क-वितर्कों के पश्चात् बाणपुर से आए ललिता महादेई के प्रतिनिधियों ने अमीन चद की शर्तों को स्वीकार किया था। बड़ परीछा गौरी राजगुरु भी असम्मत नही थे। राजा अमीन चद के निर्देशो के अनुसार मदिर की परिचालना होगी। मदिर की

सारी राजसेवाओं को अमीन चंद संपादित करेंगे। खोर्धा के महाराज या उनके परिवार के सदस्य मंदिर में पारंपरिक रीति से आ सकेंगे। पर संक्रांति आदि उत्सवों के समय मंदिर शिखर पर महादीप के उठते समय केवल अमीन चंद के नाम की पुकार होगी। खोर्धा राजा के नाम की नहीं।

अमीन चंद क्लांत भाव से गद्दी पर लेटते-लेटते कहने लगे—

"आप तैयार रहें कुमार! "नीलाद्री विजय के दूसरे दिन खोर्धा सिंहासन पर आपका अभिषेक होगा।"

इस सुसवाद को सुन निर्बोध की भांति भागीरथी कुमार हंसने लगे।

3

आकाश पर चांद भासमान बादलों के पीछे बहता जा रहा था या चांद के पीछे-पीछे बादल बहते जा रहे थे, यह देखने में एक पहेली-सी लग रही थी। पर वह सब देखने को भागीरथी कुमार में एकाग्रता नहीं थी। काले बादलों की आड़ में जब चांद छिप जाता था तब पल भर के लिए उसकी पतली छाया से बड़ दांड ढक जाता था और बादलों के बंधन से मुक्त होकर जब आकाश के निर्मल स्रोत में चांद बहता चलता था तब सड़क के किनारों पर खड़े नारियल के पत्तों पर चांदनी हीरककण बिखेर देती थी। रात के पक्षी जाग जाते। बड़-दांड के दोनों ओर कंबल और चादर ओढ़ कर सोये यात्री चांदनी में निष्प्राण जड़ पिंडों की भांति लगते थे।

कल वाहुड़ा दशमी होगी। उत्सव देखने की आशा से आधे से अधिक यात्री पुरी में तब भी थे। वाहुड़ा यात्रा के बाद अनेक लौट जाएंगे। जो रह जाएंगे वे महाप्रभु की नीलाद्री विजय और द्वादशी के उत्सव के बाद लौटेंगे।

परसों अधरपणा एकादशी, दूसरे दिन द्वादशी और नीलाद्री विजय। नीलाद्री विजय उत्सव के बाद रथयात्रा समाप्त होगी। उसके बाद खोर्धा के राज-सिंहासन पर भागीरथी कुमार का अभिषेक होगा। महाराज वीर केशरी देव के नाम से विख्यात होकर नये अंक का आरंभ होगा द्वादशी के बाद।

वड दांड निर्जन था। चंद्रमा म्लान था और पवन पागल-सा लग रहा था। सुना माहारी के सम्मोहन से मुक्त होकर बालिसाही प्रासाद के जीर्ण विषाद-जर्जरित परिवेश को लौटना नही चाहते थे भागीरथी कुमार।

बड़ दाड पर यात्री दल के दल सोये पड़े थे। जिनकी आखों में नीद नही थी वे भजन गा रहे थे पर उनकी खंजड़ी के स्वर में भी नीद से बोझिल आखों का स्पर्श था, ऐसा लग रहा था।

बाहुडा यात्रा के लिए गुंडिचा मंदिर के पास कर्मव्यस्त सेवकों का कोलाहल बंद नही हुआ था। नवमी की रात्रि मे बड़ सिंहार के बाद बाहुड़ा रथ के खीचे जाने तक सेवकों को फुरसत ही नही मिलती।

कोठ सुआंसिआओ ने रथ पर चार बाधना आरंभ कर दिया था। आलोक की व्यवस्था करने वाली मशालो के उजाले से बड़ दाड का वह अश ईषत् आलोकित हो रहा था। मशालों के आलोक से दूर से तीनो रथ छायाचित्रो की भाति लग रहे थे।

शुक्ल वस्त्र राघव दास मठ मे समर्पित होने के लिए रथदांड पर घंट, शख, तुरी नाद के साथ आ रहा था। कुछ दइता उस छोटी-सी शोभा यात्रा के आगे-आगे चल कर आ रहे थे।

रथो पर चार बंधन कार्य समाप्त होते-होते भोर हो जाएगा। उसके बाद आरती होगी। उसके बाद सूर्य पूजा, द्वारपाल पूजा आदि के पश्चात् प्रात.कालीन पूजा में खिचड़ी-भोग होगा। इसी तरह की अनेक नीतियो के बंधन मे बंधे हुए महाप्रभु के सेवक नवमी की रात्रि को उन्निद्र होकर बिता रहे थे।

भागीरथी कुमार को अकस्मात् याद आया कि महाराज रामचंद्र देव कहीं अंतर्धान हो गए है। इसलिए कल बाहुडा यात्रा मे राजा अमीनचंद छेरा पहरा करेंगे। उसी शर्त पर भागीरथी कुमार को खोर्धा सिंहासन पर महाराजा के रूप मे स्वीकृति देने के लिए तकीखा के प्रतिनिधि के रूप मे राजा अमीन चद तैयार हुए हैं।

बाणपुर से आए जगन्नाथ परीछा पहले इस शर्त से असम्मत हो रहे थे। पर राजा अमीन चंद के छेरा पहरा करने से क्या बिगड़ जाएगा ? छेरा पहरा करना भी कौन-सा राजसुलभ महत् कार्य है ! जगन्नाथ परीछा निरर्थक बात बढ़ाना नही चाहते थे।

गुना माहारी के कोठे पर फिर यही आलोचना हुई थी। देर बाद अमीन चंद ने गौरी राजगुरु, वशी श्रीचंदन, जगन्नाथ परीछा के साथ आकर सिंहासन प्राप्ति की शर्तें बताई। उन्होंने बताया कि पुरी श्रीक्षेत्र पर भागीरथी कुमार का कोई अधिकार या कर्त्तव्य नहीं रहेगा। जगन्नाथ की पारंपरिक सेवाओं के अधिकार से वे वंचित होंगे। वह अधिकार राजा अमीन चंद का हो जाएगा। यह सब सुनकर भागीरथी कुमार उसका तात्पर्य नहीं समझ सके थे।

ललिता महादेई की ताडनाओं के कारण ही वे रथ पर छेरा पहरा करने के लिए पुरी आए थे। उनकी दृष्टि में यह कार्य एक इतर-जनोचित कार्य था। पर देर से पहुंचने के कारण वे अपने आप उससे मुक्त हो गए थे। अब महारानी को संतुष्ट करने के लिए जगन्नाथ के पास साड़ी बंधवाकर यथाशीघ्र बाणपुर लौट जाना चाहते थे। यहां गुना के साथ आकस्मिक मिलन, तंडा किनारे की सराय की सरदेई के साथ भेंट और उस पर खोर्धा सिंहासन प्राप्ति की प्रतिश्रुति आदि की अप्रत्याशितता से वे अभिभूत हो गए थे। जगन्नाथ के पास सामान्य राज सेवा के अधिकारों के लिए निरर्थक वितर्कों को बढ़ा कर राज सिंहासन प्राप्ति की संभावनाओं को वे खोना नहीं चाहते थे।

पर इन शर्तों को जगन्नाथ परीछा का मन पूर्ण रूप से नहीं मानता था। वे बोले—"यह कैसे संभव होगा? महाराज अनंगभीम देव के समय से यह विधि चलती आयी है। खोर्धा के राज सिंहासन पर किसी राजा का अभिषेक नहीं होता। श्री जगन्नाथ ही ओड़िसा के एक मात्र चक्रवर्ती सम्राट हैं। उनके सेवक के रूप में गजपति राजा शासन कार्य का संचालन करते हैं। सूर्यवंशी सम्राट कपिलेंद्र देव ने भी गंगा से गोदावरी तक ओडिसा राज्य विस्तार करके, 'वीर श्री-गजपति गौड़ेश्वर नवकोटि कर्णाटोत्कल वर्गेश्वर वीराधि वीरवर' आदि विरदावली से शोभित होकर भी श्री मंदिर के जय-विजय द्वार पर स्थापित शिलालेख में यह घोषित किया था—'तू जिसपर कृपा करता है, यह सिंहासन उसी का है।' यही है गजपति सिंहासन की परंपरा। राजा अगर सेवक नहीं बनेंगे तो उन्हें ओडिसा के सिंहासन पर महाराज के रूप में कौन स्वीकार करेगा? इसलिए भागीरथी कुमार उन अधिकारों को कैसे छोड़ देंगे?"

गौरी राजगुरु प्रदीप के मलिन आलोक में क्षुधित बाज पक्षी की भांति लग रहे थे।

इन सब परंपराओं के साथ अगर कोई सुपरिचित था तो वह गौरी राजगुरु थे। पर राजा अमीन चंद जगन्नाथ के पास राज सेवाओ का अधिकार प्राप्त होने पर उन्हें जिस तरह पुरस्कृत करने की आशा दिलाई गई थी उससे वे सम्मानित परपरा को भूल गए थे। वे बोले—"जगन्नाथ के पास राज सेवा का अधिकार गजपति राजा को मिला है यह सत्य है। पर यह तो जानी हुई बात है कि राजाओं की अनुपस्थिति में यह कार्य मुदिरथ करते हैं। फिर इन्हीं महाराजा के समय बक्सी वेणु भ्रभरवर ने यह कार्य किया है। अब राजा अमीन चंद करेंगे। इस छोटी-सी बात पर इतना वाद-विवाद क्यों? यह कोई बडी बात नही है जो आपको आकाश टूटता-सा लगता है। मुदिरथ अगर राज सेवा कर सकते हैं तो राजा अमीन चंद क्यों नही कर सकेंगे?"

जगन्नाथ परीछा ने उत्तर दिया—"राजगुरु महाशय, हमारे कहने से क्या होगा! नीलाद्री महोदयोक्त इद्रद्युम्न के प्रति ब्रह्म वाक्यों का स्मरण करें। उसी के अनुसार ये सारी विधिया प्राचीन काल से पालित होती आ रही हैं। मुदिरथ राज सेवा करेंगे ऐसा प्रतिष्ठित अधिकार उन्हे नही मिला है। इसके लिए मुदिरथ का सर्वशास्त्रविद होना आवश्यक है। उस पर उन्हे राज प्रतिनिधि के रूप में स्वीकृति मिलनी चाहिए—

वाक्य मे है—

"एवं महोत्सवं कुर्यात् पूजयांच रमापते
विधिमेतादृशं कर्तुं नो शक्यचेद यदानृप
तदा प्रतिनिधि कुर्याद् विप्र किंचित्सुधार्मिकं
तवं प्रतिनिधि सोऽत्रं सर्वं शास्त्रार्थ
तत्वविद्।"

यह नीलाद्री महोदय का ब्रह्म वाक्य है। आप इसके प्रतिनिधि शब्द पर विचार कर लें। तब जाकर मेरे कहने का तात्पर्य समझ सकेंगे।

गौरी राजगुरु ने तिरस्कार पूर्ण स्वर मे उत्तर दिया—"ह, प्रतिनिधि तो? अगर प्रतिनिधि के रूप में राजा, राजा अमीन चंद को स्वीकार कर लें तो कौन-सा शास्त्र अशुद्ध हो जाएगा?"

अब तक अमीन चंद एक मसनद के सहारे लेटे-लेटे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और ऐसा अभिनय कर रहे थे मानो उनमें कोई आसक्ति ही नहीं है। अंबरी तमाखू की कड़ी-मीठी खुशबू से कक्ष भर गया था। क्लांति और उत्तेजना से उनके मेदुर शरीर पर से पसीना झर-सा रहा था।

अमीनचंद बोले—

"राजत्व के साथ धर्म,सेवा इसका क्या संपर्क रह सकता है? भागीरथी कुमार सिंहासन पर बैठेंगे। इसके साथ धर्म-कर्म की बातें क्यों हो रही हैं?"

जगन्नाथ परीछा गंभीर कंठ से बोले—"यह बात न कहें राजा! गजपति सिंहासन भीतर तक जितना है बाहर भी उतना ही है। भीतर धर्म है, बाहर राजत्व है। वह अगर नहीं होता तो पठानों के आक्रमण से कब से ओडिशा निश्चिह्न हो गया होता!

मुगलों के हमलों के प्रति प्रत्यक्ष रूप से आक्षेप अमीन चंद के लिए अस्वाद्य था। वे कुछ गुस्से से बोले—"इस आलोचना को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होगा। आखिर बात यह है—खोर्धा सिंहासन खाली पड़ा है। भागीरथी कुमार को कोई बाध्य नहीं कर रहा है। वे अगर मान जाएं तो अच्छी बात, नहीं तो खोर्धा को खास बनाया जाएगा। मैं हिंदू हूं इसलिए जगन्नाथ को तकीखा के हाथों से बचाने की कोशिश कर रहा था। इसके लिए मुझे खेद नहीं है। गीता में है—कर्मों पर मनुष्य का अधिकार है,कर्म फल पर नहीं। भागीरथी कुमार तो सब कुछ सुन चुके हैं। अब वे बोलें।"

गुंडिचा मंदिर में किसी विधि के उपलक्ष्य में वाद्य बज रहे थे। घंट और तूर्यनाद से रात्रि की निस्तब्धता अचानक भंग हो गई थी। उसी में जैसे किसी अव्यक्त सुदूर भविष्य का आह्वान प्रतिध्वनित हो रहा था।

भागीरथी कुमार ने उत्तर दिया—"मुझे आपकी शर्तें मंजूर हैं।"

उसके बाद वहीं आलोचना समाप्त हो गयी।

भागीरथी कुमार वालिसाही प्रासाद की ओर चल पड़े। मलिन चांदनी में रहस्यवृत गांभीर्य के साथ श्रीमंदिर शत जय-पराजय गौरव और लांछन, उत्थान और पतन के बीच ओडिआ जाति के अनमनीय दंभ और विश्वास के अंतिम विजय संकेत के रूप में दंडायमान था।

भागीरथी कुमार ने याद किया। जगन्नाथ परीछा कह रहे थे—"गजपति

सिंहासन के भीतर जितना है, बाहर उतना ही है। भीतर धर्म है, बाहर है राजत्व।"

ललाट पर उलझी लटो को सुलझा कर स्वगतोक्ति की भांति भागीरथी कुमार कहने लगे—"मंदिर मे राज सेवा भी कौन-सा महत् कार्य है !"

खोर्धा सिंहासन पर अभिषिक्त होने की सभावना ने उन्हे उत्तेजित कर दिया था। सुना माहारी की सुंदर, मादक, सलज्ज आमन्त्रणपूर्ण आखों ने उस उत्तेजना में अपूर्व मादकता भर दी थी।

अकारण घोड़े पर चाबुक-प्रहार करके निर्जन बडदाड पर घोडा छुटाए वे बालिसाही प्रासाद की ओर बढ गए।

एकादश परिच्छेद

I

बाहुडा यात्रा समाप्त हो गयी है।

कल अधरपणा एकादशी, फिर द्वादशी, नीलाद्रि-विजय। बाहुडा के बाद भीड़ पतली हो गयी है। अधरपणा एकादशी और नीलाद्रि-विजय के अवसर पर पंच-कोशी यात्री और गौडीय वैष्णव भक्तों की सख्या अधिक होती है। पश्चिमा यात्री रथयात्रा के बाद से पुरी छोडने लगते हैं। इस वर्ष बाहुडा के समाप्त होते ही पता नही कैसे अफवाह फैलने लगी थी कि जगन्नाथ श्रीक्षेत्र छोड़ गये हैं।

जगन्नाथ गुडिचा घर से आकर मदिर सिंहद्वार के सामने रथ पर चकाडोला को उन्मुक्त कर बैठे हैं। द्वादशी मे नीलाद्रि प्रवेश करेंगे। सब देख रहे हैं—जगन्नाथ को अपनी आखो से देखकर भी उस उडाई हुई खबर पर विश्वास कर रहे हैं। कह रहे हैं—तकीखा के मुगल नायब पश्चिमा अमीन चद के घेरा पहरा करने के लिए रथ पर चढते ही जगन्नाथ पुरी श्रीक्षेत्र छोड़ चले गये। शून्यपुरुष शून्य बन गये है। यह घट है, काया ही पडी हुई है,…आदि-आदि अनेक बातें…।

जिनकी अतर्दृष्टि प्रखर थी वे दूसरो को दिखा रहे थे—"देखो, देखो, श्रीमुख कितना मलिन लग रहा है।"

इस वर्ष बाहुडा यात्रा के समय यात्रियो के मन मे आनंद नही था। एक अनिश्चित आशका से पुरी क्षेत्र का अतस्तल आशकित हो उठा था। खोर्धा राजा रामचद्र देव के हठात् अतर्द्धान हो जाने का संवाद लोकमुख से पल्लवित हो गया था। पर कोई उस पर गुरुत्व का आरोप नही कर रहा था। "महाराज टिकाली गये है।" तो, कोई कहता—"मुगल-दगे के भय से कोदला-आठगढ मे जा छिपे हैं। उन्हे कैद करके पिंजडे मे बद करके बारबाटी ले जाने को लश्कर पुरी आये थे। बडे जेनामणि नरेंद्र कुमार खोर्धा के राजा बनेंगे। इसलिए उस दिन देखा नही! नवमी के दिन, गुडिचा मदिर मे जगन्नाथ के सामने साड़ी बाधी गयी?" पर जैसे

आकस्मिक रूप से सारी घटनाएं घटित हो गयी थी, वह सबके मन में एक अव्यक्त अस्वस्ति को घनीभूत कर रही थी।

बाहुडा यात्रा की सुबह ठाकुरों की पहंडी आरंभ हो जाती है। पहंडी शुरू होते ही पता नही कहा से एक गिद्ध उड़ता हुआ आया और बड ठाकुर के तालध्वज पर बैठ गया। घंट, तूरी और यात्रियो के कोलाहल से वह विचलित नही हुआ। गिद्ध ने डैने पसारकर इधर-उधर देखा और उडकर श्रीमदिर की ओर चला गया। फिर वही गिद्ध लक्ष्मी मदिर के शिखर पर जा बैठा, ऐसा लोगों ने बाद मे बताया। रथ पर गिद्ध के बैठने से पहुडी में विलब हो गया। रथ शोध हुआ, मदिर पवित्रीकरण आदि के बाद ही फिर पहडी आरभ हुई थी।

रथ चूडा पर गिद्ध के बैठने के साथ रामचंद्र देव के आकस्मिक अंतर्धान का कोई सपर्क नही था। एक साथ दोनो घटनाए घटित हुई थीं।

बाहुड़ा यात्रा के दिन इन अशुभ शकुनो को देख आसन्न मुगल-दंगे की अमगल आशंका से श्रीक्षेत्र का मर्मस्थल मलिन हो गया था। अवचेतन मे निमंत्रित अनेकों स्मृति-विस्मृतियां गहन नील अथाह जल में बुलबुलों की भाति उभरने लगी।

एक बुड्ढा बता रहा था—"महाराज दिव्यसिंह देव के सातवें अंक के वृषभ महीने मे इसी तरह एक नीलचक्र पर एक गीध बैठ गया। उसी वर्ष मुगल-दंगा श्रीक्षेत्र पर अत्यंत प्रखर हो गया था। देश मे अकाल पड़ा था। एक भरण धान की कीमत पच्चीस काहान हो गयी थी। मनुष्य का मांस मनुष्य खा गये। उसी वर्ष दिल्ली पातिशाह औरंगशाह का फौजदार इकरामखां फौज लेकर आया था। मंदिर का सिंहद्वार बंद कर दिया गया। चंदन यात्रा, रुक्मिणी हरण आदि महाप्रभु के उत्सव स्थगित कर दिये गए। एकादशी की रात महाप्रदीप तक नही जला। भीतर बेडे के अंदर किसी तरह काष्ठासनों पर देव-स्नान हुआ। पर प्रत्येक पूजा के समय वाद्यवादन एकदम बंद था। गुंडिचायात्रा भी भोगमंडप पर ही हुई थी।"

आज उसी दुर्घटना की स्मृतियां और आशंकाएं लोगो के मन मे उज्जीवित होने लगी थी। पहंडी में देर थी। तालध्वज रथ शिखर पर से गिद्ध के उड़ जाने के बाद यात्री दल बाधकर उन्ही बातो की चर्चा करने लगे। उस चर्चा में वयो-ज्येष्ठ वृद्ध प्रपितामह प्रगल्भ वक्ता बने थे और उत्कंठित श्रोता सुन रहे थे।

रथीपुर से नीलकंठ पट्टनायक रथयात्रा के समय पुरी आते हैं। इस वर्ष भी सपरिवार आये थे। नीलाद्रि-विजय द्वादशी के बाद ये लौटेंगे। ये दिव्यसिंह देव के जमाने के आदमी हैं। उम्र अस्सी से अधिक हो चुकी थी। इकरामखाँ के समय श्रीमंदिर पर आक्रमण को उन्होंने खुद झेला था। वार्धक्य में उनकी स्मृति मलिन नहीं हुई थी। ललाट पर, गले में, बाहों पर, शिथिल चर्म के नीचे शिरा-प्रशिराएं स्फीत हो उठी थीं। नीलकंठ पट्टनायक जब कहने लगते थे तो गले की तुलसी मालाओं के नीचे की शिराएं तन जाती थीं। उन्हें घेरकर अनेक यात्री उनकी बातें सुन रहे थे। महाराज दिव्यसिंह देव के समय सिद्ध बैठने की घटना को स्मृति और कल्पना से रंजित करके नीलकंठ पट्टनायक सुना रहे थे।

नीलकंठ पट्टनायक कंपित स्वर में बता रहे थे—"यह एक अत्यंत अशुभ अमंगल शकुन है। उस वर्ष महाराज दिव्यसिंह देव के सातवें अंक में जगन्नाथ फिर एक बार चर्म रज्जु से बंधे हुए गौड़ सड़क पर नहीं गये थे तो और क्या हुआ था? उस समय दिव्यसिंह महाराज ने उपाय किया। इकरामखाँ का भाई मस्तरामखाँ लगभग पचास लश्करों के साथ आया और सिंहद्वार तोड़कर जब बाइस पावच्छों पर चढ़ने लगा तो दिव्यसिंह देव ने उसे एक काठ निर्मित प्रतिमा दिखाई। बोले—ये ही जगन्नाथ हैं। मुगल भोग मंडप पर से चक्र निकाल लाये और उस काष्ठ प्रतिमा को हाथी पर चढ़ाकर चंदनपुर चले गये। उस वर्ष चंदन यात्रा, रुक्मिणी हरण आदि उत्सव हुए नहीं। महाप्रदीप भी नहीं चढ़ा। पर महाप्रभु विमलाई के पीछे के बेढे में थे।"

श्रोताओं ने समवेत स्वर में पूछा—

"और फिर?"

नीलकंठ की कहानी जमने लगी थी। वे जहां रुक गये थे, वहीं से कड़ी जोड़ी। कहने लगे—"मुगलों ने समझा कि उन्होंने परमेश्वर को ले लिया। पर कलीआर-भुज वहीं मंदिर के अंदर थे।"

एक ने पूछा—"यह कैसी बात है? परमेश्वर मंदिर के अंदर थे और मुगलों को पता नहीं चला!"

नीलकंठ बोले—"अरे भाई इकरामखाँ और मस्तरामखाँ ने काठ की प्रतिमा को परमेश्वर समझकर हाथी पर लाद लिया और चल दिये। उन्होंने समझा कि अब मंदिर में ठाकुर नहीं हैं। श्रीवत्स खंडाशाल मंदिर के सिंहद्वार को मुहरबंद

कर दिया गया। मंदिर पड़ा रहा, प्राण के चले जाने पर पिंड के पड़े रहने की भांति। यात्रियों का आना-जाना बंद हो गया। अब मुगल किस तरह सोचेंगे कि प्रभु मंदिर में हैं? पर उसी बेढ़े के अंदर सारी विधियां चलती रहीं। उस वर्ष गुंडिचा यात्रा भोगमंडप पर हुई थी। इसी तरह दिन बीतते-बीतते दिव्यसिंह देव का पच्चीसवां अंक आया। कन्या दशवें दिन कृष्ण एकादशी बृहस्पतिवार से मंदिर फिर खुला। दिव्यसिंह देव के आदेशानुसार अठारह गढ़ों के खडायतों ने आकर मुहर तोड़ी, द्वार खोले। उसी दिन से फिर संध्या धूप के समय गाजे-बाजे बजने लगे। फिर महाप्रदीप जलाया गया। यह सब सुनी हुई नहीं देखी हुई बातें हैं।"

श्रोताओं में नीलकंठ के समवयस्क एक और वृद्ध थे। वे सुन रहे थे। बीच में बोले—"असल बात को तो कहते नहीं हो समधी। मुगलों ने नीलचक्र उतार कर तोड़ दिया था। तैंतीसवें अंक के कुंभ महीने के चौथे दिन पात्र परमानंद पट्टनायक पुत्र धरमु हरिचंदन महापात्र के उद्यम से मंदिर पर नया नीलचक्र बिठाया गया। तब जाकर इंद्र ने वर्षा की, और तब जाकर राज्य पर पालक हुआ।"

नीलकंठ पट्टनायक पान कूटते हुए वृद्ध की बात में बात जोड़कर बोले—"अरे बाप रे, वह जो अकाल पड़ा था! पता नहीं कैसे परमेश्वर की कृपा से देश बच गया। यहां तक कि इमली के पेड़ों पर पत्ते भी नहीं बचे। लोग चबा गये थे। बांस कोजड़ों से उखाड़कर कच्चा बांस खाना पड़ा था। घास-पत्ते कुछ भी नहीं बचे थे। सब मनुष्य के पेट में भस्मीभूत हो गया। जब वह भी खत्म हो गया तो आदमी मरने लगे···ढेरों लाशें पड़ी रहीं। आज भी याद आता है तो तन-मन थर्रा जाता है।"

वृद्ध ने फिर बात जोड़ी। बोले—"परमेश्वर का रथ तो अपनी जगह से हिला तक नहीं था। अब आज रथ पर गिद्ध बैठा है। महाराज रामचंद्र देव भी कहीं देशांतर चले गये हैं। पता नहीं क्या इच्छा है परमेश्वर की! अब तुम लोग देखना। हम तो चलने को तैयार बैठे हैं। शरीर का आधा तो अरथी पर है अब!"

इधर-उधर दलों में एकत्र और स्तंभीभूत यात्री रथ पर गिद्ध के बैठने को लेकर बातें कर रहे थे। उसी पर अनेक उपाख्यानों की स्मृतियों का वर्णन हो रहा था।

इसी बीच रथ और मंदिर का शोधन कार्य समाप्त हो चुका था। मंदिर में वाद्यों की ध्वनि से बडदाड मुखरित होने लगा था। दइतापति जब द्वार खोल रहे थे, पालिआ खुटिओं की 'मणिमा' 'मणिमा' पुकार में 'मा भैः' की अभयवाणी उद्घोषित हो रही थी। रथदाड पर खड़े यात्री आसन्न अमंगल की सारी आशंका और दुश्चिंताएं भूलकर पलभर में 'मणिमा महाबाहु' पुकारने लगे।

आद्य में दइतों के कंधे पर आकर सुदर्शन सुभद्रा के पथ पर विराजित हुए। उसके बाद महाडंबर के साथ दर्पित भंगिमा में बलभद्र की पहंडी आरंभ हुई।

यह जैसे देवता का निष्प्राण विग्रह नहीं है—प्रबल के शत आक्रमण, दुर्विनीत के शत अत्याचार और प्रमत्त की शत ताडनाओं में अपराजित मनुष्य की अपराजेय आत्मा के जैसे ये महान विग्रह हैं। ओडिआ जाति पर अतीत में अगणित पठान-मुगल आक्रमणों का झड बह गया है। उससे सामयिक रूप से ओडिआ जाति झुक अवश्य गयी, टूटी कभी नहीं। यह जैसे ओड़िआ जाति की प्राणशक्ति की प्रेरणा है। अब अगर अशुभ, अमंगल और आक्रमण का ज्वार आयेगा तो आये, ओडिआ जाति अतीत में जैसे उबर गयी है, अब भी उबरेगी। बड ठाकुर के दाहिआ की स्पर्धित भंगिमा में पहंडी के समय जैसे वराभय फूट रहा था।

समवेत यात्री द्विगुणित उत्साह के साथ पुकार रहे थे—"बलिआर भुजा ! मणिमा महाबाहु हो !…"

ठाकुरों की पहंडी यथाविधि समाप्त हो गयी।

रथयात्रा के समय जो विधियां पालित होती हैं बाहुडा के समय वे ही दोहरायी जाती हैं। साधारण दैनंदिन जीवन में सामंतों के अपने गांवों से अन्य ग्राम को प्रस्थान करते समय जिस तरह कारण सहित या अकारण अनेकों को बुलाया जाता है। बाहर निकलने के पहले जैसे कोई रह गया क्या यह जानने को मना करता है और अगर रह गया हो तो उसे तलाशना होता है। जिस तरह पाथेय स्वरूप सामग्रियां एकत्रित की जाती है, जिन सामग्रियों के अभाव में यात्रारंभ ही नहीं किया जाता, वही कार्य, इस उत्सव में परोक्ष रूप से विधियां बन गयी हैं। इसमें न और कुछ विशेष तात्पर्य है और न कोई आध्यात्मिकता ही है।

फिर भी विदेशी यात्रियों की बात तो अलग है। स्थानीय और पचकोशी यात्री तक वही एक ही दृश्य प्रतिवर्ष निर्वाक् उत्कंठित दृष्टि से देखते हैं। बीच-बीच में पालिआ खुटिओं की 'मणिमा…मणिमा' की पुकार के साथ स्वर मिलाकर वे भी

'मणिमा, मणिमा, महावाहु हो वलीआर भुज !' पुकारने लगते हैं। यह ध्वनि समुद्र घोष से अधिक गंभीर लगती है।

इसके बाद तीनों रथों पर विभिन्न सेवक अपने-अपने निर्दिष्ट कर्तव्य करते जाते हैं। भिन्न-भिन्न साज-सज्जा, मंडन, मालार्पण आदि कार्य होते रहते हैं। रथों के चलने के पहले छेरा पहरा होता है। साधारणतः ठाकुरों के रथ पर बैठने से लेकर छेरा पहरा होते-होते तक काफी समय बीत जाता है। सीढ़ियों पर उस समय सेवकगण कारण-अकारण चढ़ते-उतरते रहते हैं। वैसा करते समय अपने-अपने यजमानों को जगन्नाथ दर्शन कराना, उनसे दक्षिणा वसूलना आदि कार्य ही होता है।···उस दिन वह सब हो रहा था। पर बीच-बीच में यात्री इधर-उधर एकत्र होकर रथ पर गिद्ध के बैठने वाली घटना पर चर्चा कर रहे थे··· साथ-साथ दूर गावों से आये अपने बधु, आत्मीय परिजनों के साथ अकस्मात् भेंट हो जाने पर सुख-दुख की बातें होती रहती थी। वही स्वर सम्मिलित होकर कोलाहल बनकर बड़दाड को मुखरित कर रहा था।

उस समय जन-समुद्र मे तरग की भांति बात फैल गयी—इस वर्ष तकीखां के नायब राजा अमीन चद बाहुडा रथो पर छेरा पहरा करेंगे ! जेनामणि भागीरथी कुमार के रहते यह अमीन चंद कौन होता है ? वह क्यों छेरा पहरा करेगा। राज-सेवा के लिए उसका क्या अधिकार है ? जेनामणि अगर खोर्धा चले गये तो मुदिरथ तो हैं। वे छेरा पहरा नहीं करेंगे। इस भांति की अनेक जिज्ञासाओं से बडदाड अकस्मात् परिपूर्ण हो गया। राजनीति में खबर रखने वाले कह रहे थे अमीन चंद को पुरी का नायब बनाया गया है। उसी शर्त पर राजी होकर जेनामणि भागीरथी कुमार 'गोप पुंडरीक' साड़ी बांधकर सिंहासनासीन होने के लिए खोर्धा चले गये हैं। अब अमीन चद के अलावा और कौन है जो छेरा पहरा की विधि को संपादित कर सकता है ?

छेरा पहरा करने के लिए शायद अमीन चद पालकी पर निकले हैं। मार्कंडेश्वर साही की तरफ से तैलग वाद्य, तूरी, आदि की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

नीलकंठ पट्टनायक गाजे-बाजे की आवाज और उस संवाद को सुनकर अत्यंत उत्तेजित स्वर मे बोले—"जो जगन्नाथ के राजसेवक हैं, वे खोर्धा के राजा हैं। यही परपरा है ! जेनामणि ने अगर राजा बनाने के लिए राजसेवक की पदवी बेची है तो उन्हें कौन राजा के रूप मे स्वीकार करेगा ? क्यो करेगा ?"

छेरा पहरा के समय तनिछो महापात्र की एक निर्दिष्ट भूमिका होती है। जब वे रथ के ऊपर जा रहे थे, तब उन्होंने सीढ़ी के पास खड़े पूर्व-परिचित नीलकंठ पट्टनायक को देखा और आदर सभाषण करने लगे। उस समय नीलकठ पट्टनायक ने इसी विषय पर प्रश्न किया तो महापात्र रहस्यपूर्ण ढग से मुस्कुराते हुए बोले—"शास्त्रो मे है, कुल का नाश होते समय इस तरह के कुलागार पुत्र का जन्म होता है। वलीआर भुज की इच्छा पूर्ण हो। देखें, आगामी वर्ष यह रथयात्रा भी होगी या नही।"

जगन्नाथ श्रीक्षेत्र छोडकर चले गये हैं यह अफवाह यहा से अकुरित होकर धीरे-धीरे लोकमुख से पल्लवित-पुष्पित हो गयी थी।

उस समय रथ पर जगन्नाथ को माल्यार्पण हो रहा था। इसलिए नदिघोष के पास भीड़ थी। नीलकंठ पट्टनायक तालध्वज रथ की सीढी के पास खड़े थे और ये सारे अनाचार देख रहे थे और निष्फल उत्तेजना से राजा अमीन चद और भागीरथी कुमार पर अभिशाप की वर्षा कर रहे थे। शायद उनके चारो ओर खड़े यात्रियो की भावना पर इसका कुछ भी प्रभाव नही पड रहा था।

राजा अमीन चद छेरा पहरा के लिए शोभायात्रा मे आ रहे थे। 'छाटिआ' वेत्र हिलाते हुए यात्रियो को हटा रहे थे।

आगे की पालकी मे राजा अमीन चद और उनके पीछे-पीछे दूसरी पालकी मे बड परीछा राजगुरु आ रहे थे।

आज राजा अमीन चद की एक बहुपोषित अभिलाषा पूर्ण होने जा रही है। जगन्नाथ के समान राजस्व उपार्जन का एक बडा इलाका उन्हे सूखे में मछली पकडने की भाति मिल गया था। इसलिए उनके मेदुल चेहरे पर हाथी जैसी छोटी-छोटी आखो मे सतोष का चिह्न सुस्पष्ट हो गया था। पीछे की पालकी मे गौरी राजगुरु का मुह और शाणित आखो मे शवमासभक्षी शृगाल की सतर्कता थी।

अमीन चद की पालकी के दोनो ओर चलने वाले सेवक और पाइक जयध्वनि करने लगे—"महाराज अमीन चद को शख मे रखकर, चक्र की आड मे रखो, हे महाबाहु वलीआर भुज!"

समवेत यात्री साधारणत दुहराया करते हैं—"खोर्धा राजा का कल्याण करो हे जगन्नाथ!"

पर उस समय प्रस्तरीभूत नीरवता मे खड़े यात्री अमीन चंद के लिए रास्ता

छोड़कर निस्पृह दृष्टि से देख रहे थे। एक व्यक्ति भंगेड़ी स्वर में चिल्लाया—"यह कौन है रे भणा ?" तब जाकर वह नीरवता टूटी।

यात्रियों के विद्रूप और व्यंग्य हास्यरोल से तैलग वाद्य के शब्द तक पलभर के लिए सुनाई नहीं पड़े। अमीन चद को किसने 'भणा' कहा उसे तलाश करने को पाइक इधर-उधर भागे और यात्रियों मे उस आदमी को ढूढ़ने लगे। अपराधी को ढूढ़ निकालने के बहाने वे अमीन चद को संतुष्ट करना चाहते थे। साथ-साथ श्रीक्षेत्र पर अमीन चंद की प्रतिष्ठा से लोगों को परिचित कराना भी एक और उद्देश्य था। चाहे जो भी हो, उद्देश्य साधन हुआ या नहीं यह सोचे बिना वे वेत्र हिलाते हुए अमीन चद के पास लौट आये।

यात्रियों में से कोई चिल्लाया—"यह तो भाड है, भाड ! सुना माहारी के कोठे से उठकर आया है। भाड के शरीर से हल्दी के दाग तक नहीं छूटे हैं !"

परिहास के अट्टहास से रथदाड भर गया।

राजा अमीन चद ने रथ पर आकर साष्टाग प्रणाम करने के लिये अपने मोटे मेंढक जैसे शरीर को नवाया, तब उस हास्योद्दीपक भगिमा को देख यात्रियों में हास्यरोल और अधिक उत्तरल हो उठा। पर आग में पानी गिरने की भाति सब कुछ पलभर मे शात हो गया। अमीन चद के प्रणाम करने के बाद आरती करने के लिए भंडार मेकाप ने स्वर्णनिर्मित कर्पूर आरती बढ़ायी थी। वह आरती अमीन चंद की असावधानी के कारण हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ी।

ऐसे समय छूट कर कर्पूर आरती का नीचे गिरना अब तक किसी ने न देखा था और न सुना था। बड़े-बूढ़ों ने भी कभी ऐसी घटना नहीं देखी थी। स्मृति को लाख कुरेदने पर भी, कल्पना को लाख रंगने पर भी छेरा पहरा के समय ऐसी दुर्घटना होने की बात नीलकठ पट्टनायक तक को याद नहीं पड़ रही थी। सुबह तालध्वज रथ पर गिद्ध के बैठने से यात्रियों के मन पर जो अशरीरी आशका छा गयी थी वह छेरा पहरा के पूर्व अमीन चद के हाथों से कर्पूर आरती के छूटकर गिरने से और अधिक घनीभूत और प्रवर्धित हो गयी थी।

उस समय यात्रियो में निरुद्ध उद्वेग उच्छ्वसित अट्टहास में बदल गया था। अमीन चंद जगन्नाथ के रथ पर छेरा पहरा कर रहे थे।

ऐकदा छेरा पहरा का अर्थ रथयात्रा के समय बड़दांड को साफ करना था जो राजसेवक के रूप में उत्कल के गजपतियों का कार्य था। वह उत्कल भूमि पर

राजतंत्र का एक विशेष आदर्श था—यहां प्रजा दर्पित सम्राट् के अभियात्रापथ की मार्जना नही करती, वरन् सम्राट् जनता रूपी ईश्वर के सेवक के रूप मे, प्रजा की आध्यात्मिक अभीप्सा तथा सांसारिक कल्याण के पथ को परिष्कृत करने के लिए अपने हाथो मे मार्जनी लेकर रथदांड को बुहारते हैं। यही था छेरा पहरा का अर्थ। पर बाद मे जब राजत्व का अभिमान, सेवकत्व की दीनता मे संतुष्ट नही रह सका तो रथदाड पर से हटकर रथ पर छेरा पहरा करने की विधि प्रवर्तित हुई।

चाहे जो भी हो, यह विधि अत्यत क्लातिकर थी। इसके अलावा प्रत्येक रथ-पर इस विधि की पुनरावृत्ति अधिक थकाने वाली थी।

बड़ ठाकुर और सुभद्रा के रथ पर छेरा पहरा करके अमीन चंद के जगन्नाथ के रथ पर चढते समय लगता था जैसे उनमे चलने की शक्ति ही नही है। जगन्नाथ के रथ पर छेरा पहरा करते समय अमीन चद अचानक कमर पर बाया हाथ रख-कर मुख विकृत करके रह गये। अचानक उनकी कमर मे पीडा उभर आयी थी शायद। अमीन चंद कमर झुकाकर बाय हाथ से स्वर्ण समार्जनी लेकर और दांयें हाथ को कमरपर रख कर जैसी हास्योद्दीपक भगिमा मे खडे थे उससे यात्रियो में हास्यरोल झड़-सा बहने लगा। छेरा पहरा विधि को यात्री जिस विस्मय और भक्ति भाव से देखते हैं उसका उस समय कही पता नही था। अमीन चद की अप्रत्याशित, अवाछनीय और अनभ्यस्त भूमिका उपस्थित श्रद्धालुओ मे भक्ति और श्रद्धा के बदले उपहास का उद्रेक कर रही थी।

नदिघोष पर बैठकर बलीआर भुज अपने चकाडोला से यह सारी विडबना जैसे नितात निस्पृह दृष्टि से देख रहे थे। वे सर्वद्रष्टा हैं। पर यात्री एक-दूसरे को कह रहे थे—"देखो कला श्रीमुख कैसा मलिन दिख रहा है ! ऐसा तो कभी भी दिखाई नही देता। श्रीकलामुख से सारी कलाएं जैसे उड़ गयी हैं।"

बाहुड़ा यात्रा देखने की अब किसी मे श्रद्धा नही रह गयी थी। यात्री रथ की रस्सियो को छूकर माथे पर लगा कर निरानंदमन से लौटते जा रहे थे।

अधरपणा एकादशी की भोर से आकाश बादलों से घिर गया था। पाल तने बोइतो की भाति बादल पूर्व से पश्चिम की ओर बहते चल रहे थे। शीतल हवा के पागल झोके में झड़ का संकेत था।

समुद्र की ओर से सांय-सांय करती आती हवा नारियल के पेडो को झुका

जाती थी। यात्रियों के लिए रथदांड के दोनों ओर पंडों द्वारा बनायी गयी झाड़ियों के घास-फूस के छाजन बगूले की घूर्णी में सूखे पत्तों की भांति उड़े जा रहे थे। हवा की गति तेज नहीं थी, पर उसमें चक्रवात का आभास अवश्य था।

झड़-वर्षा को आते देख पंचकोशी यात्री श्रीक्षेत्र छोड़ चलने लगे थे। जगन्नाथ अब श्रीक्षेत्र में नहीं हैं; खोर्धा के महाराज रामचंद्र देव अकस्मात् अंतर्द्धान हो गये हैं; तकीखां के नायब के रूप में राजा अमीन चंद ने रथ पर छेरा पहरा किया, उनके हाथों से छूट कर स्वर्ण कर्पूर आरती नीचे गिर पड़ी, तालध्वज रथ पर गिद्ध बैठ गया···इन सारी अफवाहों और घटनाओं के कारण अनिश्चित अमंगल की आशंका से पुरी की सड़कें सूनी होती जा रही थी।

मुगल-दंगा शुरू हो जाए तो विदेशी यात्रियों की दुर्दशा की सीमा नहीं रहेगी। जगन्नाथ सड़क पर पहुंच जाएं तो उनकी निरापत्ता आंशिक रूप से सुरक्षित हो जायेगी। क्योंकि जगन्नाथ सड़क पर यात्रियों की रक्षा और देखरेख के लिए सुजाखां के समय से कड़ी व्यवस्था की गयी है। इसलिये मुगल लश्कर जगन्नाथ सड़क पर यात्रियों को निर्यातित करने या लूटने का साहस नहीं करते। जगन्नाथ सड़क पर जगह-जगह सरकारी चौकियां भी बिठाई गई हैं। पर मुगल लश्कर अगर पुरी श्रीक्षेत्र पर अचानक हमला करेंगे तो दूर देश से आये यात्रियों का धन-जीवन विपन्न हो जाएगा। अतीत में बारंबार ऐसा हुआ है। अचानक मुगल-दंगा शुरू हो जाने की आशंका अवश्य नहीं थी, और उसके लिये वैसी कोई परिस्थिति भी नहीं थी। लेकिन अगर वैसी आशंका नहीं है तो तालध्वज पर गिद्ध क्यों बैठा और वह फिर उड़कर लक्ष्मी के मंदिर शिखर पर क्यों बैठ गया? जगन्नाथ अगर रुष्ट नहीं हुये हैं तो अमीन चंद के हाथों से आरती के समय कर्पूर आरती क्यों गिर पड़ी? स्थिर मन से कार्य-कारण पर विचार कर के कुछ निश्चय कर पाने की अवस्था में कोई नहीं था। एक यात्री दल अगर किसी कारणवश पुरी छोड़े जा रहा था तो उनकी देखा-देखी दूसरे भी छोड़ने लगे। बाहुड़ा के दिन से पुरी में प्रबल विसूचिका का भय लगा है। बिमलेई देवी के किसी पंडे को स्वप्न में देवी ने बताया है कि अमीन चंद ने जगन्नाथ के रथ पर छेरा पहरा किया है उसी के प्रतिशोध स्वरूप वे पुरी को आधा साफ कर देंगी। इसलिए अग्रपणा एकादशी के दिन पुरी की सड़कें सूनी हो गयी थीं। यात्री-विरल, निर्जन बड़दांड पर झड़ को सूचित करती हुई हवा साय-साय बह रही थी।

गुंडिचा यात्रा के दिन जगन्नाथ सुभद्रा को लेकर चले आये। लक्ष्मी इससे कुपिता और ईर्ष्यातुर हुई है। इसे एक भिन्न आदि से साधारण ओड़िया गृहस्थ के पारिवारिक जीवन के चित्र के माध्यम से चित्रित किया गया है।

जगन्नाथ के सिंहद्वार पर जिस भाँति साधारण मनुष्य देवता के रूप में वर्णित हुआ है उसी तरह देवता भी साधारण मनुष्य बन गये हैं। इसलिए लक्ष्मी जिस भाँति ईर्ष्यातुर और मान की व्यंजिता में प्रस्तुत की गयी हैं, उसी तरह जगन्नाथ भी पत्नी निगृहीत और अनुगत, असहाय स्वामी बन गये हैं।

जगन्नाथ के रथ पर से उतरते ही लक्ष्मी ने श्रीमंदिर के सिंहद्वार को अंदर से बंद कर दिया। मानिनी, कुपिता लक्ष्मी का दुर्जय मान, उससे जगन्नाथ को सिंहद्वार पर ही सारा दिन उपवास में बिताना पड़ा। क्षुधा निवारण के लिए रत्नमंदिर को जाने के सिवा अन्य उपाय नहीं था। पर वह भी बंद था। लक्ष्मी के कोप के कारण अधरपणा एकादशी विधवाओं की तरह निर्जल उपवास में बितानी पड़ी। काफी प्रयास के पश्चात शर्करा, केला, ककड़ी आदि से बना अधरपणा ही हांडीभर मिला था, वह भी भिखारियों की तरह एक लूवे जैसे छोटे मुंहवाली हांडी में। जगन्नाथ के रत्नाधर ने, उसका स्पर्श भर किया था। उससे विरह की तृषा कैसे प्रशमित होती ? लक्ष्मी के कोप से वह हांडी भी टूट गयी। द्वादशी भी शायद वैसे ही बीत जाएगी, फिर भी लक्ष्मी ने मान नहीं छोड़ा।

प्राक्-वैदिक समाज में मंत्र और तंत्र आदि अभिचारों से जो पर्ण-शबरी पूजा प्रचलित थी ज्ञानदेई मालुणी, निताई धोबणी, सागी गउडुणी, पुआ तेलुणी, सहुकुटी लुहारुणी, पतंविधा गउरुणी और सुरुटि चमारुणी उसकी साधिकाएं थी। ये शायद सहजिआ कृष्णाचार्य या कान्हूपा की चर्यागीतिका की साधना-नायिकाएं हैं जो डोंबी और शबरियों के परवर्ती रूपांतर हैं। लक्ष्मी एक समय पर्ण-शबरी तंत्र की उपास्या देवी थी। बाद में जगन्नाथ पर केंद्रित सर्वधर्म और तत्वों का जो अपूर्व समन्वय हुआ था उसी से श्रीपादसेविता, पर्ण-शबरी लक्ष्मी, विष्णु पत्नी, सागर दुहिता लक्ष्मी बन गयी। पर वह समन्वय सांस्कृतिक संघर्षों में गतिशील हुआ था। अंत में वैदिकों ने जगन्नाथ को ग्रहण कर लिया पर जगन्नाथ क्षेत्र में पर्ण-शबरी लक्ष्मी को ग्रहण करने में जैसे उनमें कुंठा थी उसी तरह अवैदिक भी लक्ष्मी को पति आज्ञाशिरोधार्यकारिणी, जगन्नाथ पत्नी नहीं बनाना चाहते थे। वस्तुत: मातृप्रधान वैदिकेतर समाज में मातृदेवी लक्ष्मी के

प्राधान्य ने ही इस संघर्ष और समन्वय की स्मृति को एक धर्माचार का आवरण पहनाया है। एक समय जगन्नाथ तुंबाधारी नाथ सम्प्रदाय के इष्टदेव कहलाते थे। इस अभिनय में शायद उसे भी आंशिक रूप से स्मरण किया जाता है।

हिंदू धर्माचरण मे तत्वों की शुष्क रसहीन निष्प्रता नहीं है, काव्य व्यंजना में वह रसमय है। इसलिए इस ऐतिहासिक घटना को कथा और काव्य के माध्यम से धर्माचरण की पद्धति बनाकर अमर कर दिया गया है। इसमें लक्ष्मी खंडिता स्वकीया नायिका हैं और जगन्नाथ हैं परकीया-प्रलुब्ध धूर्त नायक। जगन्नाथ के परकीया विलास से लक्ष्मी ने एक साधारण नारी की भांति कोप करके जगन्नाथ के लिए सिंहद्वार ही बंद कर दिया है।

नीलाद्रि-विजय द्वादशी की विधि मे इस तरह के सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक संघर्ष और समन्वय का अभिनय क्रमशः होता है। इसी अभिनय को देखने के लिए प्रतिवर्ष मंदिर मे और मंदिर के बाहर यात्रियों की इतनी भीड़ होती है कि तिल रखने को भी स्थान नही मिलता। पर आज द्वादशी के दिन भी सिंहद्वार के सामने सड़क पर कौवे उड़ रहे थे। *झड़-वर्षा और अनेक आशंकाओं के भय से यात्री श्री-*क्षेत्र छोड़ कर चले गये थे। जनशून्य रथदांड पर यात्रियों के अस्थायी आवासों पर छाजनों और फूसों को प्रमत्त कापालिकों की जटाओं की भांति उड़ाकर हवा साथ-साथ बहती जा रही थी।

उस पर कल से पंचग्रह कूट लग रहा है।

संध्या होते-न-होते आकाश पर अमावस का अंधकार छा गया।

अपराह्न मे वर्षा के बाद बादल छंट गए थे, पर मेघ की संभावना से आकाश में फिर भी अंधकार छाया हुआ था। आकाश पर चमकती बिजली मेघाच्छन्न भयंकरता को अधिक बढ़ा रही थी। मध्याह्न में जो वर्षा हुई थी उसी से सड़क के दोनों ओर के पनालों में जल स्रोत कल-कल ध्वनि करते हुए अठरनला की ओर बहता जा रहा था। तब तक हवा की गति धीमी नहीं हुई थी।

संध्यापूजा के बाद ठाकुरों की पहंडी होती है। पर तूफानी हवा के कारण जिस तरह मशालें बुझी जा रही थीं, उससे देर करने से हो सकता है अंधेरे मे पहंडी करनी पड़े। यही सोचकर पंडों ने दिन रहते ही जयमंगल आरती कर दी थी। आरती के बाद ठाकुरों के पास अन्य विधियों में बहुत समय लगता है। ठाकुरों को वस्त्र आभूषणों से मंडित किया जाता है। जगन्नाथवल्लभ बगीचे से घुंटिआ पूजा

की माला और फूलो से बनाए गए आभूषण ले जाते हैं। वे ही प्रभु के श्रीअंग पर मडित होते हैं। आज वे सब विधिया जैसे-तैसे कर दी गयी। पहडी यथासभव आरंभ करने को सेवक उतावले हो रहे थे। भीड ज्यादा हो तो इन कार्यो को करने मे अनावश्यक विलब होता है। इससे पडो का उपार्जन भी वढ जाता है। पर उस समय वहा एक बिल्ली का बच्चा तक नही था। सिंहद्वार की गुमटी में अमीन चद और बड परीछा गौरी राजगुरू खडे थे और यथाशीघ्र पहडी आरभ करने को बारबार कह रहे थे।

झड-पवन का हाहाकार और मेघाच्छन्न आकाश की विषण्णतामे पहडी के लिए विजय तूरिया बज उठी। राधवदास मठ से ठाकुरो के लिए जो टाहिया आए थे उन्ही से विग्रहो को सजाया गया था। ठाकुरो की पहडी आरभ हुई। बलभद्र और सुभद्रा मदिर के अंदर प्रविष्ट हो गए थे। जब सिंहद्वार पर जगन्नाथ पहुचे तब विधि के अनुसार देवदासियो ने सिंहद्वार बद कर दिया। नीलाद्रि-विजय द्वादशी मे उन का अखड कर्तृत्व रहता है। राजा अमीन चंद और गौरी राजगुरु तक को सिंहद्वार की गुमटी मे से बाहर धकेलने मे वे कुठित नही हुई।

सुना माहारी जब कंगन शोभित हाथों से कपट क्रोध मे अमीन चद को बाहर धकेल रही थी तब काचन, केतकी, सारीआ, आदि अन्य देवदासिया खिलखिला कर हंसने में लगी हुई थी।

अमीन चंद वहां अकस्मात् सुना माहरी को देख पहचान नही सके थे। माहारी का विलासिनी परिधान त्याग कर सुना ने अपने को इस तरह देवदासी की भाति सजाया था कि स्थूलरुचि सपन्न, काम प्रमत्त अमीन चद जैसे व्यक्ति के मन में भी कामविलास की भावना आ नही रही थी। वह जैसे कोई दूसरी सुना थी, महा-लक्ष्मी की परिचारिका। नारगी रंग के पट्टवस्त्र, सिर पर पत्थरजडा स्वर्णजाल, वक्षो पर इंद्रगोविंद चोली, रत्नकटि मेखला, नासिका मे मुक्ता जडित नासा पुष्प, कानो मे हीरे के कुडल, गले मे रत्नमाला, पैरो मे नूपुर, आखो मे नैसर्गिक, कमनीय भगिमा।···अमीन चद ने ऐसी मूर्ति मदिर गात्रो मे ही देखी थी। जीवन में उन्होने कल्पना तक नही की थी कि ससार भर मे रक्त-मास की वैसी जीवंत नारी की प्रतिमा का होना भी संभव है। सुना की ओर उन की दृष्टि गयी ही थी कि उसने सिंहद्वार बद कर लिया।

जगन्नाथ पहडी मे सिंहद्वार तक पहुंचते समय देवदासी और पंडो में 'दायिका'

गायन में काफी समय व्यतीत हो जाता है। पर उस समय झड़ और मेघ को क्रमशः घनीभूत होते देख वे भी उत्साहित नहीं जान पड़ते थे। जब जगन्नाथ जय-विजय द्वार पर पहुंचे तब पंडा दइतों को अप्रतिभ कर देने के लिए देवदासियों ने वचनिका आरंभ कर दी। बाहर का अंधकार, झड मेघ और दुर्योग उन्हें विचलित नहीं कर रहे थे।

मंदिर के दक्षिण वेड़े के बाहर जो प्रकाडकाय वरगद था, झड़-पवन से उसकी एक शाखा टूट गई थी। उसके टूटने के समय हुए भयानक शब्द से मंदिर प्रागण कांप उठा था। उस समय नजदीक ही कहीं वज्रपात हुआ था शायद। अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष भी देवदासियों में आग्रह था, पर सेवकों में धैर्य नहीं था। जय-विजय द्वार के खुलने के बाद जगन्नाथ के रत्नसिंहासन पर विराजित होने के पहले अनेक विधियां संपन्न होती हैं। द्वार खुलने के बाद भंडार द्वार के सामने *मान करती लक्ष्मी के पास श्रीजगन्नाथ विराजित होते हैं। वहां आरती वंदापना* और पूजादि होती है। उसके बाद जगन्नाथ रत्नसिंहासन पर विराजित होते हैं। उसके बाद वड़सिंहार वेश और पूजादि होती है। उसके पश्चात् शयन व्यवस्था, वीणावादन, गीतगायन पुष्पांजलि आदि होती है। जगन्नाथ के शयन के बाद मंदिर द्वार बंद किया जाता है। इस वर्ष तूफान के कारण सब विधियां पालित होते-होते शायद अर्धरात्रि हो जाएगी। इसलिए सेवक बड़ी व्यस्तता से सब कार्य कर रहे थे।

वचनिका के कारण देर होती जा रही थी इससे द्वार पर कराघात करते हुए एक दइता कहने लगा—"अरी ओ सुना···बस करो, द्वार खोलो। वर्षा और हवा की ठंड के कारण जगन्नाथ भी कांपने लगे हैं। अब द्वार खोल दो!"

जय-विजय द्वार खुला। पर द्वार के खुलते ही तेज हवा से रत्नसिंहासन के नीचे ज्वलमान अखंड प्रदीप बुझ गया। अखंड प्रदीप के बुझ जाने से अखंड मेकाप आर्तनाद करते से बोल उठे—"बाहुड़ा के समय से अब तक एक के बाद एक अप-शकुन घटते जा रहे हैं! क्या पता क्या इच्छा है प्रभु की? भविष्य को वे ही जानते हैं। अखंड प्रदीप तो नहीं ही बुझना चाहिए।"

गौरी राजगुरु, राजा अमीनचंद के साथ काष्ठ अर्गल के पास रह कर जगन्नाथ की नीलाद्रि-विजय विधि देख रहे थे। अखंड मेकाप की बातों में अमीन चंद के प्रति

आक्षेप स्पष्ट था। अत विरक्त होकर वे बोले—"तेज हवा के कारण प्रदीप बुझा है, इसमें सोचने की बात क्या है ?"

अखड मेकाप ने फिर प्रदीप जला कर रख दिया।

मदिर के अंदर आने के बाद लक्ष्मी के पास जगन्नाथ-रुक्मिणी का गठजोड खोला जाता है। विधि के अनुसार वह भितरछो महापात्र खोलते हैं। पर उस समय वहा भितरछो महापात्र नही थे। निश्चित समय मे भितरछो महापात्र कहीं गायब हो गए हैं। आज नरेंद्र महापात्र की पारी है। उन्हे अनुपस्थित देख गौरी राजगुरु व्यग्र कठ से बोले—"कहा चले गए नरेंद्र महापात्र ? देखता हू धीरे-धीरे सेवको का यथेच्छाचार बढता जा रहा है ! इसी से जगन्नाथ की विधियो मे अव्यवस्था हो रही है।"

भितरछो को ढूढते हुए एक दइता ने उनके बेटे को आते देखा तो पूछने लगा—"अरे महादेव, तेरे बापू कहां रह गए ?"

"मुझे भेजा है उन्होने। वातज्वर के कारण वे घर मे हैं। बिस्तर से उठ ही नही पा रहे थे।"

अनेक कंठ से एक साथ निर्देश आया—"ठीक है, ठीक है, शीघ्र कर···जगन्नाथ के रत्नसिंहासन पर विराजित होने पर ही बडसिंहार होगा।"

···सारी विधिया पूरी हुईं।···जगन्नाथ जब रत्नसिंहासन पर विराजित होने जा रहे थे तो सेवको ने जय ध्वनि लगाई—"रत्नसिंहासन पर विराजो हे मणिमा महाबाहु !"

बडसिंहार पूजा होते-होते करीब आधी रात हो गई। बाहर तूफान की तेज गति के बढने के साथ-साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। उसके पश्चात प्रभु की शयन-व्यवस्था, आरती, गीत-गोविंद, गायन, पइड मणोही, ताबूल अर्पण, कर्पूर आदि अन्यान्य विधिया भी एक-एक कर समाप्त हो गयी। सेवक शयन-व्यवस्था करके चले गये, पालिआ पढिआरी ने जय-विजय द्वार बद कर लिया, अदर से दक्षिण द्वार को भी बद कर दिया गया। अग्रदीप जलता रहा, अखड प्रदीप को रत्नसिंहासन के नीचे रख दिया गया। पालिआ मेकाप ने अग्र प्रदीप उठाकर 'मणिमा मणिमा' पुकारते हुए सिंहासन के चारो ओर देख लिया।

कुछ चूहे सिंहासन के पीछे मदिर प्राचीर से सटकर भाग-दौड़ कर रहे थे, वे

और अन्य पक्षियों की प्रभातकालीन काकलि ने मिलकर जैसे झड़ वर्षा से विध्वस्त तंडा किनार को नवजीवन के महासंगीत से उच्छ्वसित कर दिया था।

कल रात की वह सुरभि, सुबह की हवा मे थी। सरदेई के अशक्त शरीर और क्लांत मन को वह सुरभि जैसे ग्रह से ग्रहांतर को उड़ाकर लिये जा रही थी। प्राण-संजीवनी की तरह वह उसके रोम-रोम को संजीवित करती जा रही थी।

सरदेई को प्यास लगी थी। पता नही कलमी मे पानी है या नही। पानी के लिए वेदनार्द्र दृष्टि मे इधर-उधर देखती हुई सरदेई ने पत्थर वाटी मे पानी देखा। इसमे कहा से पानी आया? वहा तो उसने पानी रखा ही नही था और न वैसी वाटी भी उस सराय मे थी। सरदेई ने कापते हाथो से वाटी उठाकर आकंठ जल-पान किया और क्लांत हो लेट गयी।

पिछली रात की सारी घटनाए एक-एक कर उसकी स्मृति के फलक पर पुनः चित्रित होती गयी।

चिलिका तट के तंडा किनार की उस सराय में कई दिनो से ज्वर भोगती सर-देई, उस समय कुछ स्वस्थ लगने से बाहर आकर बैठ गई थी। एक भयंकर रात के बाद सुबह सामने फैले जलप्लावन को उदास वेदनार्द्र आखों से देखती हुई सराय की दीवार के सहारे वह बैठी थी।

पश्चिम आकाश पर भालेरी पर्वत के ऊपर, बादलों की भीड़ मे से, मेघाच्छन्न अपराह्न के सजल धूमर आलोक का मद प्रकाश था। उसी आलोक मे चिलिका का धूसर जल भयानक लग रहा था। चिलिका मे मिली दया, भार्गवी, पालिआ आदि नदियों में बाढ़ के कारण चिलिका मे भी जल का महाप्लावन था। सात-पड़ा, बलभद्रपुर, माणिक पाटना आदि टापुओ के घर एक-दूसरे से अलग-थलग होकर शत-शत टापुओं का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। तंडा किनार के आस-पास के जहिकुदा, रमकुदा आदि गांवो में भी पानी भर गया था। उन गावो के लोग आत्मरक्षा के लिए अन्य वर्षों की भाति अघारी परगना को चले गये थे। तंडा किनार भी कई जगह डूब गया था तथा समुद्र और चिलिका के धूसर जल के वर्ण-भेद से उत्पन्न सीमा रेखा के कारण उसको अस्तित्व का आभास भर मिल रहा था। छाती तक ऊंचे श्याम हरित काश के ऊपरी भागों तक वह पानी मे डूबा हुआ था। शीतल पश्चिमी हवा जब झड़ को सूचित करती हुई वह जाती थी तो

चिलिका की उत्तरल लहरों से रंगन के पौधे आंदोलित होने लगे थे और डूबते हुए व्यक्ति के बचाव के लिए हाथ हिलाने की भांति दिखाई पड़ते थे। तट किनार तट के झाऊ, पुन्नाग, आम आदि की शाखाएं तेज हवा से चिलिका पर झुक आई-सी लग रही थी। केवटों और नोलिओं की कई छोटी-छोटी नावें बाढ़ में कहीं मार खाकर मरे मगरमच्छों की भांति किनारे पर आ पड़ी थी। चिलिका की अस्वच्छ लहरें उन नावों पर पछाड़ें खाकर बारबार चिलिका गर्भ को पीछे फेन और तिनकों को छोड़ लौटी जा रही थी।

सराय के समीप ही एक छोटी-सी नाव उलटी पड़ी थी। एक एरा पक्षी कहीं से आकर उस पर बैठ गया और पंख झाड़ने लगा। पर एक उत्तरल तरंग के आघात से नाव के सरक जाने के कारण वह उड़कर चला गया।

उस निर्वेदग्रस्त, नि संग, परित्यक्त परिवेश में कहीं से उड़ आए उस पक्षी के सिवा जीवन की और कोई सूचना नहीं थी। मेघम्लान आकाश, और बाढ़ से फूली हुई चिलिका में जैसे सब कुछ समाप्ति का संकेत था।

सृष्टि और संसार का जैसे यही अंत हो गया था। यहीं से आरंभ होगा सब कुछ खो देने का देश ! एरा पक्षी के उड़ जाने के बाद अथाह शून्यता के अत्याचार से सरदेई का हृदय आर्तनाद करने लगा।

"जगुनि रे···" पुकारने के लिए सरदेई का कंठ कांप जाता था। पर ज्वर और दुर्बलता के कारण उसमें शक्ति ही न थी। उसे पता ही न था—उसकी पुकार कंठ से निकलने के पहले ही शांत नीरव हो गई। जीभ में स्वाद का अनुभव नहीं था, अथाह प्यास थी। होंठ सूखते जा रहे थे। सरदेई ने असहाय की तरह अपने ललाट को सहलाकर उलझी लटों को सुलझाया। शायद फिर बुखार चढ़ेगा। तन-बदन में पीड़ा बढ़ती जा रही थी। ललाट तपता-सा लग रहा था।

शीतल हवा ने सरदेई का आंचल उड़ा दिया···छाती उन्मुक्त हो गयी···उस ने चौंककर आंचल लपेट लिया और वहीं दीवार के सहारे बैठी रही।

तीन दिन से जगुनि कहां गया है कुछ पता नहीं। इस वर्ष सराय में सब कारोबार बंद है। पता नहीं क्या हो गया है उसे। क्या कर रहा है वही-जाने। सुबह ही सुबह नाव लेकर चिलिका में चला जाता है तो फिर रात दो घड़ी बीते लौटता है, कभी-कभी लौटता ही नहीं। पूछने पर कुछ बताता भी तो नहीं। बालूगांव के

जगुनि और इस जगुनि में बहुत अंतर आ गया है, एक विचित्र परिवर्त्तन, जिसकी कल्पना तक सरदेई के लिए असंभव थी। पहले-पहले जगुनि की उदासीनता के लिए सरदेई के मन में अप्रसन्नता थी, वह रुठ जाती थी। उसके बाद पता नहीं क्यों उसके प्रति घृणा और ईर्ष्या होने लगी है। पर अब वह सब कुछ भी नहीं है, केवल एक निस्पृह उदासीनता है। फिर भी जो जगुनि उसके निर्जन जीवन का एकमात्र अवलंबन था, इस वीरान सराय की भांति, उसे अचानक खोकर सरदेई के सारे आत्मप्रत्यय और प्रफुल्लता के साथ-साथ उसकी कर्म-प्रवणता भी खो गई थी।

सराय पर यात्री पहुंचें तो झमेला रहता है। सरदेई पानी तो ला देगी, खाना भी पका देगी पर सातपड़ा बाजार से रसद कौन पहुचायेगा ? कौन लकड़ी काट कर लायेगा ? दूसरे छोटे-मोटे काम कौन करेगा ? यह सब जगुनि का काम था। पर जिस दिन से जगुनि इधर-उधर पगले की भाति भटकने लगा है तब से सराय बंद-सी हो गयी है। इस वर्ष और दो सरायें भी खुल गयी हैं इसी रमकुदे में। जगुनि का मतलब क्या है वही जाने। तंडा किनार को आने वाले यात्रियो को भी दूसरी सरायों मे पहुंचा रहा है वह।

उस दिन बड़ी भोर जगुनि पल्ला भर भूजा लेकर, कधे पर पतवार उठाये निकला तो ज्वर से कांपती सरदेई बोली—"जगुनि रे ! देख मुझे बुखार है। कई यात्री आकर लौट रहे हैं। अब बाहुडा की भीड़ है। तू आज कही मत जा !"

जगुनि कह गया था कि घडी भर मे लौट आएगा पर अभी तक वापस नही आया है। वह जिस दिन से गया है उस दिन संध्या से वर्षा होने लगी।...दूसरे दिन झड और लगातार वर्षा...जो थमने का नाम नही लेती थी।

उसके दूसरे दिन सरदेई का निर्जल उपवास। ज्वर के रहते सरदेई को एकादशी के लिये नहाना पड़ा था, जिससे ज्वर बढ गया था। ज्वर के कारण वह अत्यंत दुर्बल भी हो गई थी। बाहर लगातार वर्षा हो रही थी। तूफान तेज था। कुछ यात्री आकर उस बारिश मे भी सराय मे रात भर के लिये ठहरे थे।

उनकी बातचीत से सरदेई को पता चला कि जगन्नाथ श्रीक्षेत्र छोडकर कहीं अतर्द्धान हो गये हैं। बड़ ठाकुर के ताल ध्वज रथ पर गरुड़ जैसा एक विशाल गिद्ध आकर बैठ गया, डैने उसके छाज जैसे थे। चोच एक हाथ से भी लबी थी।... ऐसी कई बातें सरदेई ने सुनी थी। पास वाले कमरे मे ठहरे हुये यात्री वर्षा और

अधकार मे शायद बैठे-बैठे आपस मे बातें कर रहे थे। कह रहे थे यह वर्षा अब थमेगी नही, अधकार छटेगा नही, समुद्र और चिलिका एकाकार हो जायेंगे, धरती उसी मे समा जाएगी। जगन्नाथ धरती पर थे इसलिए धरती बनी रही थी। अब जगन्नाथ धरती छोड गये हैं। अब कलियुग का अत हो गया। ऐसा नही है, तो वर्षा थमती क्यो नही ?

ज्वर से प्रलाप करती हुई सरदेई बीच-बीच मे अचेत हो जाती थी। सुबह सब यात्री चले गये थे। बड़ी भोर बारिश कुछ थमी थी, इसलिए वे जैसे-तैसे निकल गये।

कलियुग के अत के पहले एक बार अपने परिवार के लोगो का मुह देख लेने की इच्छा से वे उतावले हो रहे थे। पर सरदेई को हृदय के क्षत को कुरेदती हुई वही एक बात बारबार याद आती रही—जगन्नाथ श्रीक्षेत्र छोडकर कही अतर्द्धान हो गये है। श्रीवत्स खडाशाल का रत्नसिंहासन छोडकर पता नही कहा गुप्त हो गये है।

हाय, कैसी पापिन है वह ! जगन्नाथ अत मे गुप्त हो गये पर वह उनका अभयप्रद श्याम श्रीमुख देख नही सकी। इसी सराय मे होते हुए कितने यात्री आये—गये है। सबकी परिचर्या की है सरदेई ने। सब यही से पुरी गये हैं पर वह नही जा सकी। जगन्नाथ तो पतितपावन बने। कितने पापियो को, पतितो को उन्होने दर्शन दिये। कितने उनके श्रीअग का स्पर्श कर मोक्ष पा गये हैं पर उसके भाग मे यह कहा ? रथ पर चकाडोला को देखती हुई खडी सरदेई को यात्रियो की भीड मे पहचान भी कौन सकता था ! कौन जानता कि यही बालूगाव की सरदेई है, कुलनाशिनी, मुगल सैनिक ने इसी का धर्म लूटा है।

मुगल सैनिक की याद आते ही उसकी अशुभ वीभत्स मूर्त्ति सरदेई के मन के आकाश पर काले बादल की तरह छा गयी।

सरदेई आर्त्तनाद करती-सी क्षीण स्वर मे पुकारने लगी, "जगुनि, जगुनि रे···!"

हवा के एक तेज झोके ने उसकी पुकार को बहा लिया। वह स्वर चिलिका के विस्तीर्ण कोलाहल मे कही लीन हो गया।

फिर बुखार बढ़ने लगा था शायद ! उसने छाती और ललाट पर हाथ फेरा, शरीर तपता था। दूर क्षितिज के पास बादल पाल तनी नव जैसे लग रहे थे।

पादोदक निष्क्रमण पथ के अंदर चले गये। पालिआ मेकाप निधि मुदुलि कहने लगा—"मंदिर के अंदर भी चूहे बढ गये हैं। तलिछो महापात्र चूहेदानी तो बिठा नही रहे हैं, इन्हे पकड़ने के लिए! इनका उपद्रव दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है।"

दइतापति गोविंद महापात्र भगेड़ी स्वर मे बोले…"बेटा यह ढोल के भीतर चूहा (पोल) है! इसे कौन संभालेगा? देखो क्या चाहता है वलीआर भुज!"

गौरी राजगुरु और अमीन चंद के पीछे-पीछे अन्य सेवक वर्षा में ही एक-एक कर बाहर आ गये। बाहर वर्षा और हवा की गति और भी तेज हो गई थी। मुदुली, बडपुआर पढ़िआरी, मदिर रक्षको को छोड़कर प्रभु के शयन करने के बाद मदिर के अंदर सजग रहते हैं। अन्य सेवक आभ्यतरीण बेढा और बाइस पावच्छो को पार कर बाहर चले आये।

सिंहद्वार बंद कर दिया गया।

रात को वर्षा का वेग और भी बढ़ गया था। कल्पवट की दो बड़ी-बडी शाखाएं टूटकर इंद्राणी मदिर से मुक्तिमडप तक तितर-बितर हो पड़ी थी। मदिर शिखर पर से नीलचक्र उडकर लक्ष्मी के मदिर के पास पडा था। भोर के समय तूफान थम गया था। बादल छट गये थे। तूफान के प्रकोप के कारण बेडे के भीतर-बाहर एक विध्वस्त रण-प्रागण जैसा लग रहा था। भोर के समय वज्रपात से जगन्नाथ वल्लभ के कुछ पेड जल गये थे। उस समय तूफान का वेग थम गया था, फिर भी मेघ गर्जन सुनाई पड़ रहा था। हवा रथदाड पर साय-साय करती बही जा रही थी।

सुबह वर्षा नही थी। आकाश भी स्वच्छ लग रहा था।

अति प्रत्यूष से वड परीछा गौरी राजगुरु, राजा अमीनचद, प्रतिहारी भितरछु महापात्र, मुदुली, अखड मेकाप, पालिआ मेकाप, खटशेज मेकाप, पालिआ सुआर बड़ खुटिआ, गरावडु, वलिता जोगाणिआ सेवक आदि द्वार खोलने और मगल आरती के लिए पहुंचे।

प्रतिहारी, मुदुली, भिरछु महापात्र, अखंड मेकाप और पालिआ मेकाप ने आकर पहले जय-विजय द्वार पर पिछली रात लगायी गई मुहर की जांच की।

उसके बाद मुदुली ने ताला खोला और सेवक प्रदीप लेकर आभ्यंतरीण द्वार के पास आये। इस द्वार पर लगायी गई मुहर की भी जांच की और फिर द्वार खोला गया। तब अखड मेकाप और पालिआ मेकाप हाथो मे नव-प्रदीप लेकर रत्न-सिंहासन के पास पहुचे ही थे कि उनके हाथ से प्रदीप छूट गये और झनझन शब्द से मदिर गूज उठा।

रत्नसिंहासन शून्य पडा था। देवता अतर्द्धान हो गये थे!

बाहर से ताला बद था, तालो पर लगी मुहर ठीक थी। मुदुली और बड़ दुआर पढिआरी रात भर बेड़े का पहरा दे रहे थे। फिर ठाकुर जाएगे कैसे?

कालिआ ठाकुर शून्य देही! शून्य पुरुष ठहरे! वे क्या हमारे-तुम्हारे जैसे छाया देही हैं कि उन्हे मुदुली और पढिआरी जैसे मदिर के पहरेदार जाते हुए देख लेते। इस तरह की बातो और उस पर नानाविध आलोचना की प्रतिध्वनि से मदिर का शून्यगर्भ गूज रहा था।

जगुपढिआरी ने सहमते हुए बताया—"तुम्हे झूठ, मुझे सच! बडी भोर जिस समय वज्रपात हुआ, मैं वराह मदिर के बरामदे पर बैठा था, देखा मदिर बेडा आलोकित हो उठा, जैसे लाख चद्रबत्तिया एक साथ जल उठी। गरुड की भाति एक विशाल पक्षी डैने पसार कर उड गया। उसके बाद चारो ओर अधकार छा गया। उस समय मेरा सारा शरीर कदली-पत्र की भाति काप रहा था। जब मैंने यह बात मुदुली को बताई, वह मेरी हसी उडाते हुए बोला—"समझे भाइना, तुम्हारा भाग का नशा उतरा नही था।"

पर उस आक्षेप को अस्वीकार करते हुए नील मुदुली ने बताया—"मैंने कब कहा! मैंने अपनी आखो से देखा है गरुड को जाते हुए। गरुड उडकर जाने लगे तो उनके डैनो के आघात से कल्पवट की शाखाए टूट पडी।"

राजा अमीन चद क्रुद्ध कठ से चीत्कार करने लगे—"जगन्नाथ कैसे गये? कहा गए। इसका जवाब कौन देगा?"

बड परीछा गौरी राजगुरु शून्य रत्नसिंहासन की ओर देखकर सोच रहे थे, जगन्नाथ अतीत मे बारबार रत्नसिंहासन छोडकर गये हैं, पर इस तरह शून्य में अतर्द्धान हो जाना उन्होंने न देखा था न सुना था। पर वे अपना मनोभाव प्रकाशित नही कर रहे थे।

जगन्नाथ को एक लाभप्रद महात्म के रूप में अपनी मुट्ठी में पाकर इस तरह खो देंगे यह अमीनचद ने सोचा तक न था। वे केवल सेवकों पर निर्वीर्य क्रोध से बरस रहे थे।

बलिआ पंडा अमीन चंद के स्वर से बढ़कर चीत्कार करने लगा—"शून्य महा-शून्य में लीन हो गया। पिंड ब्रह्मांड बन गया, सोलह कलाएं सोलह कलाओं में मिल गयी। आप कुछ समझते नहीं हैं तो चिल्लाते क्यों हैं? जगन्नाथ कहा गये, यह बात मुनि, योगी महर्षियों को भी ज्ञात न होगी। हम कैसे बताए? जगा—बलिया को ही जाकर पूछो उनकी बातें!"

द्वादश परिच्छेद

1

चार दिन और चार रात की लगातार वर्षा और झड़ के बाद शांत आकाश पर सुबह का मद प्रकाश छाने लगा था।

वर्षा जिस दिन से हो रही है उसके एक दिन पहले से सरदेई को ज्वर है। उसी ज्वर की ज्वाला मे लगातार झड़-वर्षा के चार दिन और चार रातें बीत गयी हैं। कल से ज्वर कुछ कम है पर संध्या होते ही ज्वर बढ़ने लगा है। बिछौने पर पडी सरदेई धीरे-धीरे अचेत हो गयी थी।

सरदेई को याद है कोहरे के पर्दे से ढका अधकार, चैत्र की सुबह की भाति चारो ओर छा गया था। उसी मे कई मरे-खोये परिचितो के चेहरे उभर आये थे। बेहोशी के सपने मे कई मरे-खोये चेहरो को देखा था सरदेई ने। कोई उसे बुला रहा था तो कोई उसे देखकर हस रहा था। बालूगाव के उस होडिभगावर के नीचे उस लश्कर की राक्षसी मूर्ति भी उसकी ज्वर पीडित विभ्रात चेतना मे बारबार तैर जाती थी। तब सरदेई आर्त्त चीत्कार करती हुई मुट्ठी मे भरकर अविन्यस्त केशो को भीच लेती थी और फिर बेहोश हो जाती थी।

बहुत समय बाद सरदेई ने जलती मशालें देखी थी और शोरगुल सुना था। उसे लगा जैसे सराय के अदर अकस्मात् लाखो चद्रवत्तिया जल उठी है। सब ओर चदन, कस्तूरी और अनगिनत फूलो की महक से भर उठा, आमोदित हो उठा। किसी के शीतल कर के कोमल स्पर्श ने जैसे उसके ज्वरोत्तप्त ललाट को स्निग्ध कर दिया। रात का कौन-सा प्रहर था वह सरदेई न जान सकी।

सरदेई ने आखें खोलकर देखा था चारो ओर। दरवाजा अधखुला था। उसी की दरार से बह आयी शीतल, शात हवा उसके ललाट को सहला जाती थी, ममता भरे हाथ के स्नेह स्पर्श की भाति।

समुद्र की लहरो का गर्जन, वन्यास्फीत चिलिका उर्मियो का कलनाद, जलसारस

रही थी। अतः बड़ी तन्मयता से देख रही थी। पता नही कब किसने उसके गाल पर तिल फूल गोदा था, जो उसके मलिन चेहरे पर मृत चंद्रमा की भांति लग रहा था। सरदेई बाल संवारकर साड़ी उठाकर गगरी लिए तडा किनार की वापी की ओर नहाने निकल पड़ी।

एक दल जलसारस समुद्र की ओर से उड़ते हुए आकर चिल्का पर उतर पड़े। आज सुबह-सुबह ये पक्षी कहां से आ गये? बालू गांव छोड़कर आने के बाद से उन पक्षियों को सरदेई ने देखा नही था और उनकी काकलि सुनी नही थी। उन पक्षियों में सभी गायक थे, एक भी श्रोता नही था।

सराय के सामने बारिश से भीगी बालू पर कई पद चिह्न उभरे हुए थे। समुद्र की ओर से सराय तक वे निशान पड़े थे। सराय के सामने वे चिह्न तितर-बितर हो एकाकार हो गये थे। और फिर चिल्का की ओर बढ़ गये थे। यह क्या कल रात आए उन लोगों के पैरो के निशान हैं? पिछली रात की सारी बातों को याद कर सरदेई सिहर उठी।

आहा! ये फूल-मालाएं और सपुट कहा से आये इस उजाड़ में! बालू पर तितर-बितर हो मुरझाई सेवती और दयणा की मालाएं पड़ी थी। नागेश्वर और केतकी की पखुड़िया बिखरी थी। दयणा की मधुर सुगध से चारों ओर आमोदित हो रहा था। जगन्नाथ के प्रिय ये दयणा फूल आये कहा से? सरदेई समझ न सकी और बैठकर बालू से उन फूलो को मणि-मुक्ताओ की भाति बटोरने लगी।

कल रात इस उजाड तडा किनार में कौन आया था? पीछे फूलों की सुगध, आलोक और काकलि छोड गया है। हाय रे अभागी! तेरे इतने समीप, वर्षा भीगी रात मे कौन रूपमय, रसमय आश्रय ढूढने आया था? तू देख भी न सकी!

सरदेई का सिर फिर चकराने लगा। सिर से पैर तक झनझनाने लगा। सरदेई ने जगुनि को याद किया। वर्षा के आरंभ होने के पहले वह गया था, पर लौटा नही था अभी तक। सरदेई अभ्यस्त कंठ से पुकारने लगी—"जगुनि··· जगुनि रे···।"

अनजाने उसकी आखो से आसू झर रहे थे। गिरती आसू की बूदें बालू पर चू पड़ती थी।

सराय के किवाड खुले छोड़ आयी थी सरदेई।

सरदेई नहाकर, उस बसती साडी को पहनकर आयी। आकर बरामदे में चढ़ते समय चढ नही सकी। उसके दोनो पैर अचानक शक्तिहीन हो पड़े। कांपते पैरो से चढती सरदेई गिर पड़ी, कटे हुए पेड की भाति। वर्षा से सरदेई का मुह भीगे केशो के ईषत् आवरण के नीचे वर्षार्द्र फूल की भाति लग रहा था।

चदन, कस्तूरी और फूलो की महक से घर भर गया था। चट्टान पर बिखरी हुई इधर-उधर दयणा, सेवती, मालती, कुद पुष्पो की मालाए पडी थी, नागेश्वर केतकी की पखुडियां बिछी थी। पता नही किस फूल का रसपान कर कहीं से एक भ्रमर आकर सरदेई के मुह पर मडराने लगा था। उसे भगाने के लिए भी सरदेई के हाथो मे शक्ति नही थी। उसके दोनो हाथ शक्तिहीन हो पड़े थे। वक्ष पर से आचल सरक आया था पर अनावृत छातियो को ढकना भी उसके लिए सभव नही था।

घर की दीवार पर उसने कभी काला, हल्दी, चावल की पीठी आदि से जगन्नाथ का चित्र बनाया था। वही चित्र सरदेई की आखो मे उज्ज्वल दिख रहा था। चित्र को देखकर ज्वर की अचेनता में सुनी बातें उसे याद आयी···जगन्नाथ अतर्धान हो गये हैं। शून्यमय शून्य हो गये हैं।

पर अब सर ने सोचा—वह सब झूठ था, यात्रियो की मनगढत बातें थी। जगन्नाथ शून्य नही हुए है। महाशून्य मिलन के मिथुन लग्न मे वे महापूर्ण बन गये हैं। जगन्नाथ के दोनो चकाडोलाओ मे वह महाशून्यता नही थी। नवीन प्रेमिका की दृष्टि की भाति मेदुर दिख रही थी वे आखे। वे पद्मनेत्र सरदेई के अनावृत्त स्तन और कुटिल कबरी से आच्छन्न मुखमंडल पर स्थिर हो गये थे। मान से सरदेई के अधर काप रहे थे···हे कठोर, निर्मम, कैसे चकित करके आते हो···किम भाति चले भी जाते हो ! पर रख जाते हो जन्म-जन्म के अकल्पित, अकूत, अतहीन अश्रु !

सरदेई की चेतना लुप्त होती जा रही थी। उसे घेर कर जैसे चारो ओर कोहरा छाने लगा था। किसी के निविड आलिगन से जैसे सरदेई का अग-अग मथित हो रहा था···श्वास धीरे-धीरे रुद्ध होता जा रहा था···वह मृत्यु थी।

सरदेई और देख न सकी। उसकी आखें निमीलित होती गयी···।

जो दो बूद आसू आखें मुदते समय असह्य वेदना से छलछला आए थे, वे ही रात के तुहिन कणो की तरह धीरे-धीरे बह आये।

2

नरकुल घास और सरकंडा वन का घेरा। गुरुबाई द्वीप…बाणपुर के अंतिम राजा हरिसेवक मानसिंह ने अष्टादश शताब्दी के शेष भाग मे खोर्धा राजा द्वारा नीलाद्रि प्रसादगढ से विताड़ित हो यहा आकर अपनी नई राजधानी की स्थापना की; तब तक यह द्वीप जनशून्य था।

नल घास, सरकंडा, सुंदर आदि अनेक वन्य गुल्म और तृण-राजिसे परिवेष्टित यह एक दुर्गम अरण्य के रूप में था। माणिक पाटना मुहाने से होकर पालूर और गंजा बदरगाह को जाने वाले जहाजों को लूटने के लिए इस द्वीप को डकैत ही जानते थे और इसका अपनी सामयिक घाटी के रूप मे उपयोग करते थे। उनके अलावा इस द्वीप को चिलिका के एरा पक्षी भी जानते थे।

वही गुरुबाई द्वीप आज तकीखा के उपद्रव के कारण जगन्नाथ का आश्रमस्थल बना है। अरण्य के वृक्ष-शीर्ष पर धीरे-धीरे प्रभात की कोमल किरण अरुण आभा बिखेर रही थी। फिर भी अरण्य के अतस्तल मे विगत रात्रि का झड़ और अंधकार घनीभूत था। चिलिका के पक्षी आकाश मे नूतन सूर्य का अभिनंदन करने के लिए अकारण पुलक से वनभूमि को निनादित करते उड़ रहे थे। उनके डैनो में न श्रांति थी न विराम।

सातपड़ा बलभद्रपुर से चिलिका की एक अप्रशस्त जलप्रणाली गहन अरण्य को भेदती हुई द्वीप के वक्ष को चीरती-सी बढ आई थी। सरकडा, नलघास और साठा से इसके दोनों तट इस भांति आवृत्त थे कि बाहर से अरण्य पथ का पता लगाना असंभव था। इसी जलप्रणाली से अरण्य को पार करते हुए नाव में कुछ दूर अग्रसर होने पर सामने एक बालू टापू दिखाई देगा जिस पर एक विराटकाय बरगद ने, अनतकाल से जटा लबाए, शाखा-प्रशाखा फैला कर एक गहन छायाघन अरण्य की सृष्टि की थी। उसी बरगद के नीचे एक-एक प्रस्तर वेदिका बनायी

गयी थी। जगन्नाथ पर तकीखां की शनि दृष्टि पड़ने की सूचना मात्र पाकर अनेक अन्वेषण के पश्चात् इस स्थान को रामचद्र देव ने जगन्नाथ के आश्रय स्थल के रूप मे चुना था। जगन्नाथ के कुछ विश्वस्त सेवक, कुछ अनुगत खंडायत और जगुनि के अलावा इस स्थान का पता और किसी को मालूम न था।

भोर से पहले जगन्नाथ उस वेदिका पर विराजित हुए थे। रामचंद्र देव, सान-परीछा विष्णु महापात्र, राजगुरु लक्ष्मी परमगुरु और दइतो के सिवा दूसरे सभी लौट गए थे। वेदिका के नीचे तब तक अखंड प्रदीप नही जलाया गया था पिछली रात के लुआठे को वृक्ष की एक शाखा मे बाध दिया गया था। वही जल रहा था पर दिन के उजाले मे निष्प्रभ लग रहा था।

उस गहन वन की निस्तब्धता मे कही से एक कलिंग पक्षी का स्वर सुनाई पड़ रहा था। बरगद की शाखा पर बैठा एक कौवा बीच-बीच मे काव-काव कर उस का प्रत्युत्तर दे रहा था।

रामचद्र देव ने अपने निवार्ण ललाट पर बिखरे बालो को क्लात हाथो से हटा कर देखा—ऐसी निर्जनता, नि.सगता, और शून्यता उनके लिए अननुभूत थी।

स्नान, वस्त्राभूषण, मगल आरती हो कर अब तक प्रभात पूजा होने लगती, पर वहा आरती के लिए स्वर्ण, कर्पूर आरती और घृतबत्तिया भी नही थी। वस्त्र समर्पण के लिए परिधेय, उत्तरीय आदि भी नही थे। दैनंदिन नीतियो के लिए आवश्यक सामग्रिया एक सदूक में बद थी। यह सामग्री जिस नाव पर थी, वह नाव ही झड़ से माणिक पाटना मुहाने के पास डूब गई और कुछ भी नही बचा। उस पर खीचे, पटके हुए आए प्रभु के श्रीअंगवस्त्र और उत्तरीय कर्दमाक्त हो गए थे। माला, चूल आदि छिन्न-भिन्न हो गए थे और श्रीअग आपातत आवरणहीन लग रहा था। श्रीअग पर से मैले वस्त्रो को हटाने का साहस दइतो मे नही था। वे इसलिए एक-दूसरे को देख रहे थे, किंकर्तव्यविमूढो की भाति।

वेदिका के समीप रामचद्र देव बालू पर बैठ कर स्तभित दृष्टि से जगन्नाथ को देख रहे थे। मन ही मन सोच रहे थे, ओडिआ जाति के भाग्य की भी यही अवस्था है। मारने से पसीटा जाना अधिक हो गया है। ओडिआ जाति भी आज प्रभु की भाति नि स्व और सर्वस्वान्त है। सब खो गया है, केवल एक दुर्जय अभिमान शेष है। रामचद्र देव कर्दमाक्त जगन्नाथ के विग्रह को निरंतर देखते जा रहे थे।

विगत कई दिनो के क्रमागत परिश्रम, उत्तेजना, उत्कंठा, आशका और

घूमिल बादल धीरे-धीरे काले होने लगे थे। आकाश पर उड़ रहे बगुलों की पंक्ति मल्लीमाला-सी लग रही थी।

सरदेई और नही बैठ सकी। सराय के अदर डगमगाते कदमों से आकर वह बिछौने पर अचेत हो गयी। फिर कई मृतको के चेहरो को मन की आखों से देखने लगी।

स्वप्न मे देखे हुये वे चेहरे अब तक सरदेई को याद हैं···वे ही चेहरे उसकी आखो के सामने नाच उठे। अंधी, बहरी सास की मूर्ति, शरीर के सूखकर झूल पड़े चमड़े, जूट की भांति सफेद रूखे बाल—बास की एक छडी के सहारे चलती हुई वह मूर्ति आयी—उसी अंधकार मे सरदेई को सुनाई पड़ा—'अरी बहू···अरी ओ सर···शायद सास उसे ढूढ रही थी। हर रोज की भाति वह गाली नही बक रही थी। उसके पास खड़ी-खडी स्नेह-मिश्रित स्वर मे कह रही थी—"कितने खुशी मन से तुझे बहू बनाकर लायी नही थी। एक बार समधी कह गये थे···यह सर तुम्हारी बहू नहीं, बेटी है। उसे उसी तरह रखना। इस संसार मे तेरी कैसी-कैसी दुर्दशा नही हुई···बेटी···सोने-सा शरीर जलकर कोयला बन गया है···। मैं तुझे लेने आयी हूं···आ बेटी मेरे साथ आ···मैं तुझे साथ ले चलूगी।

वह मूर्ति कही विलीन हो गयी; सुबह के कोहरे की भाति। फिर उसके सामने उसके पति की मूर्ति उभर आयी। वही चेहरा, काले मरमर पत्थर से बना सुदृढ़ सुगठित सुंदर चेहरा। पति को अच्छी तरह उसने देखा भी नही था कि वह चला गया। पर सरदेई उस समय उन आखो को नही देख रही थी जिन आखों मे प्यार था, आदर था, ममता थी; जिन आखो से उसे सुहागरात मे उसके पति ने देखा था। उस समय वह जिन आखो को देख रही थी उन में आग की वर्षा थी। उसका पति उसे पास से धकेलते हुए कह रहा था—जा, दूर हट यहा से। यहां तेरे लिये जगह नही है। तू ने जात गवायी है। तू सरायवाली है। तूने राह चलने वालो को तन बेचा है। नही तो यह नीलम जड़ी अंगूठी पहनती क्या ?"

सर क्षीने अंधकार में उस अंगूठी को टटोलने लगी। पर याद आया; वह अगूठी उसने पहनी नही है—पेटी मे है।

सर फिर बेहोश हो गयी। अचेतनता के अथाह सागर में वह बुलबुले की भाति कहीं खो गयी। काफी देर बाद उसे फिर कब होश आया पता नही।

पर उसने यह सब सपने में देखा था या सच था। वह समझ नहीं रही थी।

बाहर तूफान तेज था, थमने का नाम नहीं ले रहा था। अचानक गहन अंधकार में साथ चद्रबत्तियां जल उठीं। कई लोगों को बातें करते हुए सुना उसने। कौन क्या कह रहा था, यह स्पष्ट नहीं सुन पायी, समझ न सकी। सदा किनारे में कई नाविकों के अड्डे हैं। कभी-कभार रात में नावें छूट कर आयें तो भी सराय के पास आकर इसी तरह बात करते हैं। ऐसे ही लोग आए होंगे यह सोचकर सरदेई कुछ देर तक कानों पर हाथ डाले भय से काठ की भांति पड़ी रही।

पर क्या सचमुच यह सब सत्य था ?

पर उसने जगुनि का स्वर भी तो सुना था। जगुनि उन हर्कनों के सरदार-सा बोल रहा था। "अरे सभलकर···यह सामने सराय है···अरे ओ इधर नहीं उधर···नही वह कमरा नही, इधर था···अदर से बद नही किया गया है।"

कई लोग थे। किसी वजनदार चीज को उठाकर ला रहे थे। उनके हाथों में जल रही मशालों के उजाले से चारों ओर आलोक भर गया था।

नही, नही, यह स्वप्न नही हो सकता। आखों से देखी हुई, कानों से सुनी हुई बात की तरह सब-कुछ याद आ रहा है।

उस समय चारो ओर एक अपूर्व सुगंध भर उठी थी।

सुबह की हवा में भी वह भीनी-भीनी-सी सुगंध थी।···क्या वह पागल हो जाएगी। स्वप्न और सत्य के बीच क्या है जिससे वह दोनो को एक-दूसरे से अलग कर सकेगी ?

उन लोगों में से एक कह रहा था—"यहा रखेंगे तो सारी बात खुल जाएगी। रात रहते-रहते चिलिका के अदर ले जाना होगा।"

कहने वाले का स्वर सरदेई को परिचित-सा लगा था।

सुदूर अतीत की विस्मृति से वह स्वर जैसे गूंज रहा था उसके अंतस्तल में। पर कब और कहा सुना था उसने ?···ज्यादा सोचने लगी, याद करने की चेष्टा करने लगी तो सिर चकराने लगा—लगा जैसे सब ओर अधकार छाने लगा है।

उसके बाद—

जगुनि कह रहा था—"इस वर्षा मे रात के अंधेरे में चिलिका के अंदर राह ढूढना कठिन है। तूफान थम जाएगा, कुछ समय में। भोर का तारा उगते ही हम चलेगे।"

ये जरूर डकैत हैं। भय और आवेग से वह फिर बेहोश हो गयी। फिर भी अस्पष्ट रूप से वह याद कर रही थी···कोई उसके पास आया था, उसके ललाट को आदर से स्पर्श किया था···मुंह मे पानी दिया था···अनत तृषा थी उसको··· पर वह भी तो स्वप्न हो सकता है।

सुबह की शीतल हवा सिर के तपते ललाट पर स्नेहातुर स्पर्श देकर बही जा रही थी।

आकाश से बादल छंट गये थे। सुबह की नारगी धूप स्वर्ण फूलो की भाति बिखर गयी थी। वह बिछौने पर बैठ गयी। शरीर से जैसे सारी क्लाति, समस्त अवसाद का बोझ पिछली रात किसी ने उतार लिया था। सरदेई दीवार के सहारे खड़ी हो गयी और कापते कदमो से बाहर बरामदे तक चली आयी।

बाहर से शीतल हवा और आलोक के आते ही सरदेई आश्चर्य से चौंककर रह गयी।

पिछली रात ज्वर की अचेतनता मे उसे चारो ओर चंदन, कस्तूरी और असख्य फूलो की सुगंध से आमोदित होता-सा लगा था, उसकी महक चित्त को पुलकित करने वाली हवा मे भरी थी।

इतना आनद, इतना आलोक, इतनी काकलि, इतनी सिहरन, सरदेई ने अपने दु खदग्ध निरर्थक जीवन मे कभी भी अनुभव नही की थी। इतनी पुलक, बेपथु शायद एक दिन उसके अग-अग मे भर गया था—उसकी सुहाग रात के आत्मीय मुहूर्तों मे जब उसके पति ने घर मे जलते चतुर्थी-प्रदीप को बुझा दिया था।

चतुर्थी-प्रदीप बुझाना अविधि है।

घूघट मे मुह छिपाये बैठी सरदेई अस्पष्ट स्वर मे चीखती-सी बोली थी— "चतुर्थी-प्रदीप क्यो बुझा दिया ?"

पर शर्म से और आशका से घूघट की ओट मे वह सिहर गयी। आज वही स्मृति घनीभूत होकर सरदेई की आखो मे भरती जा रही थी। पर उसमें वेदना का दहन नही था। एक विचित्र पुलक से सिर का तन-मन उल्लसित हो उठता था।

आज कैसा स्वर्णिम सुप्रभात है !

चार दिन चार रात को लगातार वर्षा के बाद सुबह आकाश स्वच्छ था।

चिलिका की पागल प्रमत्त लहरें शांत हो गयी थी। विलासिनियों की तरंगायित बाहों की भांति चिलिका की शांत उर्मियां नाचती हुई चली जा रही थी। सब ओर केवल फेनिल आनंद की अथाह उच्छलता थी।

ये पक्षी कहां थे ? चिलिका के वक्ष पर और तट किनारे की वर्षा भीगी बालू पर जल सारस, चक्रवाक, एरा, कालीगउड़णी आदि अनेक पक्षियों का मेला लगा था। वे आकर बैठते और फिर उड जाते थे। आनंद के भंडार की लूट करने के लिए जैसे उन मे रुकने का धैर्य नही था।

सुबह के उजाले मे सरदेई ने अपने मलिन पहनावे को देखा। ज्वर के कारण बिछौने मे नहाये बिना पडी-पडी उस आनंदमय, सौरभमय परिवेश मे सरदेई को कुश्री और क्लेदाक्त-सा लग रहा था।

सरदेई कमरे के अंदर आकर पेटी खोलने लगी।

अपनी कुमारी अवस्था के खिलौने, विवाह के समय मिले खिलौनो से लेकर रणागन से लौट आयी शोणिताक्त पगड़ी, उस अपरिचित घुड़सवार से दूध की कीमत के रूप मे मिली अगूठी तक को···जीवन मे मिले और पाकर खोये ऐश्वर्य और वेदना को···जैसे उसी मे सभालकर रखा था सरदेई ने। पेटी खोलकर उन चीजो को पहली बार देखने की तरह निहारने लगी।

फटे हुए कपडे की गाठ खोलकर सरदेई ने अगूठी निकाली। पहन ली। पर ज्वर के कारण सूख गई उगली मे अगूठी ढीली थी। उसके बाद उसने ढूढ-ढूढ कर बासंती रग की लाल धारी वाली साडी निकाली। उसी साडी को वह मैके से ससुराल आते समय साथ लायी थी। पेटी मे तब से वह साड़ी पड़ी रही थी। पहनने का कोई मौका ही नही आया। सरदेई ने उस साडी को छिपाकर रखा था जगुनि की बहू के लिए । पर आज उसे पहनने के लिए निकाल लिया। इसके बाद कघी-आइना लाकर कमरे के बीचो-बीच बैठकर बाल सवारने लगी। क्लाति और दुर्बलता के कारण उसका सिर चकरा रहा था। सब फेंककर कमरे के फर्श पर लेट जाने को तन चाहता था, पर मन नही करता। आज इस आनंद-मय प्रभात मे फिर उस रोग शय्या की इच्छा नही हो रही थी उसकी।

देर तक बैठी सरदेइ सिंथी फेरती रही। पर बालो मे कंघी चलाते समय बाल निकल कर कघी भर जाती थी। इसके पहले शायद सरदेई ने अपने चेहरे को इतने गौर से कभी देखा नही था। मानो आज पहली बार नया-नया कुछ देख

अनियमितता से उनका सौम्य, किसलयकी भांति सुंदर शरीर झड़-क्लांत वनस्पति सदृश अवसन्न लग रहा था। अयत्न वर्द्धित श्मश्रु, रूक्ष केशराशि, मलिन आरक्त आखें, सब मिल कर उनके चेहरे पर एक भ्रष्ट-कापालिक का भ्रम पैदा कर रहे थे।

ओह ! जगन्नाथ भी आज महाभैरव हुए हैं।

ओड़िआ जाति के अभिमान, जगतपति जगन्नाथ रत्नसिंहासन का आडबर छोड़ इस वनभूमि पर पधारे हैं—यह सोचते ही रामचंद्र देव विस्मय और विषाद से मलिन हो जाते हैं। उनसे कुछ ही दूर सान परीछा विष्णु कवाट महापात्र क्लांत हो बैठे थे और बैठे-बैठे सो गये थे। दोनों दइता भी प्राणहीन पुत्तलिका की भांति न ययो न तस्यो अवस्था में वेदिका के नीचे खड़े थे।

अब प्रभु की पूजा आरती आदि विधियां कैसे हों, वही सोच कर चिंतित थे।

उसी किंकर्त्तव्यविमूढ़ता में लक्ष्मी परमगुरु जगन्नाथ के सम्मुख दडायमान हो कर उच्चस्वर से आवृत्ति कर रहे थे—

"नील जीमूत संकाशः पद्मपत्राय तेक्षणः।
शोणाधर धरः श्रीमान् भक्तानाममयंकरः॥
बलभद्रस्तथा सप्तफेणो विकट मस्तकः।
कुन्देन्दु शंखधवलः प्रकाशोहम्बुजलोचनः॥
गुप्त पाद करांबोज समुत्तोलित सद्भुजः।
भक्तानामवनायेव तथा भद्रापि मद्रदा॥"

किंतु रामचंद्र देव के मन में दुर्भावना जितनी न थी, एक उत्पीड़क विस्मय उससे कहीं अधिक था।

किस असमाधित गहन रहस्य के प्रतिरूप है ये जगन्नाथ ? सृष्टि के किस आदिम प्रभात मे, प्रलय-पयोधि जल की ध्वस लीला मे ये शेषदेव दारू के रूप मे बह आए थे !

उपकथा का यवन रक्तबाहु, इतिहास के महापद नंद से लेकर कई यवन सेनापति इस गहन रहस्य को उद्घाटित करने के लिए क्या आक्रमण नही कर गए हैं ?

जगन्नाथ ने कभी दुर्ग-वनकातार मे पलायन किया है, तो कभी वसुंधरा के गर्भ में पाताली हुए है, तो कभी महाप्रलय पयोधि मे आश्रय लिया है ! फिर भी शून्य मंच से यवनिका अपसृत होकर शून्यरूप प्रकटित नही हुआ। वह तो अविनश्वर *आत्मा का अपराजेय विग्रह है। दुर्विनीत मनुष्य कैसे उसका स्पर्श कर सकेगा ?*

शक्तिशाली के शत अत्याचार और पीडन मे मनुष्य का शरीर बारंबार विनष्ट हुआ है, फिर भी आत्मा अपराजित बनी रही है मृत्यु के शत फुत्कार को तुच्छ मानकर जीवन-प्रदीप फिर भी अनिर्वापित ही है। ध्वस के शत प्रमत्त ताडव मे सृष्टि का प्रेरणा स्रोत फिर भी अथाह है। जगन्नाथ वह महामुक्ति, महापूर्णता हैं, *उसी महाशून्यता की अनिर्वचनीय, आदि अतहीन भावमूर्त्ति है।*

जगन्नाथ ओडिआ जाति के अभिमान है। उसकी अपराजेयता के इष्टदेव हैं। उसके सब मगल और अमगल के 'जय जगन्नाथ' हैं।

अपने तुच्छ अभिमान की रक्षा करने के लिए जगन्नाथ को श्रीवत्स खडाशाल मदिर के रत्नसिंहासन पर से उठा कर चिलिका के सरकडा वन मे मछवारो की नाव मे ले आने के कारण रामचद्र देव मन ही मन अनुतप्त हो रहे थे।

अमीन चद श्रीमदिर पर अधिकार कर लेता, पुरुषोत्तम क्षेत्र के समस्त अधिकारो से वे वचित हो जाते तो क्या हानि होती ? इसी को बचाए रखने के लिए जगन्नाथ को क्रीडा पुत्तलिका की भाति उठा लाना अपकर्म नही तो और क्या है ? जिस तरह प्रवचना करके मान परीछा की सहायता से जगन्नाथ को पतित-पावन बनाया था उसका स्मरण करते ही रामचद्र देव की अनुशोचना अधिक गहरी और असहनीय बन जाती थी।

पर जगन्नाथ ओडिआ जाति के अपराजेय सकेत हैं न !

तुच्छ स्वाच्छद्य और निरापत्ता के लिए जगन्नाथ को कुछ मानवद्रोहियो के हाथों मे लाछित होने के लिए कैसे छोड देते ?

पर वे युद क्या हैं ?

धर्मद्रोही हाफिज कादर हैं या जगन्नाथ के राजसेवक रामचंद्र देव हैं ?

शायद उनका नाम एक दुर्बल चित्त, धर्मद्रोही, जगन्नाथ द्रोही के रूप मे इतिहास मे निपिबद्ध होकर रहेगा। पर इतिहास के उर्द्धव मे जो अतर्यामी हैं, वे ही अकेले समझेंगे, रामचद्र देव के सघर्ष, सकट, ग्लानि और अतर्दाह को !

दइतों में चर्चा छिड़ी थी। वे चिंतित थे कि कर्दमाक्त वस्त्र उत्तरीय उतार दें तो फिर क्या पहनाएंगे ? उन वस्त्रों को धोकर परिष्कृत करना अत्यंत आवश्यक था।

एक ने पूछा—"वस्त्र धोकर परिष्कार करके सुखाने तक क्या प्रभु उलंग रहेंगे ?"

लक्ष्मी परमगुरु ने अट्टहास किया। कहने लगे—"महापात्रजी, समुद्र जिसका वसन है, पवन जिसका उत्तरीय है, आकाश जिसका चंद्रातप है। उसके लिए क्यों चिंतित हो रहे हैं ? क्या सोच रहे है ?"

एक दइत वेदिका पर चढ़कर विग्रहों के शरीर पर से वस्त्रावरण खोल कर नीचे खड़े दूसरे को पकड़ाता गया।

आवरणहीन विग्रह विश्व की उलंग आत्मा की भांति हठात् उद्भासित हो उठे। विग्रहों को अनावृत करके, सेवक भी स्तब्धता से दंडायमान हो रहे। इसके बाद क्या करें, कुछ सोच न सके। ये पीतांबर-परिहित, नीलजीमूत रसराज जगन्नाथ नहीं हैं···उलंग महाभैरव हैं !"

इसके पश्चात् अन्य विधियां संपादित होती हैं। पानी लाने वाले घटों में तीर्थ जल लाते हैं। दंतमंजन सामग्री और स्वर्णपात्रों को भंडार के सुआर बड़ुले आते हैं। इसी भांति खटुलि सेवक पीढ़ा, दर्पणिआ दर्पण, आएला पटुआरी आंवला चंदनादि, भंडार मेकाप कर्पूर लाकर प्रभु की सेवा में उपस्थित होते हैं। प्रत्येक विधि, प्रत्येक सामग्रीसमुचित व्यवस्था करने के लिए पृथक सेवक हैं।

वह सब तो कुछ नहीं हो सका। अततः दंतमंजन, मुख प्रक्षालन तो होगा ?

जर्गुन दातून और कुछ फल—मूलादि ढूंढ लाने को गया था। तब जाकर गोपाल वल्लभ भोग लगाया जाएगा। सेवक इन्हीं सब बातों की चर्चा कर रहे थे।

रामचंद्र देव जगन्नाथ की उलंग आवरणहीन मूर्ति की ओर देख कर सोच रहे थे, कहां है वह ललाट फलक पर मणिमय तिलक की शोभा ? कहां है वह नीरद सदृश मेदुर अंगकांति ? कहां है अरुण अधर के रहस्य जड़ित वह मंद हास्य ?

जगन्नाथ निखिल मानव की आत्मा की भांति सब आडंबरों का परिहार कर के, इस दुर्गम वन-प्रांतर में सत्य की अकपटता, संग्राम की अपराजेयता में जैसे एक कठोर उज्ज्वलता से प्रतिभात हुए थे।

जगन्नाथ भी क्या उस अभिशप्त मानव की तरह हैं जिसके संग्राम-कठोर

जीवन में मुक्ति का अन्वेषण करने के लिए भी समय नहीं है, अंधकार रात्रि का प्रभात नहीं है, दुर्गमपथ का अंत नहीं है ?

पर हे महाबाहु ! तुम तो राह भूले को राह दिखाते हो, अथाह जल में डूबने को बचाते हो···जीवनरथ के सारथि हो !

मनुष्य का जीवन अगर नि.स्व है, तो तुम नि स्वतर बनते हो। जीवन अगर वंचित है, तो सबसे अधिक वंचित रहते हो !

रामचंद्र देव की आंखों में अनजाने ही पता नहीं किस आवेग से आंसू भर आये और आवेग-स्पंदित अश्रुधारा बह चली।

वन्य लता में खसखसाहट सुन सबने उस ओर आशंकित दृष्टि से देखा ! जगुनि कंधे पर एक जामुन की शाखा उठाये, हाथों में अनेक फूल लिए अशेष उल्लास के साथ आ रहा था, हनुमान की भांति। उसके सिर के बिखरे बालों ने उसका ललाट और आंशिक रूप से आंखों को ढक लिया था। वह गढ़ जीतकर आया हुआ-सा आनंदित लग रहा था।

जामुन की शाखा को नीचे रखकर जगुनि बोला—"इन जामुनों के सिवाय इस जंगल में और कुछ नहीं मिला।" जामुन की शाखा वर्षा भीगे स्वच्छ फलों से भरी थी। इसी से गोपालवल्लभ भोग होगा। इसी से जगन्नाथ की प्रभात पूजा, मध्याह्न भोग, यहां तक कि बड़सिंहार आराधना का छप्पन पउटि' भोग भी होगा।

सेवक दंतमार्जन और स्नानादिकरा के एक पत्र-पात्र में जंबूफलों को रख कर पूजा का आस्थान प्रबंध कर रहे थे। पंचोपचार से पूजन में जामुनों का भोग लगाने के पहले एक सेवक मिट्टी पर जलसिंचन कर रहा था।

रामचंद्र देव वेदिका के निकटतम हो आये थे क्या ?

रथ पर छेरा पहरा और अन्य राजविधि करना एक और बात है, पर पूजा के समय विग्रहों को कैसे स्पर्श कर सकते हैं रामचंद्र देव ? उनके यवनत्व के लिए अभी तक तो उनके प्रायश्चित का अंत नहीं हुआ है।

एक सेवक कहने लगा—"अब भोग लगाया जायगा। आप कुछ हट जाय, छामु !"

वेत्राहत से रामचंद्र देव हट गये। रूठे हुए बालक की भांति वे मन ही मन अभियोग करने लगे···हे स्वप्न संभव, जब तुम निकट होते हो तब तुम सुदूरतम

बनकर रहते हो। पर जब अपनी इच्छा से निकटतम बनते हो तब अजलि ही शून्य रहती है…तुम्हारी पूजा-आराधना अश्रु से होती है !

लक्ष्मी परमगुरु वन भूमि निनादित करते हुए मंत्र पाठ कर रहे थे—

> ॐ मधुवाता ऋतायते, मधु क्षरंति सिंधवः
> माध्वन संतोषधि मधुनक्तं मुतोऽसखो
> मधुमानो वनस्पते मधुमान्न पार्थिवो राजः
> मधु द्विरोप्टिनो पिता माध्वेर्गावो भवंतु नः
> ॐ मधु, मधु मधु, !

जो भी हो जगन्नाथ यहा सामयिक रूप से अततः निरापद रहेगे। मालुद का फौजदार या अमीन चद आसानी से इस जगह का पता नहीं लगा पायेंगे।

पर इसके बाद वे कहां जायेंगे ?

रामचंद्र देव वहा से आकर चिलिका की धूसर जलराशि की ओर अपलक नेत्रों से देखकर यही सोच रहे थे। तट के सरकंडा वन से सटकर चिलिका की लहरों में नाव थिरक रही थी। एक दुर्भार बोझ सिर से उतर गया था, पर तब भी स्वस्ति की प्रफुल्लता आयी नही थी। रामचंद्र देव मन ही मन क्लात होते जा रहे थे।

पर विश्राम कहा ? कहां है पथ ?

चिलिका की जलराशि सरकंडा वन के किनारे उच्छल होने लगी थी। उनके पीछे-पीछे जगुनि चल रहा था। रामचंद्र देव ने लक्ष्य ही नहीं किया था।

जगुनि ने पूछा—"किधर जायेंगे ?"

जगुनि कधे पर पतवार उठाकर पता नही किधर चल पड़ा था।

वर्षा भीगे सरकंडा वन और लताकुजों को देख रामचंद्र देव सोच रहे थे—यहा छायाघन शीतल प्रशांति है…पर वे यहां अपाक्तेय जो ठहरे ! उनके लिए यहा जगह कहा ? सामने अंतहीन संग्राम है।

तट से एक एरा पक्षी क्लात डैने झडते हुए उडकर गुजर गया।

रामचद्र देव नाव लेकर चल पड़े। पर जायेंगे कहा ? किधर जायेंगे उन्हें पता नही था।

जगुनि सरकंडा वन के किनारे-किनारे नाव खेते हुए पूछ रहा था—"किधर चलेंगे···किस ओर ?"

सामने अकूल, अथाह धूसर चिलिका, ऊपर निर्मेघ आकाश···एक नील मरुभूमि थी···

शब्दानुक्रमणिका

अमला बेकि : मंदिर का एक विशेष अंश और अलंकरण।

अणसर पीठ : जगन्नाथ के विश्राम स्थल।

एरा : पक्षी विशेष। ये पक्षी समुद्र तटवर्ती स्थानों में रहते हैं।

ओउ : एक प्रकार का खट्टा फल जिसकी फांकें चौड़ी होती हैं।

अंक : अब्द।

कुड़ुआ : मिट्टी से बना पात्र जिसमें जगन्नाथ का महाप्रसाद रहता है।

काहाण : मुद्रापरिमाण—एक आना।

कालसी : देवी विशेष।

कोरनिश : अभिवादन।

गोटिपुअ : एक प्रकार का नृत्य। स्त्री के वेश में सज्जित तरुण नर्त्तक।

गोप-पुंडरीक साड़ी : खोर्धा राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर जगन्नाथ से स्वीकृति के रूप में प्राप्त पगड़ी का वस्त्र।

चार : रथ पर चढ़ने के लिए लगायी गयी सीढ़ी।

चिता : देवताओं के मस्तक पर लगाया जानेवाला टीका (आभूषण विशेष)।

चर्या गीतिका : 84 सिद्धाचार्यों के द्वारा लिखित बौद्ध धर्म की (सहज यान) आचरण विधि सम्वलित कविता।

छेरा पहरा : रथयात्रा के समय रथों पर चंदन छिड़क कर राजा द्वारा सुवर्ण मार्जनी से बुहारने की क्रिया।

छामु : राजा के प्रति सम्मानसूचक संबोधन।

छाटिआ : राजा के जाते समय वेत्र हिलाते हुए सामने की भीड़ को हटाने वाले कर्मचारी।

छपन पउटी : जगन्नाथ मंदिर में प्रतिदिन लगाये जानेवाले अन्न महाप्रसाद का परिमाण। लगभग छप्पन सौ सेर।

जेनामणि युवराज।

टाहिआ विभिन्न फूलों से सजाकर तीनों ठाकुरों के लिए निर्मित विराट मुकुट।

टेंटइआ टेंटा पक्षी।

घोया मुलक : महानदी की त्रिकोण भूमि और सागर से अवस्थित वह इलाका जो हर वर्ष बाढ़ की चपेट में आ जाता है।

निमक माहाल वह अंचल जहां समुद्र जल से नमक उत्पादन किया जाता है। नमक के जरिये आय दिलाने वाला इलाका।

नरेंद्र पुरी में एक सरोवर, नरेंद्र पुष्करिणी।

पहंडी रथों तक आते समय ठाकुरों की यात्रा।

पाइक वंश परंपरानुक्रम से भूसंपत्ति और जागीर पाकर रहने-बसने वाले सैनिक संप्रदाय।

पाटजोड पाटंबर का जोड़।

पाताली भूगर्भ में आत्मगोपन।

पचक कार्तिक के अंतिम पांच दिन।

पाजिआ महांति पंचांग बनाने वाला। हिसाब रखने वाला कर्मचारी।

पहुड : शयन।

पाहाडा नैवेद्य पीठ और अन्य देव पीठों पर बिछाये जाने वाले गलीचे।

बाइस पावच्छ जगन्नाथ मंदिर में चारों प्रवेश पथों से बनी पैंडियां जो संख्या में 22 हैं। यह संख्या एक आध्यात्मिकता का प्रतीक है।

बडदाड जगन्नाथ मंदिर से माउसी मंदिर तक बनी विस्तृत सड़क।

बेंग बाइद एक खिलौना बाजा, जिसपर मेढक के चमड़े का आच्छादन रहता है।

बउल आवकपि—मैके के गांव की बाल्य संगिनी के प्रति आदर-सूचक आत्मीय संबोधन।

भरण : 400 सेर का परिमापक एक।

मादलापांजि : एकादश शताब्दी से जगन्नाथ मंदिर गजपति राजा और समसामयिक सामाजिक स्थितियों का लिखित समयानुक्रमिक विवरण ग्रंथ। मादल(मर्दल) के आकार से बंधे हुए होने के कारण इसे मादलापांजि कहते हैं।

मुक्ति मंडप : जगन्नाथ मंदिर में विशिष्ट दिग्गज पंडितों की सभा। यहां न्याय-अन्याय पर विचार होने के साथ-साथ मंदिर की विधियां और अनुशासन नियंत्रित होते हैं।

मलागी : कई नावों को जोड़कर बनाया गया बेड़ा।

माजणा मंडप : स्नान मंडप।

लश्कर : सिपाही, सेना।

विश्वावसु : श्रीक्षेत्र पुरी में विराजित होने के पूर्व श्री जगन्नाथ इस शबर भक्त के द्वारा शबरी नारायण के रूप में पूजित होते थे।

शरधा-बाली : श्री जगन्नाथ की श्रद्धा और अनुकंपा से सिक्त बड़दांड की धूलि।

शासन : राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को दान मे दिये गये गांव।

श्रीनवर : राजप्रासाद।

श्रिया : लोक-कथाओं में वर्णित एक चांडालिनी जो लक्ष्मी की परम-भक्त थी।

सुनियां (यां) : भाद्रपद संक्रांति। इस दिन से पुरी गजपति महाराजाओं के अब्दों की गणना होती है।

सान परीछा : श्री मंदिर के उपमुख्य संचालक।